आधुनिक हिन्दी कविता की लोक चेतना का विश्लेषणात्मक अध्ययन

ADHUNIK HINDI KAVITHA KI LOKCHETANA KA VISHLESHANATMAK ADHYAYAN

Thesis submitted to

COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY

For the Degree of

DOCTOR OF PHILOSOPHY

In

Hindi

Under the Faculty of Humanities

By

प्रिया. ए

PRIYA. A

Supervising Teacher

Prof. (Dr) A. ARAVINDAKSHAN

DEPARTMENT OF HINDI
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
KOCHI - 682 022

FEBRUARY 2009

DECLARATION

I hereby declare that the thesis entitled **"ADHUNIK HINDI KAVITHA KI LOKCHETANA KA VISHLESHANATMAK ADHYAYAN"** is the bonafide report of the original work carried out by me under the supervision of **Dr. A. ARAVINDAKSHAN** at the Department of Hindi, Cochin University of Science and Technology and no part there of has been included in any other thesis submitted previously for the award of any degree.

Place :

Date :

PRIYA. A.

भूमिका

लोक वस्तुतः साहित्य का मूल मंत्र है। उसको साहित्यकार कई प्रकार से अपनी रचनाओं में विकसित करता है। समाज में लघु संस्कृति के विभिन्न प्रकार के संस्कारों के साथ ही लोक का संबंध है। इन सब के अभाव में साहित्य रचा नहीं जा सकता है। इसलिए लोक चेतना का अध्ययन साहित्य की समग्र संवेदनाओं का अध्ययन है।

कविता में लोक की चेतना सबसे अधिक सूक्ष्म दिखाई देती है। हर युग की कविता में लोक की अभिव्यक्ति रही है। आधुनिक कविता में इसकी कई भंगिमाएं मिलती हैं। इसकी वजह से आधुनिक कविता बहुविध वाचन के योग्य भी हो गयी है। लोक चेतना की एक अन्य उपलब्धि यही है उसने आधुनिक हिन्दी कविता को अपनी धरती से संपृक्त किया है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में हिन्दी की आधुनिक कविता के लोक मानस को परखने का प्रयास किया गया है। आधुनिक कविता से गुज़रते समय लोक की बहुआयामी स्थिति दृष्टिगत होती है। आधुनिक हिन्दी कविता लोक के अस्तित्व को बनाये रखने का प्रयास करती है। इसी प्रयास में लोक के जीवन यथार्थ के कई पक्षों की अभिव्यक्ति भी होती हैं। भारतीय परिवेश के प्रकरण में ही कविता में लोक का पक्ष मुखर होता है।

प्रत्येक भाषा की भाषाई निजता और जातीय अस्मिता लोक का निर्माण करती है आधुनिक कविता के इस पक्ष को प्रकारांतर में अनदेखा किया गया है, जिसको पुनर्विश्लेषित करने का प्रयास ही इस शोध प्रबंध का अभीष्ट है।

अध्ययन की सुविधा के लिए इस शोध प्रबंध को पाँच अध्यायों में विभाजित किया गया है। पहले अध्याय का शीर्षक है - कविता और लोकचेतना। इसमें लोक शब्द का व्युत्पत्ति, विद्वजनों की भिन्न-भिन्न परिभाषाओं का विश्लेषण और उनमें निहित जनधर्मिता को प्रस्तुत किया गया है। साहित्य में लोक का अस्तित्व सामाजिक सच को प्रतिपादित करता है। लोक की विभिन्न व्याख्या द्वारा उसके अन्तस को छूने का प्रयास यहाँ हुआ है। आधुनिक कविता में लोकचेतना के संश्लेषण को व्यक्त करने के लिए लोकचेतना के विभिन्न पहलुओं का विश्लेषण भी किया गया है जैसे - लोक जीवन, लोक कथाएं, लोक रीतियाँ और लोक भाषा। ये सभी मुद्दे मिलकर लोक चेतना की व्याप्ति को व्यक्त करते हैं।

दूसरा अध्याय है - 'आधुनिक हिन्दी कविता में लोकचेतना।' आधुनिक हिन्दी कविता लोक संपृक्त की कविता है। कविता का आधार संपूर्ण जीवन है। आधुनिक हिन्दी कविता अपने समय को लोक जीवन के उदात्त भावों को लेकर पाठकों के सम्मुख उपस्थित होती है। लोकजीवन ही उसका 'मूल' है। समय के अनुसार लोक के जीवन की बाह्य स्थितियाँ बदलती रहती हैं। आधुनिक हिन्दी कविता में व्याप्त लोकचेतना को, आधुनिक कवियों की रचनाधर्मिता को देखने - परखने का प्रयास इस अध्याय में हुआ है।

तीसरा अध्याय लोक कथा केन्द्रित आधुनिक कविताओं का विश्लेषण है। लोक कथा का क्षेत्र विस्तृत होता है। कविताओं में अभिव्यक्त लोक कथाओं का अध्ययन इस अध्याय में हुआ है। लोक कथाएँ मिथक तत्व द्वारा पुष्ट बनती है। इन मिथकों से संस्कृति की जानकारी उपलब्ध होती है। आधुनिक हिन्दी कविता में लोककथा का सन्निवेश 'मिथक' के द्वारा उत्कृष्ट बन जाता है। इस 'मिथक' को लोक के संदर्भ में, आधुनिक परिवेश में आँकने का प्रयास इस अध्याय में हुआ है।

चौथा अध्याय कविता में उपलब्ध लोक रीतियों का परिचय देता है। लोक व्यवहार, लोक विश्वास, लोक का आचार-विचार, रहन-सहन, प्रथा, परम्परा, आदि सभी तत्वों की अन्विति लोक रीति में होती है। ये रीतियाँ हर काल में बदलती रहती है। समय के साथ चलती रहती है। लोक के पर्व, अनुष्ठान, संस्कार जैसी लोक रीतियों का अध्ययन इसमें हुआ है। इस प्रकार की लोकरीतियाँ मनुष्य की संस्कृति, सभ्यता आदि तत्वों को परिचित कराने वाली हैं। लोक रीतियाँ या लोक संस्कार कविता को समझने में अत्यधिक उपयोगी है। आधुनिक कविता में उपलब्ध इन संस्कारबद्ध रीतियों का अध्ययन इस अध्याय में प्रस्तुत किया गया है।

पाँचवाँ अध्याय कविता में लोक भाषा का विन्यास प्रस्तुत करता है। काव्य भाषा सामान्य भाषा से अलग है। प्रत्येक कवि की भाषा अपनी संवेदनात्मक सघनता के कारण अलग होती है। यही पृथकता उनकी रचना क्षमता की विशेषता है। भाषा के इस वैविध्य में लोक पक्ष का अन्वेषण इस अध्याय में हुआ है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के आदरणीय गुरुवर प्रो. अरविन्दाक्षन जी के निर्देशन में संपन्न हुआ है। उन्होंने ही मुझे कविता पर शोध करने का काबिल बनाया है। उनके बहुमुख सुझावों तथा प्रेरणावर्द्धक निर्देशन से ही यह अध्ययन सार्थक-ढंग से पूरा हो पाया है। उनके प्रति मैं सदैव आभारी रहूँगी।

हिन्दी विभाग के सभी अध्यापनों के सहयोग के प्रति मैं कृतज्ञ हूँ। विभाग के मेरे प्रिय मित्रों की सहमार्गिता मेरे लिए सबसे मूल्यवान है। उनके प्रोत्साहन एवं सुझाव के लिए मैं उन के प्रति विशेष आभारी हूँ। डॉ. लीना, डॉ. राजेश्वरी, डॉ. बिन्दु, डॉ. अनिता, षीना, प्रीति, दीप्ती आदि से मैं अपना असीम स्नेह व्यक्त करती हूँ।

प्रार्थना और प्रोत्साहन के द्वारा मेरा साथ देनेवाले माँ-बाप और भाई-बहनों से मैं सर्वथा कृतज्ञ हूँ।

सर्वोपरी मैं ईश्वर की कृपा का चिर ऋणी हूँ।

प्रिया. ए.

अनुक्रम

अध्याय-1

कविता और लोक चेतना 1 - 38

लोकचेतना का स्वरूप
लोकसंबन्धी परिभाषाएँ
आधुनिक कविता में लोक चेतना का संश्लेषण
हिन्दी कविता में लोकचेतना की अभिव्यक्ति
लोकजीवन और आधुनिक कविता

अध्याय-2

आधुनिक कविता की लोकबद्ध दृष्टि 39 - 93

आधुनिक हिन्दी कविता में लोक चेतना
आधुनिक कविता में लोकजीवन के विविध आयाम
आधुनिक कविता में विन्यसित लोक आस्था
आधुनिक कविता में लोकबद्ध संघर्ष गाथाएँ
आकांक्षाओं का उन्मेष

अध्याय-3

आधुनिक हिन्दी कविता में लोक कथाएँ 94 - 144

आधुनिक कविता में कथा संश्लेषण
लोक कथाओं की कविता परिणतियाँ
प्रगतिशील कविताओं में लोक कथा का सन्निवेश

अध्याय-4

आधुनिक हिन्दी कविता में लोक रीतियाँ 145 - 190

लोकरीतियों का व्यापक परिदृश्य

लोकदृश्य

लोक यथार्थ

लोक सौन्दर्य

अध्याय-5

आधुनिक कविता में लोकभाषा का विन्यास 191 - 231

भाषा और संवेदना

आधुनिक कविता और लोक जगत् का पारस्पर्श

प्रगतिशील कवि त्रयी

आधुनिकता की लोकबद्ध भाषा

लोकभाषा का यथार्थ

उपसंहार 232 - 239

संदर्भ ग्रंथ सूची 240 - 254

अध्याय-1

कविता और लोकचेतना

भूमिका

'लोक' शब्द बहुत प्राचीन है। यह शब्द व्यापक अर्थद्योतन में सक्षम है। मुख्यतः इस शब्द के दो अर्थ हैं - पहला अर्थ है परलोक, त्रिलोक आदि। दूसरा अर्थ है 'जनसामान्य'। 'जनसामान्य' का संबन्ध आम जनता या आम जीवन से है। साहित्य के संदर्भ में विचार करते समय 'लोक' का 'पार्थिव' एवं 'जनसामान्य' अर्थ ही प्रमुख है। यही नहीं लोक साहित्य का यही सारसत्य है। लोक के अभाव में साहित्य जीवित नहीं रह सकता। लोक वस्तुतः रचना का आभ्यंतर सार है अर्थात् रचना के समग्र की अभिव्यक्ति को लोकचेतना से जोड़ा जा सकता है। हर युग की कविता में लोकचेतना का स्फुरण रहता है। अनुपात में अंतर हो सकता है। लेकिन लोकचेतना के अभाव में कविता का होना संभव नहीं दीखता है। वास्तव में कविता लोक से ही जन्म लेती है। कविता की रचना द्वारा एक गहरे अनुभव का यथार्थ दर्ज होता है जो लोक से युक्त होता है। मानवीय संसक्ति का विन्यास कविता में लोक के कारण उपस्थित होता है जिससे जीवन का पूरा परिप्रेक्ष्य व्यापक दिशा- संकेतों के साथ कविता में खुलता है।

लोकचेतना का स्वरूप

आधुनिक युग में अध्ययन की नयी दिशाओं के संदर्भ में 'लोक' शब्द को महत्वपूर्ण माना गया है। इस शब्द को परिभाषित करना उतना

आसान नहीं है। क्योंकि यह शब्द बहुत ही सूक्ष्म है। "लोक' शब्द की व्युत्पत्ति 'लुच' धातु से है। जिसका अर्थ है - प्रकाशित होना एवं प्रकाशित करना। जो सामने प्रकाशित दिख रहा है, और जो प्रकाशित कर रहा है।"[1] साहित्य के प्रकरण में जनजीवन का समग्र ही उसमें प्रकाशित होता है।

पूरे विश्व में जो दृष्टिगत है, वह सब 'लोक' के तत्व हैं। जो यहाँ है, जो प्रत्यक्ष - प्रस्तुत हैं, वह लोक है। इस शब्द को और विस्तार से देखें तो कह सकते हैं कि लोक में रहनेवाले सभी तत्व-मनुष्य, प्राणी, वनस्पति, मिट्टी, आकाश, जल आदि सब अनुभव के विषय बन जाते हैं। 'लोक' विश्व का एक सजीव परिपार्श्व प्रस्तुत करता है। सजीवता का अर्थ कर्म क्षेत्र से ही है। कर्मोन्मुखता तो प्रत्यक्ष तत्व है। इस प्रत्यक्षता को जीवन की गतिशीलता से जोड़ा जा सकता है। इस प्रकार लोक के सभी व्यवहार पक्ष जीवन के व्यवहार पक्ष से जुड़ते हैं।

यह सूचित किया जा चुका है कि कविता में लोक का विशेष महत्व है। लोकहीन कविता न अस्तित्व ग्रहण कर सकती है न वह आस्वाद्य हो सकती है। विषय चाहे जो हो, कविता लोक से शुरू करके लोक में भी अवसानित होती है। प्राचीन काल से लोक के प्रति उन्मुखता कविता में रही है और वही उन्मुखता आज भी रचनात्मकता में सुरक्षित है।

लोक संबन्धी परिभाषायें

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने निबन्ध संग्रह 'चिन्तामणी' के प्रथम भाग के विभिन्न स्थानों पर 'लोक' का उल्लेख किया है - लोक

---

1. विद्यानिवास मिश्र : लोक और लोक का स्वर (प्र.सं. 2000) : पृ. 11

सत्ता, लोक सामान्य, लोक धर्म, लोक व्यवहार, तथा लोक मंगल आदि से 'लोक' शब्द के महत्व को समझने का अवसर प्राप्त होता है। इसी 'लोकमंगल' भावना को पुष्ट करने के लिए शुक्ल जी ने अपनी रचना को 'चिन्तामणी' शीर्षक प्रदान किया है। इस ग्रंथ में निहित निबन्धों के शीर्षक एवं विषय मन-चित्त से संबन्धित हैं। सूक्ष्मरूपी चित्त भावना को कर्म द्वारा स्थूलता एवं प्रत्यक्षता मिल जाती है।

रामचन्द्र शुक्ल ने लोक के मुख्यतः तीन अर्थ लिए है - विश्वजगत्, समाज तथा जन। लौकिक जगत् के अर्थ में उन्होंने लोक का प्रयोग इस तरह किया। "कविता ही मनुष्य के हृदय को स्वार्थ-संबन्धों के संकुचित मंड़ल से ऊपर उठाकर लोक-सामान्य भावभूमि पर ले जाती है, जहाँ जगत् की नाना गतियों के मार्मिक स्वरूप का साक्षात्कार और शुद्ध अनुभूतियों का संचार होता है, इस भूमि पर पहुँचे हुए मनुष्य को कुछ काल के लिए अपना पता नहीं रहता। वह अपनी सत्ता को लोक-सत्ता में लीन किये रहता है। उसकी अनुभूति सब की अनुभूति होती है या हो सकती है। इस अनुभूति-योग के अभ्यास से हमारे मनोविकार का परिष्कार तथा शेष सृष्टि के साथ हमारे रागात्मक संबन्ध की रक्षा और निर्वाह होता है।"[1] कविता के सौन्दर्य तत्व को रामचन्द्र शुक्ल ने लोक से संपृक्त किया है। कवितात्मकता का यह सौंदर्यात्मकता में परिवर्तन है। कविता का आत्मपक्ष वस्तुपक्ष में परिवर्तित होता है। शुक्ल के लोकमंगल की भावना इससे उत्पन्न है। उसमें लोक कल्याण की भावना ही पायी

---

1. रामचन्द्र शुक्ल : चिन्तामणि (प्र.सं. 1993) : पृ. 97

जाती है। लोक के साथ के रागात्मक संबंध के कारण ही कविता समय का उल्लंघन कर पाती है।

आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी जी ने 'लोक' का अर्थ स्पष्ट करते हुए कहा है कि "लोक शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम्य नहीं है, बल्कि नगरों और गाँवों में फैली हुई वह समूची जनता है जिनके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं है। ये लोक नगर में परिष्कृत, रुचि-संपन्न तथा सुसंस्कृत समझे जानेवाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिष्कृत रुचि वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारिता को जीवित रखने के लिए जो भी वस्तुएँ आवश्यक होती हैं उनको उत्पन्न करते हैं।"[1] इस परिभाषा के अनुसार लोक और लोक जीवन को हजारी प्रसाद द्विवेदी ने पर्याप्त विपुल माना है। लोक समस्त धरती से संबंधित है। यही लोक मानव की अस्मिता का मूल उत्स है। हज़ारी प्रसाद ने लोक को क्षेत्रीय विभाजन के प्रकरण में नहीं देखा है। उनके लिए लोक सुरुचि संपन्नता का लक्षण है। उन्होंने अपनी लालित्य मीमाँसा की चर्चा के प्रकरण में भी लोक को इसलिए लिया है कि यह जीवन की समग्र दृष्टि का ही विपुलीकरण है। लोक के अभाव में, उनके अनुसार सौन्दर्य की पुष्कल पुष्टि नहीं हो सकती है। लोक, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के लिए, रचना की आत्यन्तिक अनिवार्यता है।

---

1. सं. मुकुन्द द्विवेदी : हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली (प्र.सं. 1981) : पृ. 42

नामवरसिंह द्वारा प्रस्तुत 'लोक' की व्याख्या बहुत ही महत्वपूर्ण है। उनके अनुसार 'लोक' शब्द को रूढ़ एवं भ्रामक अर्थों की परिधि से निकाल कर विकसनशील व्यापक अर्थ के रूप में ही ग्रहण करना चाहिए। "लोक धर्म, साधारण जनों के विद्रोह की विचारधारा है। इसे 'लोक धर्म' कहने का एक कारण तो यह है कि यह उच्चवर्गों के 'शास्त्र' के समान सूक्ष्मातिसूक्ष्म तर्क-पद्धति से संपन्न तथा व्यापक विश्वदृष्टि के रूप में विकसित कोई सुसंगत और सुव्यवस्थित विचार प्रणाली नहीं है। दूसरा कारण यह है कि यह पूँजीवादी समाज के बीच निर्मित किसी एक सुनिश्चित वर्गचेतना की विचारप्रणाली नहीं, बल्कि सामंती युग के असंगठित किसानों और दस्तकारों के विविध वर्गों, उपवर्गों की मिली-जुली भावनाओं का पुंज हैं।"[1] शास्त्र सम्मत वैचारिकता के स्थान पर शास्त्र से विलगित वैचारिकता का उन्मेष साहित्य में उपलब्ध होता है। हो सकता है कि वह इतिहास में पूरी तरह से दर्ज न हुआ हो। इस अर्थ में देखें तो लोक वैचारिक एवं संवेदनात्मक विप्लव की अभिव्यक्ति है। लोकधर्म का प्राण उसका विद्रोह ही है। दमनकारी व्यवस्था के विरुद्ध प्रत्येक जन में वह विद्रोह बनकर उपस्थित है। जनता का संघर्ष विद्रोह का रूप धारण करता है। इस संघर्षोन्मुख विद्रोह के कारण समाज की साँस्कृतिक दृष्टि में परिवर्तन आते हैं और तज्जन्य गतिशीलता भी आती है जो समाज के भविष्योन्मुख विकास केलिए अत्यंत आवश्यक है।

विद्यानिवास मिश्र ने समाज और लोक के निकटतर संबन्ध को प्रकट करते हुए 'लोक' को इस तरह से परिभाषित किया है - "समाज

---

1. नामवर सिंह : दूसरी परम्परा की खोज (प्र.सं. 1982) पृ. 78

लोक में समाविष्ट है, वह लौकिक व्यापारों के बहुत छोटे-से-हिस्से को संचालित करता है। मनुष्य होने का अर्थ ही है, इतर को अपना बनाना, किसी को इतर या पराया न मानना। इस लोक में इसी भाव से जीना, सही माने में लोकयात्रा है। साहित्य इसी लोकयात्रा का समय-समय पर अभिलेख प्रस्तुत करता है।"[1] उनके अभिमत में लोक और साहित्य का रिश्ता अटूट है। समाज हमेशा गतिशील होता है। परिवर्तनशीलता समाज की अनिवार्यता और विशेषता है। लोकयात्रा में मानव की सर्वोच्य संस्कृति लक्षित होती है।

डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल ने 'लोक' को महासमुद्र माना है। "लोक हमारे जीवन का महासमुद्र है, उसमें भूत, भविष्य और वर्तमान सभी कुछ संचित रहता है। लोक ही राष्ट्र का अमर स्वरूप है।"[2] लोक में संस्कृति एवं परम्परा का पारस्पर्य रहता है। इसीमें मानव जीवन की जड़ें सक्रिय रहती हैं। लोक से ही वह खाद और जल प्राप्त करती है।

लोक, साहित्य और लोक दृष्टि लोक चेतना आदि विषयों के कुछ अच्छे ग्रंथ भी उपलब्ध होते हैं। उनमें प्रकट आलोचकों के विचारों का विश्लेषण करना इस संदर्भ में समीचीन प्रतीत होता है।

जीवनसिंह के अनुसार "लोक, श्रम से उत्पन्न सामूहिक मूल्य व्यवस्था व अनुभूति का नाम है। यह जब तक समाज में रहेगा तब तक

---

1. विद्यानिवास मिश्र : अनछुए बिंदु (प्र.सं. 2007) पृ. 477
2. वसुदेवशरण अग्रवाल : लोक का प्रत्यक्ष दर्शन (प्र.सं. 1980) : पृ. 67-68 (सम्मेलन पत्रिका : लोक संस्कृति अंक)

लोक जीवित स्पंदित एवं प्राणवंत रहेगा। 'लोक' किसी रूढ़ संज्ञा का नाम नहीं है। वह भी समय के अनुसार अपना स्वभाव रचता है। वह एक समय के अनुभव और ज्ञान से निर्मित शास्त्र की रूढ़ियों को तोड़ता हुआ, अपने समय की नई राह खोलता है। यही बात उसके जीवित होने का प्रमाण है।"[1] साहित्य में लोक का अस्तित्व सामाजिक सच को प्रतिपादित करता है। साहित्यकार समय के सच को पहचानकर जब रचनारत होता है तो वह लोक को प्रतिष्ठा कर पाता है। इसीसे समाज में क्रियाशीलता जागरूक होती। यही क्रियाशीलता लोक का प्राण तत्व है।

एकान्त श्रीवास्तव ने 'लोक' के जीवन को मिथकीय बुनियादी परिवेश से जोड़ा है। "मिथ भारतीय जन-जीवन में और फलतः साहित्य में भी इतने रच-बस गये हैं कि इनके बिना सम्भवतः संस्कृति-मीमाँसा भी अपूर्ण समझी जायेगी। जो साहित्य लोकजीवन की बारीकियों को रेखाँकित करता है, वह परम्परा, मिथ और विश्वास की अवहेलना नहीं करता।"[2] संवेदनशील भारतीय जनता अपने देश के गतिशील और रचनात्मक आदिम विश्वासों के साथ जीती है और इन विश्वासों को टूटते देखना पसंद नहीं करती। साहित्य इस परंपरा को जीवित रखता है।

पीयूष दईया ने 'लोक' को व्यापक परिवेश में परिभाषित किया है। 'लोक' पूरे देश की धरती से जुड़ा हुआ जन समुदाय है। "लोक भोला और सरल होता है। वह विश्वासचालित होता है। उसकी मर्यादाएँ जटिल

---

1. जीवन सिंह : कविता और कवि कर्म (प्र.सं. 1999) : पृ. 16
2. एकाँत श्रीवास्तव : कविता का आत्मपक्ष (प्र.सं. 2006) : पृ. 27

विधानों पर नहीं, प्रेम और विश्वास पर आधृत होती हैं। प्रकृति के साथ उसका नित्य संबन्ध है। वह उसके जीवन का अंग है। ग्रह, नक्षत्र, सूर्य, चन्द्र, अग्नि, पशु, पक्षी, वृक्ष, लता, नदी, सरोवर, सभी उसके अपने है।"[1] लोक का भाव-जगत् प्रतीकों के संसार से ओतप्रोत है। वृक्ष, पौधा, पशु-पक्षी, सूर्य, अग्नि, चन्द्र, इन सभी का प्रयोग लोक ने प्रतीक रूप में आत्मसात किया है।

डॉ. अरविंदाक्षन ने लोक की अभिव्यक्ति को प्रत्येक भाषा की कविता की स्थानीय लघु संस्कृति के संदर्भ व्यक्त किया है। "अभीष्ट यही है कि कविता की भाषिक छवियों से लेकर संवेदनात्मक विस्तार तक स्थानीयता का संबन्ध है। वही उसका लोक है। कविता का लोक मात्र एक ग्रामीण परिदृश्य का पुनः सृजन नहीं है। वह हमारी लघु संस्कृति की अंतरंगता है। हमारी ही आत्मा की खोज है। जब तक कविता में ऐसी लघुसंस्कृतियों का सन्निवेश नहीं होता है तब तक कविता की कोई प्रासंगिकता नहीं है। कविता वास्तव में हमारे लोक में सृजित होती है और लोक सहित व्यंजित होती है। स्थानीयता का महत्व तभी है।"[2] स्थानीयता बहिरंग बानगी नहीं है बल्कि वह लोक में परिवर्तित होने वाली कविता की अंतरंग बानगी है। कविता के लोक से ही कविता की भारतीयता की यात्रा शुरू होती है।

---

1. पीयूष दईया : लोक (प्र.सं. 2006) : पृ. 385
2. ए. अरविंदाक्षन : कविता की भारतीयता : अपना पैगाम (प्र.सं. 2007) : पृ. 107

आधुनिक कविता में लोकचेतना का संश्लेषण

साहित्य का मूलाधार जनता का अनुभव समृद्ध जीवन है। मनुष्य-समाज के प्रदीर्घ संघर्ष, अनुभव और अभ्यास का परिणाम ही लोकचेतना को उत्घाटित करता है। आधुनिक कविता का मूल स्रोत लोकजीवन से संपृक्त है। इस दौर की कविताओं में लोकचेतना की अन्दरूनी ताकत अभिव्यक्त है। आधुनिक कविता में लोकचेतना का संश्लेषण भिन्न-भिन्न रूपों में लक्षित होता है। 'लोक' के समग्र की अभिव्यक्ति कविताओं में सूक्ष्म या स्थूल रूप में प्रकट है। लोक संस्कृति, लोक जीवन, लोक कथाएँ, लोक रीतियाँ, पर्व, खेती, अनुष्ठान, आचार-विचार, लोक विश्वास, लोक भाषा आदि रूपों में से लोक जीवन का कोई न कोई पक्ष कविता में प्रस्तुत होता है। इन सभी तत्वों से लोकचेतना की व्याप्ति को कवि व्यक्त कर पाता है। अपनी कविता की संवेदना की अंतरंग समृद्धि केलिए लोक की स्वीकृति और अभिव्यक्ति अनिवार्य है।

लोकजीवन :- लोक जीवन के क्षेत्र में मनुष्यों का समूह ही नहीं, सृष्टि के चर-अचर सभी सम्मिलित हैं। पशु-पक्षी, पूरी वनस्पति सब लोक हैं और सब के साथ साझेदारी की भावना ही लोक-दृष्टि हैं; सब को साथ लेकर चलना ही लोक-संग्रह है और इन सब के बीच में जीना लोकयात्रा है। मानव संचेतना का आधार लोक जीवन है। धरती से लेकर आसमान तक फैले हुए विस्तृत फलक को लोक जीवन के अन्तर्गत स्वीकार किया जाता है। लोक जीवन का असली रूप विस्तृत होता है। लोक संस्कृति, लोक व्यवहार, लोक मानस, लोक रीतियाँ, लोक कथाएँ आदि तत्व लोक

जीवन के अन्तर्गत आते हैं। लोक जीवन में अपने इतिहास को याद रखने की कई पारम्परिक विधियाँ हैं, जिनमें कला, साहित्य, संस्कृति और धर्म प्रमुख हैं। लोक जीवन का संबन्ध गाँव, प्राँत, और देश की सरहदों के आर-पार तक व्याप्त है। लोक जीवन समाज की रीढ़ बनकर विकसित होता है। कविता जब लिखी जाती है तो उसे इस बृहद् लोक जीवन में उतरना पड़ता है। लोक में जितनी गहराई तक वह उतर पाएगी उतनी वह मार्मिक और संवेदनशील बन सकती है। इसलिए लोक जीवन कविता के लिए वर्णन का माध्यम नहीं बल्कि वह उसके लिए वस्तु का अनिवार्य प्रयोग का क्षेत्र भी है।

लोक संस्कृति :- संस्कृति में मनुष्य के बाह्य और आन्तरिक मूल्यों की अभिव्यंजना होती है। मनुष्य परंपरा से संस्कृति रूपी जीवनशैली को गृहण करता है। मनुष्य के आँतरिक गुणों का विकास करना ही संस्कृति का उद्देश्य है। लोक संस्कृति के अन्तर्गत किसी समाज की जनता के सामाजिक आचार-विचारों और अन्य प्रकार की आस्थाओं का समावेश होता है। लोक जीवन के प्रायः सभी पहलू इसमें अंतर्भुक्त होते हैं। भारत गाँवों का देश है। भारत की अधिकाँश जनता गाँवों में निवास करती है। ग्रामीण जीवन की अपनी विशिष्ट परम्पराएँ और जीवन प्रणालियाँ होती हैं, जो प्रायः लोक संस्कृति से संचलित होती है। "लोक संस्कृति का एक पक्ष (आँतरिक पक्ष) लोकजीवन के रागात्मक अनुभवों और ज़िन्दगी के बारे में लोक की सोच-समझ, मान्यताओं तथा मुख्य चेतना से बना है। दूसरा पक्ष (बाह्य पक्ष) पर्व-त्योहार, प्रकृति, रीति-रिवाज़ तथा वेश-भूषा

से बना है।"[1] लोक की रक्षा और उत्कर्ष के लिए जो वैचारिक और भावात्मक प्रयत्न होते रहे हैं, उनका सामूहिक रूप ही संस्कृति है। लोक-संस्कृति जो जीवन-दृष्टि देती है उसे कवि अपनी रचना की संवेदना में परिवर्तित करते हैं। लोक संस्कृति सर्वाधिक पारदर्शी मानवीयता का ही उदाहरण प्रस्तुत करती है।

लोक संस्कृति के विभिन्न आयाम

परम्परा, रीति-रिवाज़, संस्कार, लोकगीत, लोक-गाथा, लोककथा, मिथक, लोकोक्ति-पहेली, कहावत, मुहावरे, सूक्तियाँ, सुभाषित, लोकनृत्य, लोक संगीत, लोक नाट्य, लोक वाद्य, लोक विश्वास, लोक देवता, लोक धर्म, लोक व्यवहार जैसे विभिन्न पक्ष लोक संस्कृति के मूल में निहित हैं। लोक संस्कृति के सभी अंश मनुष्य को संवेदनशील बनाते हैं। घर-परिवार, समाज, गाँव, शहर, जीवनोपयोगी वस्तुएँ लोक संस्कृति की परिधि से निकली हैं। लोक संस्कृति में काल की गणना होती है। यह काल गणना तेजस्वी सार्वभौमिक - सार्वकालिक तत्वों के आधार पर होती है। हर देश-काल परिस्थिति में लोक की स्मृति मुख्य रूप से की जाती है। लोक में अपने इतिहास को याद रखने की कई पारम्परिक विधियाँ मौजूद रहती हैं - जैसे - कला, साहित्य, धर्म और संस्कृति। लोक इतिहास के ओजस्वी तत्वों की अहम् भूमिका लोक जीवन में दृष्टव्य होती है। लोक मस्तिष्क में लोक के साथ वह इतिहास भी जीवित रहता है जो

---

1. डॉ. रामदरश मिश्र : डॉ. महीप सिंह : समकालीन साहित्य चिन्तन (प्र.सं. 1995) : पृ. 37

अतीत की वस्तु बन जाता है। लोक इतिहास जब मिथक बन जाता है तब वह संस्कृति का हिस्सा हो जाता है। लोक इतिहास मानव जीवन में संस्कृति के अतीत, वर्तमान और भविष्य का सेतु-संयोजन करता है।

परम्परा - परम्परा से लोक संस्कृति का निर्माण होता है। परम्परा लोक जीवन का अनिवार्य अंग है। लोक जीवन के मूल्यवान तत्व इसमें निहित हैं। मनुष्य जीवन के प्रारंभिक विकास में आचरण के कुछ नियमों की परिकल्पना हुई है, जो परवर्ती काल में परम्परा का रूप धारण करने में सहायक सिद्ध हुई। इन नियमों को पीढ़ी दर पीढ़ी अपनाने लगी। ये नियम जीवन को स्फूर्त रखने के लिए अपरिहार्य बन गये हैं। वर्तमान के लोक व्यवहार, धीरे-धीरे परम्परा का रूप धारण कर लेते हैं। परम्परा की धारा सदैव प्रवाहमान रहती है। मन, वचन और कर्म की गतिशीलता के माध्यम से परम्परा की अभिव्यक्ति होती है। लोक विश्वास, लोक व्यवहार, लोक रीति, अनुष्ठान जैसे मनोविकारों में परम्परा को बरकरार रखा जाता है।

रीति-रिवाज - रीति पारम्परिक क्रियात्मकता का नाम है और रिवाज़ रीति की सामाजिक स्वीकृति है। प्रथा, परम्परा को निभाने की क्रिया को रीति कहते हैं। रिवाज़ उस क्रिया पर लगाई जानेवाली सामाजिक मुहर है। व्यावहारिक जीवन में कई तरह के रीति-रिवाज़ निभाये जाते हैं। पर्व, त्योहार, विवाह, पूजा, अनुष्ठान आदि में कई प्रकार के रीति-रिवाज़ों का पालन किया जाता है। देश, काल और परिस्थिति के साथ ये बदलते हैं और नये रीति-रिवाज़ भी बनते जाते हैं।लोक जीवन में रीति-रिवाज़ों की प्रमुख भूमिका होती है। रीति-रिवाज़ मानव के यथार्थ अनुभव की कसौटियाँ है। भारतीय जीवन में रीति-रिवाज़ों का सर्वोपरि स्थान है।

लोक विश्वास - यह पूरा संसार लोक विश्वास पर टिका है। पृथ्वी, आकाश, जल, वायु, अग्नि, सूर्य, चन्द्र और समस्त प्रकृति पर मनुष्य सहज रूप से भरोसा रखता है। इसी व्यापक सामाजिक और आस्था जन्य अवधारणा को लोक विश्वास कहलाता है। पुरातन लोक विश्वासों की एक लंबी परम्परा है। व्यक्तिगत स्तर से निकलकर समष्टिगत होकर विश्वास का क्षेत्र लोक विश्वास तक फैल जाता है। लोक विश्वास अच्छे और बुरे दोनों तरह के होते हैं। अच्छे विश्वासों को शकुन और बुरे विश्वासों को अपशकुन के नाम से जाना जाता है। लोक विश्वासों में लोक जीवन की भौतिक एवं धार्मिक चेतना का मूल स्रोत निहित रहता है। लोकगीत, लोक कथा, लोक गाथा, मिथक, लोकोक्तियाँ आदि में हमारे अनेक लोक विश्वास देखे जाते हैं। लोक विश्वास का क्षेत्र व्यापक है। लोक विश्वास जीवन व्यवहार से ही आते हैं। अतीत से चलकर वर्तमान में सदैव जीवन-व्यवहार के साथ चलकर लोक विश्वास भविष्य के लिए सुरक्षित रहते हैं। लोक विश्वासों से प्राप्त मार्ग एवं निर्णय पर चलकर लोक जीवन श्रेयकर बन जाता है। लोक जीवन में आने वाले विघ्न-बाधाओं को सुलझाने का कार्य लोक विश्वास करते हैं। आदिकाल से आज तक असंख्य लोक विश्वास हर समाज, हर संस्कृति में मिलते हैं। लोक जीवन को गतिशील बनाने में लोक विश्वासों की महती भूमिका है। इन विश्वासों का एक मानवीय एवं मूल्यगत आधार है जिसको कविता में स्थान मिला है। जान-बूझकर नहीं बल्कि परंपरा की नई व्यंजकता के साथ यह कविता में परोक्षतः व्यंजित होता है।

लोक देवता - आदिम समाज ने पेड़-पौधों, जल, अग्नि, सूर्य और चन्द्र; प्रकृति आदि में देवता की उपस्थिति की कल्पना की। लोक देवताओं का वर्णन प्रायः वाचिक परम्परा में होता है। लोक में दो तरह के देवताओं के स्वरूप मिलते हैं। एक प्रारंभिक प्रतिष्ठित देवता और दूसरे स्थानीय देवी-देवता। पारम्परिक देवी-देवताओं के प्रति व्यापक गहरी आस्था का विकास हुआ है। इस स्वरूप के मिथकीय रूप मनुष्य के मस्तिष्क में आदिम परम्परा की तरह जीवंत है। पर स्थानीय देवी-देवताओं से संबंधित आँचलिक मान्याएँ होती हैं। शिव को पृथ्वी के आदि देवता के रूप में माना जाता है। सारे संसार में शिव का मिथक प्रचलित है। लोक देवता कई तरह के होते हैं। पाप नाश करने वाले, बीमारी फैलाने वाले और दूर करने वाले, संकट दूर करनेवाले, रक्षा करने वाली देवियाँ, सुख-संपदा देनेवाली, स्वस्थ रखने वाले गाँव के देवता, रास्ते के देवता, कुल देवता, प्रकृति देवता, स्वर्ग-नरक के देवता, नदी पहाड़ पनघट के देवता। लोक जीवन की सोच देवताओं के बिना अधूरी रह जाती है। प्रतीकों के माध्यम से लोक देवताओं का स्वरूप निर्धारित किया जाता है। लोकजन छोटे-छोटे सुखों और दुःखों के कारण लोक देवताओं को मानते हैं। विभिन्न लोक मान्यताओं से लोक धर्म की स्थापना होती है। लोक धर्म के केन्द्र में लोक देवता होते हैं। लोक देवताओं को लोक संस्कृति के पोषक तत्व माने जाते हैं। विभिन्न व्रत-उपवास, पर्व, त्योहार, दान-पुण्य आदि लोक देवता साँस्कृतिक बुनावट के अभिन्न अंग होते हैं। इन स्थानीय विश्वासों का कविता में कोई स्थान नहीं है। लेकिन कविता कभी-कभार इन रूढ़

मान्यताओं को स्थान देती है जिससे कविता का एक नया पुनर्जन्म संभव है।

लोक धर्म - लोक धर्म में संस्कृति के सभी तत्व होते हैं। लोक समाज इसी लोक धर्म से बंधा रहता है। मिथकों से लोक धर्म का निर्माण हुआ है। लोक जीवन में धर्म की स्थिति अपरिहार्य है। लोक धर्म सामाजिक उत्तरदायित्व और कर्तव्य पर टिका होता है। व्रत-उपवास, त्योहार, यज्ञ, पाठ-पूजा, अनुष्ठान, जादू-टोना, तंत्र-मंत्र आदि धर्म की क्रियायें होती हैं। इनमें मनुष्य का विश्वास और लोक व्यवहार बसता है। लोक व्यवहार और विश्वास से लोक धर्म बनता है। लोक व्यवहार में धर्म की जड़ें होती है। लोक धर्म जीवन को मर्यादित कर जीने की शैली और शक्ति प्रदान करता है। कला और साहित्य में लोक धर्म के तत्व मौजूद होते हैं। उसकी मानवीय पक्षधरता में इसी का प्रतिफलन मिलता है।

लोक व्यवहार - लोक व्यवहार समाज का दर्पण है। मनुष्य सामाजिक प्राणी है, इसलिए उसे नैतिक मूल्यों को बचाए रखना पड़ता है। लोक व्यवहार मानव को मर्यादित एवं संयमित रखते हैं। संस्कृति का स्वरूप लोक व्यवहारों से बनता है। मनुष्य के संबन्धों की व्याख्या को लोक व्यवहार निर्णीत करते हैं। लोक व्यवहार मानव के आचरण का हिस्सा है। इसके अन्तर्गत समस्त आचार-विचार की संपत्ति आ जाती है। लोक व्यवहार से अनेक पहेलियाँ, सूक्तियाँ और सुभाषितों का जन्म होता है। लोक व्यवहार के लिए समाज एक अनिवार्य हिस्सा होता है। इन्हीं लोक व्यवहारों से लोक रीतियाँ और परम्पराएँ बनती हैं।

लोक साहित्य - लोक साहित्य की अपनी अनुस्यूति है। उसका कोई सीधा संबंध आधुनिक साहित्य से नहीं है। लेकिन आधुनिक साहित्य या विशेष रूप से कविता, अपने को लोक से एकदम भिन्न नहीं समझती है। लोक साहित्य एवं उसके अवांतर पक्षों का संक्षेप में यहाँ उल्लेख इसलिए अनिवार्य है क्योंकि वह हमारी विरासत है। हमारी परंपरा है। लोक साहित्य मौखिक परम्परा से प्राप्त होता है जिसके रचयिता अनाम होते हैं। लोक साहित्य में लोक मानस प्रतिबिम्बित रहता है। सामान्य जन समाज में व्याप्त समस्त विचार, आदर्श, मनोभाव, विश्वास, परम्परा, रहन-सहन, रीति-रिवाज, अनुष्ठान, क्रियाओं आदि का समन्वित अध्ययन लोक साहित्य का उद्देश्य है। लोक जीवन, लोक साहित्य का प्राण होता है। "लोक साहित्य मौखिक परम्परा से साँस्कृतिक धरोहर के रूप में पुष्पित एवं पल्लवित होता है।"[1] लोक साहित्य, लोक संस्कृति का एक भाग है। जन-जन की भावनाओं एवं विचारों के युगों से संचित कोष को ही लोक साहित्य नाम दिया गया है। इस संचित कोष को मानव द्वारा हृदय और मस्तिष्क में रखा गया और अनेक अवसरों पर आवश्यकता के रूप में इसका उपयोग किया गया। लोक साहित्य में सदैव लोक भावनाओं को सम्मान दिया गया है। लोक की भाषा को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया गया। अतः लोक की ज़रूरत के अनुरूप उसे ढ़ाला गया है। लोक एक अनंत चेतनाशील सत्ता है। लोक जीवन में व्याप्त सुख-दुःख, आशा-निराशा, हास्य-रुदन के कठिन घात-प्रतिघात से भावाकुल होकर मनुष्य

---

1. डॉ. विद्या चौहान : लोकसाहित्य (प्र.सं. 1991) : पृ. 15

संवेदनशील हो उठता है। हृदय की संवेदना ही मानव की वाणी में प्रस्फुटित होकर साहित्य की सृष्टि करती हैं। लोक समाज में व्याप्त मानव जीवन का मुखरित व्यापार लोक साहित्य है। भारतीय साहित्य इसी व्यापक लोक सत्ता से अनुप्राणित है। "प्राचीन भारत में लोक साहित्य की परम्परा प्रचार परिमाण में पायी जाती है। वेदों, पुराणों, रामायण, महाभारत, महाकाव्यों तथा नाटकों के अध्ययन से पता चलता है कि अतीत युग में भी लोक साहित्य की सत्ता विद्यमान थी।"[1] लोक साहित्य, लोक जीवन से पृथक नहीं है।

लोकगीत - लोकसंस्कृति के समग्र संवाहक बनकर लोकगीत गाये जाते हैं। लोक वाचिक परम्परा में पर्व और संस्कार से संबन्धित गाये जाने गीतों को लोकगीत कहा जाता है। लोकगीत किसी जाति, समूह और देश की लोक संस्कृतियों के परिचायक होते हैं, उसमें जीवन की प्रत्येक धड़कन को अनुभव किया जा सकता है। मानव के आचार विचार, रीति-रिवाज़, जनन-मरण, परम्पराएँ, रूढ़ियाँ, अतीत और वर्तमान के सारे संस्कार लोकगीतों में सहज रूप से मिलते हैं। लोक साहित्य के भंड़ार में लोकगीतों की संख्या अनंत है। गाना मन की सहज प्रवृत्ति है, इसलिये लोकगीत मनुष्य के हृदय का स्पन्दन है। ऐसे गीत जीवन का स्फुट काव्य है। ये गीत किसी एक व्यक्ति की रचना नहीं होते, बल्कि समूहगत रचनाशीलता का परिणाम होते हैं। लोककण्ठ की धरोहर बनकर लोकगीत प्रकट होते हैं। एक लोकगीत पीढ़ियों से खरे अनुभव से तपकर बनता है।

---

1. डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय : भारत में लोक साहित्य (प्र.सं. 1984) : पृ. 17

उसमें सामान्य जनता के यथार्थ जीवन की तपिश, मार्मिकता, काव्यात्मकता, रसोद्रेकता, संगीतात्मकता सरल और व्यापक रूप में निहित होती है। "लोक भाषा के माध्यम से स्वर और लय के संगीतात्मक आवरण में लिपटी हुई सामान्य जन समुदाय के हार्दिक जागरण से पूर्ण भावानुभूतियाँ लोकगीत गहलाती है। जगत् की विभिन्न चेष्टाओं एवं स्थितियों का प्रभावपूर्ण चित्र इन गीतों में निबद्ध रहता है।"[1] लोक जीवन की गहनतम भावनाओं की वास्तविक रागात्मकता लोकगीतों में मिल जाती हैं। जन-जीवन के बीच गूँजनेवाली बाँसुरी की तान लोकगीत में सुनाई पड़ती है।

लोककथा - लोक कथाओं में मानव जीवन की तलाश की अभिव्यक्ति है। लोक जीवन के विभिन्न आयाम लोक कथाओं में सन्निहित रहते हैं। तत्कालीन संस्कृति के सभी तत्वों को आत्मसात करते हुए लोक कथाओं का निर्माण होता है। सामाजिक संबन्धों की गहराई के कारण लोक कथाएँ एक जगह से दूसरी जगह यात्रा करती हैं। प्रत्येक अंचल की सीमा को लाँघकर लोक कथाएँ संसार व्यापी बनती हैं। लोक कथाओं का समाज व्यापक समावेशी और पारदर्शी है। प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से पीढ़ियों के संचित ज्ञान की धारायें लोक कथाओं में लक्षित हैं। इन कथाओं में किसी चरित्र, किसी घटना या किसी कथानक के माध्यम से संस्कृति का दिग्दर्शन होता है। आदिकाल के मानव ने अपने जीवन और अनुभव की अभिव्यक्ति कथाओं के माध्यम से किया है। इस कारण से लोक कथाओं को लोक

---

1. डॉ. छोटेलाल बहरदर : लोकगीतों का समाज शास्त्रीय अध्ययन (प्र.सं. 2000) : पृ. 71

संस्कृति की कलात्मक अभिव्यक्ति का दर्जा प्रात हुआ है। प्रकृति के जड़-चेतन अंश और मनुष्य का संबन्ध-गहरे रूप में इन कथाओं में व्यक्त है। पेड़, पौधे, चिड़ियाँ, भूत, प्रेत, राजा-रानी की कथाएँ लोक कथाओं में वर्णित होती हैं। लोक कथाएँ हमारी वाचिक परम्परा की मूल्यवान धरोहर है। मानव जीवन का साँगोपाँग चित्रण होने से लोककथाएँ जीवन-शैली को संवारने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं। हितोपदेश, पंचतंत्र जैसे प्रचलित साहित्य भारतीय लोककथाओं के अन्तर्गत आते हैं। जब से वाणी का उत्स हुआ तब से लोक कथाओं का उत्स माना जाता है। लोक कथाओं का क्षेत्र ग्राम ही नहीं, समस्त विश्व होता है।

लोक गाथा - लोकगाथा में गीत और कथा दोनों संयुक्त रूप से प्रयुक्त होते हैं। लोकगाथा में लंबी गेय कथाओं के गीत होते हैं। स्थानीय संस्कारों की अभिव्यक्ति, उनके पात्र, कथानक और घटनाओं की अन्विति लोक गाथा में देख सकते हैं। उनमें आँचलिक विशेषता की छाप स्पष्ट रूप से देखी जाती है। लोकगाथा में कथा गान के साथ नृत्य, अभिनय और संगीत की संपृक्ति पायी जाती है। लोक बेलियों की समस्त प्रवृत्तियों का समावेश इन लोक गाथाओं में उपलब्ध है। लोक गाथा जातीय संस्कृति की संपूर्ण संवाहक है। लोक के अनेक विश्वास, अनुष्ठान और रीतियों का वर्णन लोक गाथा में होता है। लोकगाथा के विस्तारित आकार-प्रकार के कारण उनमें लोक साहित्य के सभी तत्वों का समावेश मिलता है। लोक भाषा के माध्यम से साँगीतिक आवरण में आबद्ध दीर्घ कथा वस्तु की अभिव्यक्ति लोक गाथा कहलाती है। लोक गाथा मानव समाज का

आदिम साहित्यिक रूप है। नदी के प्रवाह में पत्थर के टुकड़े घिस-घिसकर गोल और सुन्दर आकार धारण कर लेते हैं, उसी तरह लोकगाथायें लोक कंठ में युग-युग तक प्रवाहित होकर लोकगाथा नित नवीन रूप धारण करके विकसित होती रहती हैं। लोक गाथाओं में हमेशा सत्य और धर्म की विजय दिखाई जाती है। लोक काव्य, शैली और प्रस्तुति की दृष्टि से हर लोक गाथा, अपनी स्वतंत्र और मौलिक पहचान रखती है।

लोकभाषा - लोक भाषा का व्यवहार जन सामान्य के मध्य बोलचाल के लिए होता है। लोक भाषा में कविता का सृजन करने से आम जनता पर उसका असर अधिक मात्रा में होता है। यह बोलचाल की भाषा है जो जनकंठ में सामान्य रूप से आदान-प्रदान करने में सक्षम बन जाती है। लोकोक्तियों तथा मुहावरों का प्रयोग लोक भाषा में प्रचुरता से होता है। लोक भाषा का प्रयोग करने पर साहित्य लोक मानस को गहरे रूप में स्पर्श कर सकता है। हिन्दी कविता में लोक जीवन में प्रयुक्त होने वाली लोक भाषा के अनेक शब्दों का प्रयोग कविता की ताज़गी, जीवन्तता और सौन्दर्य उन्मीलित करने के लिए हुआ है। उससे कविता की बानगी-एकदम परिवर्तित होती है। हिन्दी में अनेक बोलियों के जीवित रहने के कारण लोकभाषा की सृजनात्मक कडी कभी टूटी नहीं है। सामान्य जीवन में इन सब का प्राचुर्य है लोक भाषा में इसी प्राचुर्य का विस्तार देखने को मिलता है। बोलियों की जीवंत उपस्थित से भाषा की जीवंत रही। लेकिन आधुनिक कविता परिमार्जित भाषा का प्रयोग करती है जो स्वाभाविक है। यह कहीं न कहीं अपनी विरासत से संपृक्त होती है और उससे उत्प्रेरित

होती है। भाषा कविता का माध्यम नहीं बल्कि भाषा कविता की आत्मा है। समूची कविता अपनी आत्मा के बिना अभिव्यक्त नहीं हो सकती। आधुनिक परिनिष्ठित एवं परिमार्जित कविता-भाषा में लोक भाषा का विलयन भी एक सहज प्रयोगमात्र है। यह परंपरा का आवास है। इसलिए कहा जा सकता है कि लोक-भाषा का अलग महत्व भी है और आधुनिक संदर्भ में भी वह मूल्यवान धरोहर है।

लोकोक्ति - गंभीर आशय से भरी प्रत्येक उक्ति को लोकोक्ति कहते हैं। इस उक्ति में गंभीर आशय छिपा रहता है। कम से कम अर्थवान शब्दों से इसका संगठन होता है। पर इसका क्षेत्र विस्तृत होता है। लोकोक्तियाँ मानवीय ज्ञान के घनीभूत रत्न हैं, जो जीवन की उलझनों को सुलझाने का काम करते हैं। इसमें जन-जन का तपा हुआ ज्ञानानुभव होता है जी भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालों में हमेशा खरा उतरता है। सरल, कसी हुई भाषा, प्रभावोत्पादक शैली और लोकरंजन ही लोकोक्तियों की विशेषता है। लोक में अपनी अह्म भूमिका निभाने में लोकोक्तियाँ सक्षम हैं। लोकोक्तियाँ श्रमिक जनता की संपूर्ण सामाजिक और ऐतिहासिक अनुभूतियों की संक्षिप्त रूप हैं। भारत की प्राचीन लोकोक्तियों में नीति की पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है। समाज को ज्ञान शिक्षा और निर्णय देना लोकोक्ति का प्रमुख, ध्येय है। संकेतों ने भाषा का रूप धारण करके मानव के अनुभवों को संक्षिप्त रूप में अभिव्यक्ति की। समय की आग में तपकर ही लोकोक्तियों की बनावट इतनी घनीभूत हुई है। ये अनुभवी सूत्र वाक्य मानव की भाषा को प्रभावशाली बनाते हैं। लोकोक्ति सर्वकालिक रूप

धारण करके समाज में व्याप्त रहती है। मानव के इतिहास, संस्कृति और प्रकृति के अनेक पहलुओं का समावेश इसमें होता है।

कहावत - कहावत ज्ञान और अनुभव की घनीभूत रचनाएँ हैं। हर काल में इसका महत्व है। 'कही हुई बात' को कहावत कहते हैं। कहावत लोक मन को गहरे रूप में झकझोरती है। स्वयं सिद्ध वाक्य में कहावत की बनावट होती है। कोई घटना, कथा, किंवदन्ती या प्रसंग से कहावत का निर्माण लोक में जारी रहता है। कहावतों में दो शब्द हो या बीस शब्द, उनकी बनावट या संरचना बोलने में सहज होती है। कसाव से युक्त उसकी बुनावट होती है। कहावतों के प्रासंगिक प्रयोग से भाषा में सृजनशीलता आती है। कहावतों में मानव जीवन के कड़वे-मीठे अनुभवों को अत्यन्त सुन्दरता और काव्यमयी भाषा में प्रस्तुत किया जाता है। किसी सामाजिक विसंगति की व्याख्या भी कहावत में ढूँढ़ी जा सकती है।

पहेली - पहेली में प्रत्यक्ष वस्तु को छिपाकर उस पर समान रूप, गुण, आकार-प्रकार की किसी दूसरी वस्तु के वर्णन का आरोप किया जाता है। कूटपद, मुकर्रियाँ, अटका, पारसी आदि पहेली के विभिन्न नाम हैं। संस्कृत में पहेली को प्रहेलिका कहते हैं। पहेली के प्रयुक्त शब्दों में अभीष्ट अर्थ तक नहीं पहुँचा जा सकता। प्रकट रूप में जिस वस्तु का वर्णन पहेली में होता है, वह तो कभी उसका अर्थ नहीं होता, साँकेतिक अर्थ पकड़कर ही लक्ष्य तक पहुँचा जाता है। पहेली के तहत अप्रकृत के बहाने प्रकृत का वर्णन होता है। प्रतीकात्मकता इसमें लक्षित होती है। वर्णित वस्तु के छोटे-छोटे चित्र या बिम्ब होते हैं। चित्रात्मकता और बिम्बात्मकता पहेली

की विशेषता है। पहेलियाँ लोक संस्कृति की अनेक परम्पराओं, रीतियाँ और विश्वासों का संवहन करती हैं। समय सापेक्ष होने के कारण काल के आवश्यक परिवर्तनों के साथ संतुलन स्थापित करके पहेलियाँ आज भी सक्रिय हैं। पहेलियाँ वाचिक परम्परा की अर्थवान धरोहर हैं।

मिथक - मिथक द्वारा समाज में स्वीकृत आचार-नियमों, रीतियों और अनुष्ठानों की व्याख्या होती थी। संकेत, बिम्ब, प्रतीक और अभिप्राय मिलकर मिथक की रचना करते हैं। "मिथकीय चेतना आज भी हमारे संपूर्ण क्रिया-कलाप, चिन्तन और संस्कारों के मूल में जीवित है। मिथक संपूर्ण मानवता के शताब्दियों में सारभूत अनुभव-पुँज है, और अवचेतन में सुषुप्त होने के बावजूद वे प्रकृति, ऋतु, नेता, नवीन विचार, यौन प्रवृत्ति, जनतंत्र या सामूहिकता, विज्ञान और मनोविज्ञान - आदि सभी क्षेत्रों में हमारा प्रत्यक्षा-प्रत्यक्ष रूप से नियम न करते हैं, हमें प्रेरित करते हैं और अभिव्यक्ति की दिशाएँ देते हैं।"[1] संस्कृति और धर्म का निर्माण मिथक के द्वारा होता है। संस्कृति की जटिलतम संरचनाएँ मिथक कथा के द्वारा अभिव्यक्त होती है। एक शब्द या प्रतीक के पीछे पूरी कथा के सूत्र छिपे हो, कोई एक क्रिया, चित्र या अभिप्राय के पीछे मनुष्य की बुनियादी कथा की अवधारण स्पष्ट होती हो तो वहाँ मिथक उपस्थित रहता है। आदिम मानव की भाषा के रूप में सब से पहले मिथक का विकास हुआ था। भाषा के माध्यम से मनुष्य जीवन और प्रकृति के रहस्यों के प्रति

---

1. जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव : मिथकीय कल्पना और आधुनिक काव्य (प्र.सं. 1985) : पृ. 2

अपनी प्रतिक्रियाओं को अलौकिक गाथाओं के रूप में अभिव्यक्त करता था। सूर्य का उदित होना, चन्द्रमा की शीतलता, फसलों का उगना, बिजली की चमक, जैसे कार्य आदिम मानव के मन में विस्मयात्मक रहस्यात्मक व्यापार थे। इन रोमाँचकारी बातों को व्यक्त करने के लिए मिथक का प्रयोग होता था। "मिथक किसी जाति की भविष्यवादी दृष्टि को मज़बूत बनाते हैं और वर्तमान का व्यावहारिक बोध कराने में सहायक होते हैं। मिथक की एक बड़ी भूमिका किसी महत् कार्य के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ करने की है। मिथक अतीत की घटनाओं से जुड़े होने पर भी वर्तमान के सामूहिक राष्ट्रीय जीवन के संदर्भ में नई अर्थवत्ता की तलाश करते हैं।"[1] आदिम मानव ने जीवन की विभिन्न सच्चाइयों को मिथक के प्रकाश में अर्जित किया था। लोकाचरण के मार्ग में मिथक आज भी मार्गदर्शी का काम करते हैं।

हिंदी कविता में लोकचेतना की अभिव्यक्ति

कविता और लोकचेतना का पारस्पर्य सदैव रहा है। प्रत्येक युग की प्रवृत्तियों के अनुरूप, अभिरुचि के अनुकूल या संवेदना के अनुकूल लोकचेतना की अभिव्यक्ति काव्य में होती रही है। हिन्दी साहित्य के आदिकाल में लोकचेतना का अनुभव हम कर पाते हैं। लोकचेतना के स्फुरण के कई आयाम आदिकालीन रचनाओं में मिलते हैं। मध्यकाल में भक्ति काव्यों का सौंदर्य इसी लोक चेतना से अभिभूत दिखाई पड़ता है। इसके अच्छा उदाहरण कबीर की रचनाएँ हैं। कबीर ने अपनी रचना जन

---

1. शंभूनाथ : मिथक और आधुनिक कविता (प्र.सं. 1985) : पृ. 14

सामान्य के लिए ही प्रस्तुत की है। उनके पदों में से स्पष्ट है कि उनका ध्यान सामान्य जन पर रहा है। तभी तो वे आज भी 'आधुनिक' कवि हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं में ऐसे विकल्प दिए हैं जो प्रकृति एवं अपनी मिट्टी से जुड़े हुए हैं। उन्होंने ब्रह्मा (अलौकिकता) को कुम्हार और मानव-सृष्टि को मिट्टी का घड़ा माना है। उन्होंने ज़ोर देकर कहा है कि ईश्वर की खोज खुद अपनी आत्मा में ही करनी है। स्वयं को सुधारना है, तभी लोक सुधरेगा। 'चित्त' की महत्ता को पहचानकर ही हर मनुष्य कार्यरत हो सकता है। मन में व्याप्त अज्ञान-दुराचार की भावना व्यक्ति को अंधा बना देती है। ऐसी हालत में व्यक्ति की आत्मा निर्जीव-सा बन जाती है। ज्ञान की प्राप्ति ही इस अंधकार को दूर कर सकेगी। पर यह ज्ञान मोटे-मोटे ग्रन्थों से नहीं, बल्कि लोकानुभवों से प्राप्त है। उन्होंने इसी आत्मानुभव को 'कस्तूरी' की महक मानी है। पोथियों का ज्ञान पाने पर भी पंड़ितों को व्यावहारिक जगत् का ज्ञान मिलता नहीं है। उनका कोई लोकानुभव नहीं होता।

हिन्दी कविता में लोकाभिव्यक्ति की पूर्व-परम्परा पर विचार करने के लिए हिन्दी साहित्य के आधुनिककाल के पूर्ववर्ती समय में प्रयुक्त लोकधर्मी तथ्यों पर प्रकाश ड़ालना उचित ही है। यह लोकधर्मिता भारतीय जीवन का एक अभिन्न सहचर रहा है। प्रथमतः उस समय के संतों ने लोक - कंठ में जीवित सामान्य बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया। यह लोकभाषा पानी के समान निर्मल और मधुर थी। भक्तिकाल का साहित्य संपूर्ण रूप से लोक जीवन का सच्चा नमूना बन गया। उसमें लोक धर्म,

लोक चित्त और लोक भाषा को प्रमुखता दी गयी थी। इन्हीं के अनुरूप यथार्थता का अंकन रचनाओं में मिलता है।

कबीरदास की भक्ति पद्धति में मानव को केन्द्र स्थान मिल गया है। उनकी रचना आम जनता के लिए थी। वेदपाठ, बाह्याडंबर, मूर्तिपूजा, छुआछूत जैसे तत्वों का कट्टर विरोध किया था। "कबीर ने जो समस्त बाह्याचारों को अस्वीकार करके मनुष्य को साधारण मनुष्य के आसन पर और भगवान को 'निरपख' भगवान के आसन पर बैठाने की साधना की थी।"[1] लोक का जीवन आड़ंबरविहीन होता है। उन्होंने कृत्रिमता से मुक्त लोक को बचाए रखने की कोशिश की थी।

जायसीं ने भी लोक संस्कृति एवं दार्शनिक भावना को आधार मानकर अपनी श्रेष्ठ रचना 'पद्मावत' की रचना की। नागमती का विरह निरूपण खंड़ के माध्यम से उन्होंने अवध संस्कृति को साकार कर दिया है। "निश्चय ही लोक का स्वरूप इतना व्यापक होता है कि रहन-सहन, लोक विश्वास, त्योहार, उत्सव, संस्कार, वेशभूषा, मनोविनोद के साधन, खानपान, लोकगीत - संगीत तथा भाषा बोली भी इससे बाहर नहीं है। जायसी ने इन सारी बातों का निर्वाह भी अपने काव्य में किया है। अतः निश्चित रूप से जायसी एक लोक कवि है।"[2] जायसी ने लोक कथा को साहित्यिक रूप दिया, अतः इसकी मूल चेतना लोक जीवन ही है। जायसी जैसे सूफी कवि के प्रेमाख्यानों की एक विशेषता यह है कि उनके द्वारा

---

1. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी : कबीर (प्र.सं. 1990) : पृ. 147
2. वीरेन्द्र मोहन : कबीर और जायसी मानवमूल्य (प्र.सं. 1984) : पृ. 101

लोक पक्ष का सजीव चित्रण किया गया है। उनकी 'लोकचेतना' का सब से बड़ा प्रमाण पद्मावती की लोक कथा का ग्रहण और लोकभाषा अवधी का काव्यात्मक प्रयोग है। इसमें उनका यथार्थ परक लोकानुभव भी सक्रिय है।

जायसी का दृष्टिकोण व्यक्तिगत चेतना के द्वारा लोक चेतना तक व्याप्त है। लोकचेतना की पूरी प्रक्रिया व्यक्तिगत चेतना का ही व्यापक और विकसित रूप उद्घाटित करती है। ग्राम जीवन में उत्सवों का स्वागत बड़े आनंद के साथ होता है। जायसी ने अवध के लोक जीवन को शुद्ध रूप से व्यक्त किया है। अवध लोक जीवन और उनके सुख-दुःख, लोक की मर्यादा, हर्षोल्लास आदि का चित्रण जायसी ने विस्तार से वर्णित किया है। 'पद्मावत' में लोक जीवन और आध्यात्मिकता का अद्भुत समन्वय हम देख सकते हैं। 'प्रकृति' का भी सुन्दर उन्होंने वर्णन किया है। वह भी लोक का अटूट हिस्सा है। भारतीय त्यौहारों में होली, दीपावली और 'बसन्त-उत्सव' को जायसी ने अपनी रचना में स्थान दिया है। "पद्मावत के वसंत खंड़ में इस वसंत को कवि आनंद, उल्लास और नृत्य के उत्सव के रूप में दिखाता है। वसंत पंचमी के आते ही सर्वत्र आनंद का संचार हो जाता है। प्रकृति नाना भाँति के श्रृंगार और चिड़िया अपने संगीत की मधुर तान छेड़ती है।"[1] लोक का उत्सव ऋतुओं के परिवर्तन के अनुसार बदलता रहता है। जगत् के सभी कल्याणमयी तथ्यों से लोक मन का जुड़ाव होता है।

---

1. कुंवरपाल सिंह : भक्ति आन्दोलन और लोक संस्कृति (प्र.सं. 2002) : पृ. 81

सूरदास ने अपनी संगीतमयी पदावली से तत्कालीन लोकमानस के हृदय में झाँकने का प्रयास किया। सूर साहित्य में ब्रज के लोक जीवन से संबन्धित धार्मिक विश्वास, आचार-विचार एवं समस्त अनुष्ठानों को स्थान मिला। ब्रज संस्कृति का चित्र लोकोन्मुखता के साथ उन्होंने प्रस्तुत किया। कृष्ण के चरित्र और लीला गायन में सूर की व्यापक लोक-दृष्टि का परिचय मिलता है। मानवीय नैकट्य और मनुष्यता के सूक्ष्मतम संवेदनाश्रित रिश्तों का ताना-बाना ही लोक जीवन है। "दर्शन की परिधि से बाहर उन्होंने कविता को लोकमानस के प्राँगण में लाकर खड़ा कर दिया।"[1]

कृष्ण के जन्मोत्सव के समय सूर ने अपनी रचना में सारे ब्रज गाँव को सम्मिलित किया है। नन्द के घर पर सारा गाँव एकत्रित है। बालक, स्त्रियाँ, तरुण-तरुणियाँ, वृद्ध लोग तक वहाँ शामिल थे। लोक जीवन से संबन्धित रीतियाँ, विश्वास, कथाएँ आदि को इसमें स्थान मिला है। "सूर के साहित्य में न तो शास्त्रीय धर्म और दर्शन है, न परम्परागत काव्य के उपादान है। उन्होंने भारतीय संस्कृति के मानवीय चेहरे को हमारे सामने प्रस्तुत किया है। सूर के यहाँ भारतीय संस्कृति केवल अतीत स्मृति नहीं है, बल्कि समाज और जीवन की चेतना उनके काव्य की प्रमुख विशेषता है।"[2]

सूर के काव्य में 'प्रेम' अधिक स्वाभाविक और लोक जीवन से जुड़ा हुआ है। उन्होंने वात्सल्य, माधुर्य और प्रेम की अभिव्यक्ति सहज

---

1. मीरा गौतम : सूर काव्य में लोक दृष्टि का विश्लेषण (प्र.सं. 2000) : पृ. 21
2. कुंवरपाल सिंह : भक्ति आन्दोलन और लोक संस्कृति (प्र.सं. 2002) : पृ. 21

और स्वाभाविक रूप में प्रस्तुत की है। सूर की गोपिकायें सारे शास्त्रीय नियमों, परम्पराओं का अतिक्रमण करती हैं। इस प्रकार सूर ने अपनी रचना में एक नया प्रेमशास्त्र रचा है। 'तन्मयता' की तलाश की है। इस तन्मयता की अभिव्यक्ति में सूर ने सारे शास्त्रों के नियमों को तोड़ा है। लोक में प्रेम, त्याग जैसी बातें आ जाती हैं। तन्मयता प्रेम का अंतरंग पक्ष है और सूर काव्य का लोक सापेक्ष पक्ष है।

लोक और व्यवहार के धरातल पर सूर का काव्य 'सामान्य' और 'साधारण' मनुष्य को सामने रखकर संबन्धों की मानवीय व्याख्या प्रस्तुत करता है। 'सूर साहित्य' के सभी प्रसंगों के कृष्ण ही केन्द्र में मिल जाता है। सूर काव्य में कृष्ण लोक समाज के प्रतिनिधि के रूप में महत्वपूर्ण होकर उभरते हैं। इसलिए रचना में लोक संपूर्ण रूप से प्रतिबिंबित होता है। अतः सूर अपने युग की लोक संस्कृति के अग्रणी कवि सिद्ध होते हैं।

तुलसी हिन्दी के सर्वाधिक चर्चित कवि हैं। उनकी भक्ति भावना लोक मंगल तत्व से ओत-प्रोत है। तुलसी का राम सामान्य लोक जीवन के बहुत निकट है। आरण्यवास के दौरान वन मार्ग में राम बिल्कुल सामान्य बन जाते हैं। राजा के समस्त विशिष्ट वैभवों को छोड़कर वे पूर्ण रूप से लोक में समा गये हैं। उस समय उनका उठना-बैठना, खान-पान, जीवन-संस्कार भी पूर्ण रूप से लोकवादी बन गये हैं। इसी कारण तुलसी के राम को जनवादी-लोकवादी माना जाता है। "तुलसी के मन में राम, भक्ति और कविता इन तीनों का गहरा संबन्ध लोकमंगल और विवेक से

हैं।"[1] तुलसी ने इस समय साधारण ग्राम्य जीवन के संस्कार एवं व्यवहार को वर्णन का विषय बनाया है। उनकी रचना का राम 'लोकनायक' राम है। इसी के द्वारा तुलसी को जननायक की संज्ञा मिली थी।

तुलसी ने अपनी रचना में राम के जन्मकाल से लेकर चित्रित किया है। उनके जन्म के समय राजमहल में पूरा अवध शामिल था। नामकरण, अन्नप्राशन्न की वेला में भी संपूर्ण लोक जुड़ा हुआ था। तुलसी ने साधारण जन के साधारण जीवन को अपनी रचना में स्थान दिया है। इस कारण से तुलसी जननायक कवि सिद्ध होते हैं। "लोक और सत्ता का सदैव विरोध रहा है।"[2] तुलसी काव्य का मूल चरित् सामंत विरोधी और साधारण जन का पक्षधर है। 'रामचरितमानस' के मूल स्वर में जनमंगल की भावना मुख्य है। तुलसी के मंगल और विवेक का गहरा संबन्ध राम की दीनबन्धुता से है। इसलिए तुलसी के राम को मर्यादा - पुरुषोत्तम कहा जाता है। 'राम' ईश्वर की संज्ञा से, विशिष्टता से बिल्कुल सामान्य मनुष्य के रूप में हमारे सामने आते हैं। अतः तुलसी को लोक कवि माना जाता है। अपनी लोकोन्मुखता की वजह से वे आज भी चर्चित हो रहे हैं। "एक पूरा और समृद्ध भावबोध है हमारे इस तुलसी बाबा के पास। लोक जीवन से तुलसी ने जो कुछ प्राप्त किया है और उसे कलात्मक रूप देकर उसी लोक को लौटाया है। वह आज भी अद्‌भुत है।"[3]

---

1. विश्वनाथ त्रिपाठी : लोकवादी तुलसीदास (प्र.सं. 1974) : पृ. 12
2. कुंवरपाल सिंह : भक्ति आन्दोलन और लोक संस्कृति (प्र.सं. 2002) : पृ. 100
3. जीवन सिंह : शब्द और संस्कृति (प्र.सं. 2007) : पृ. 50

रीतिकालीन कवियों ने प्रेम तथा सौन्दर्य के चित्रण में ऋतुवर्णन, वियोग तथा पौराणिक रूढ़ियों का प्रयोग किया। इस युग के कवियों ने नायिकाओं की वेशभूषा के विविध उपकरणों की चर्चा की है। मेहंदी, काजल, अंजन, अंगराग ये सब वेशभूषा की चीज़ें लोकजीवन के श्रृंगार माने जाते हैं। रीतिकाल के 'बिहारी' जैसे कवियों ने अपनी रचना में लोक की अभिव्यक्ति को प्रमुखता दी है। लोकवाणी को प्रमुखता देने के कारण उनके लोक पक्ष को अनदेखा नहीं किया जा सकता। प्रकृति का वर्णन भी इस धारा में मुख्य तत्व है। बिहारी, घनानंद जैसे कवियों ने अपनी नायिकाओं को जिस तरह से प्रस्तुत किया है, वे सब लोकजीवन के समीप है। इतने पर भी रीतिकाल में लोक का रचनात्मक उपयोग अधिक नहीं हुआ है। भले ही हम कई संदर्भों से कई उदाहरण ढूँढ़ निकाल पाएँगे फिर भी वास्तविक लोक का विस्तार अनुपलब्ध है। इसका प्रमुख कारण जीवन के विस्तार का अभाव ही है।

आधुनिक हिन्दी साहित्य का सर्वप्रथम युग भारतेन्दु युग है। भारतेन्दु की लोक-दृष्टि ने उनको लोकप्रिय बना दिया। उन्होंने 'लोकचित्त' को प्राथमिकता देकर 'लोकभाषा' के माध्यम से अपने भाव स्पष्ट किये। भारतेन्दु के साथ उनके सहयोगी कवियों की प्रवृत्तियों में लोक-बद्ध दृष्टिकोण अनुभूत होता है। चौधरी बदरीनारायण प्रेमघन, प्रतापनारायण मिश्र, बालमुकुन्द गुप्त आदि भारतेन्दुयुगीन कवियों ने लोकपरक विषयों की रचना से लोकमानस को सुरक्षित रखा। "भारतेन्दु युग के कवियों ने लोक जीवन में प्रचलित आस्थाओं, अनास्थाओं, कहावतों, देवी-देवताओं

का वर्णन किया। लोकजीवन की छोटी से छोटी विशेषताओं का उल्लेख किया, वे उसकी उपेक्षा नहीं कर सके।"[1] इस प्रकार भारतेन्दु युगीन साहित्य का हिन्दी साहित्य में विशेष महत्व है। इस महत्व का सब से बड़ा कारण जनता और साहित्य के संपर्क का बढ़ाव ही है।

आधुनिक युग के द्वितीय 'उत्थान-चरण' नाम से द्विवेदी युग विख्यात है। इस युग में कविताएँ जीवन के नये परिदेश पर आधारित है। आचार्य द्विवेदी जी की कविताएँ समाज की समकालीन दशाओं पर लिखी गयी है। "नवजागरण काल में साँस्कृतिक एवं धार्मिक प्रतिनिधियों के व्यक्तित्व एवं उपलब्धियों की समीक्षा करने से जो महत्वपूर्ण तथ्य हमारे सामने आते हैं उनमें सर्वप्रथम पूरे युगजीवन को मूल्यांकित करनेवाली बौद्धिक चिन्तन पर आधृत मानवीय दृष्टि की प्रतिष्ठा है।"[2] इस युग के प्रमुख कवि श्री मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त, हरिऔध, रामचरित उपाध्याय आदि की कवितायें जीवन की नयी दिशाओं को लेकर रची गई हैं। 'प्रियप्रवास' और 'साकेत' इस युग के दो महनीय काव्य ग्रन्थ हैं। इनमें 'कृष्ण' और 'राम' का ईश्वर रूप में अवतरण न होकर मानव रूप में हुआ है। 'प्रिय-प्रवास' में हरिऔध ने कृष्ण को समाज-नेता के रूप में चित्रित किया है। उसी प्रकार राधा को एक सहज नारी के रूप में चित्रित किया गया है। राधा एक लोक सेविका सिद्ध हुई है। द्विवेदी युगीन कवियों की ईश्वरोपासना मानवीय धरातल पर परिकल्पित है। ये कवि लोकसेवा

---

1. विमलेश कान्ति : भारतेन्दु युगीन हिन्दी काव्य में लोक तत्व (प्र.सं. 1950) : पृ. 20
2. महेन्द्रनाथ राय : नवजागरण और छायावाद (प्र.सं. 1973) : पृ. 50

को ही ईश्वर की उपासना मानते थे। उनकी दृष्टि मनुष्योन्मुख थी, जीवन के हर क्षेत्र में आदर्श की स्थापना करना ही उनके काव्य का मुख्य लक्ष्य था। द्विवेदी युग के कवियों की कविता पर लोक-प्रभाव है।

छायावादी कवियों में पंत ने प्रकृति की रहस्याकुलता में, प्रसाद ने 'कामायनी' में पौराणिक कथा को, निराला ने दार्शनिकता एवं महादेवी ने विरह की दर्दीली अनुभूतियों को लोकतत्वों को अपनाकर अभिव्यंजना की है। छायावादी कवियों ने अपनी रचनाओं में ग्राम-प्रकृति के सौन्दर्य से, ग्राम्य जीवन एवं लोक-वृत्तियों की गहन उदात्तता से किया। इसके साथ लोकगीतों की लाक्षणिकता, प्रतीकात्मकता तथा भावुकता से कविता को पुष्ट किया है।

"भारतीय लोकजीवन की आदिम गाथाएँ प्रेम भाव की विविध अनुभूतियों से एवं कार्य-कलापों से भरी हुई है।"[1] छायावादी कविताओं में प्रेम की अभिव्यक्ति की प्रमुखता है। प्रेमाभिव्यंजना में कहीं-कहीं लोक का संस्पर्श अनुभव किया जा सकता है।

लोक के सौंदर्य को व्यक्त करने के लिए 'निराला' की 'तोड़ती पत्थर' नामक कविता को लिया जा सकता है। इसमें श्रम का सौंदर्य है जो सहजता से जन्मा है। यह कविता लोक के श्रम-सौंदर्य को उद्‌घाटित करती है। कर्मठ जीवन को अभिव्यक्त करने के लिए निराला ने 'प्रिय कर्म रत मन' का वर्णन किया है। इसी कर्मरत मन से सर्वहारा वर्ग मेहनत कर

---

1. डॉ. वीरेन्द्रनाथ द्विवेदी : आधुनिक हिन्दी कविता में लोक तत्व (प्र.सं. 1991) : पृ. 207

रहा है। निराला ने श्रमिक वर्ग की सुन्दर झाँकी प्रस्तुत की है। 'हथौड़ा' लेकर वह युवती बार-बार पत्थर पर प्रहार कर रही है। इस प्रहार में सक्रियता एवं चेतना का वास्तविक सौंदर्य प्रकट होता है। छायावादी कविता की धारा में बने रहक 'निराला' भारतीय संस्कृति के धरोहर को उजागर करते हैं। 'जागो फिर एक बार' नामक कविता में वे जनता को सक्रिय बनने का आह्वान देते हैं। निराला के बाद आने वाले त्रिलोचन, नागार्जुन केदारनाथ अग्रवाल जैसे आधुनिक प्रगतिशील कवियों ने अपनी कविताओं में लोकचेतना को अभिव्यक्त किया है। लोक-हृदय को पहचानने वाले कवि ठेठ भारतीय चरित्र को व्यक्त करते हैं।

प्रगतिशील कवियों ने लोकपक्ष के सभी पक्षों को ज़िन्दादिली से अपनी रचनाओं में प्रस्तुत किया हैं। त्रिलोचन, नागार्जुन और केदारनाथ अग्रवाल जैसे कवियों ने संपूर्ण सामाजिक सरोकार की भावना को अपनी रचना द्वारा उजागर किया है। 'त्रिलोचन' की कवितायें लोक संपृक्ति को आधार बनाकर सृजित हैं। त्रिलोचन ने अपनी कविता के लिए जीवित भाषा को उसकी जीवन्तता में ग्रहण किया। जनकवि होने के कारण उनकी कविता हिन्दी की जातीय कविता है। त्रिलोचन की कविता में गाँव के साथ शहर भी मौजूद है। गाँव और शहर के बीच का द्वन्द्व भी महत्वपूर्ण है। 'ताप के ताए हुए दिन' नामक संकलन की कविताओं में शब्द आँखों से टपकने वाले लहू की बूँदें बन जाते हैं। लोक अनुभव की तपिश में यह संकलन खरा उतरा है। त्रिलोचन प्रकृति को सामान्य किसान की आँखों से देखते हैं। उनकी कविताओं में गरीबी, शोषण और उत्पीड़न के शिकार

किसान है। इन चरित्रों के तहत गाँव में सब से कठिन ज़िन्दगी जीने वाले लोगों के ठोस अनुभवों की एक दुनिया साकार रूप में उभरकर आती है। इस अनुभव यथार्थ के चित्त्रण में त्रिलोचन की बेचैनी दृष्टव्य है। यह बेचैनी सामाजिक बुनियादी चिन्ता से पैदा होनेवाली है। "अपने समय के आदमी की अलग-अलग हार त्रिलोचन को परेशान करती है, क्योंकि वे इस सचाई को जानते हैं कि दरअसल अलग-अलग होना ही हार है। अपनी अनेक कविताओं में वे अनुभव के इस नये और जटिल स्तर को सीधी और अचूक अभिव्यक्ति देते हैं।"[1] त्रिलोचन की रचनायें एक संघर्षरत कवि के अनुभव ताप को संप्रेषित करनेवाली हैं। अपने संघर्ष को व्यक्त करने केलिए उन्हें लोक की आवश्यकता थी।

नागार्जुन की कविताओं में लोकजीवन और लोकमन के प्रति आत्मीयतापूर्ण भावों का उद्‌घाटन मिलता है। नागार्जुन की जीवन्त भाषा उनको जनता के बीच से ही उपलब्ध हुई है। धरती के प्रति पूजनीय भाव उनकी कविता की विशेषता है। लोकजीवन की शब्दावली युक्त बोलचाल की भाषा में वे अपनी सपाटबयानी व्यक्त करते हैं। उनकी अधिकाँश कविताओं में भारतीय मध्यवर्ग एवं निम्न-मध्यवर्गीय जीवन का चित्रण मिलता है। कविताओं में अभावग्रस्त, मामूली, उपेक्षित, असहाय ज़िन्दगी का चित्र प्रस्तुत होता है। भूख की पीड़ा उनकी कविता में लगातार व्यक्त होती है। 'प्रेत का बयान' शीर्षक कविता में भूख की विकराल हालत को अंकित किया है। इसमें भूख से मरने वाले गरीब अध्यापक का बयान

---

1. केदारनाथ सिंह : मेरे समय के शब्द (प्र.सं. 1993) : पृ. 81

प्रस्तुत है। निम्न-मध्यवर्ग की ज़िन्दगी की फटेहाली के कारण बननेवाले शोषक शक्तियों के प्रति विरोध उनकी कविताओं में दर्ज है। नागार्जुन की संवेदना का केन्द्र गाँव ही है। कृषक जीवन और उनकी समस्याओं में कवि की सक्रियता गहरे रूप में व्यक्त होती है। नागार्जुन की हर कविता की जड़ें एक वृक्ष की तरह अपनी मिट्टी में दूर तक व्याप्त रहती है। 'स्थानीयता' उनकी कविता का एक महत्वपूर्ण पक्ष है। अपने गाँव से बिछुड़ने की पीड़ा उन्हें सदा सताती रहती है। अपने 'तरउनी गाँव' की झाँकी उनकी कविता 'सिन्दूर तिलकित भाल' में व्यक्त होती है। नागार्जुन की भावुकता आधुनिक समाज की बढ़ती हुई निस्संगता के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया के रूप में काम करती है। वर्तमान समाज की विड़ंबनाओं और छल के विरुद्ध नागार्जुन के आक्रोश को उनकी कविता में परख सकते हैं। इन सब प्रकरणों को लोक धर्मिता के व्यापक संदर्भ में नागार्जुन ने प्रस्तुत किया है। इसलिए लोक अत्यधिक प्रामाणिक है।

केदारनाथ अग्रवाल का लोकरूप अपने बुन्देलखण्ड के जीवन से बना है। उनके अनुभव पूरे भारतीय जीवन के अनुभव है। बुन्देलखण्ड के लोकजीवन से केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं में बिम्ब उभरते हैं। अपने अंचल का जीवन, प्रकृति और जीव-जन्तु इन सबकी गतिविधियों पर वे पैनी नज़र रखने वाले हैं। चारों ओर के जनजीवन को वे बहुत करीब से देखते हैं। ऐसी लोक संपृक्ति ही उनकी कविता की सब से बड़ी विशेषता है। 'नीम का पेड़' नामक कविता में उन्होंने हमारे देश के लोकजीवन के सुख-दुःखों के विभिन्न पहलुओं को प्रस्तुत किया है। केदार की गहरी लोक दृष्टि ही इसका कारण है। वे जीवन की भाषा में सृजन

करते हैं। जनवादी चेतना उनकी कविता के तहत उजागर होती है। सामान्य जन का पक्ष लेकर वे रचना करते हैं। मेहनतकश जनता के विविध चित्र उनकी कविताओं में प्राप्त होते हैं। किसान युवक-युवतियों एवं गरीब श्रमशील मज़दूरों के रंग गाढे रूप में उनकी कविताओं में अंकित होते हैं। पूरे अर्थ में उनकी कविता एक विशिष्ट भारतीय ज़मीन की कविता है। उनकी विषयवस्तु, बिम्ब भाषा, नया-विधान यह सब कुछ लोकमय ही हैं। संकुचित जीवन ढ़ाँचे को तोड-मरोड़कर वे विशाल दृष्टिकोण को अपनाते हैं। ऐसे विशाल परिप्रेक्ष्य में वे भारतीय जीवन की लोक-परम्परा को आत्मसात करते हुए सृजनरत बन जाते हैं। लोक के रागात्मक पहलू को वे रेखाँकित करते हैं। लोकपरकता इन प्रगतिशील कवियों की कविता की धुरी है। इससे उनके रचना विधान में अकसर गतिशीलता मिल जाती है।

लोकजीवन और आधुनिक कविता

आधुनिक हिन्दी कविता में लोकचेतना की बहुरंगी छवि की अभिव्यक्ति हुई है। कवि अपने जनपद के जीवन से सदैव जुड़ा रहता है। व्यापक जन-जीवन से जुड़कर कवि सौन्दर्य की लोक-सृष्टि करता है। जीवन से संपृक्त सौंदर्य की सृष्टि के साथ सृजन करने वालों में मुक्तिबोध, अज्ञेय, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, रघुवीर सहाय, शमशेर बहादूर सिंह, भवानी प्रसाद मिश्र, विजयदेव नारायण साही केदारनाथ सिंह आदि कवि प्रमुख हैं। लोकधर्मी कवि अपनी प्रत्येक कविता में गहरे मानवीय संसक्ति को व्यंजित करते हैं। "कविता हमारे रोज़मर्रा जीवन की बहुत बड़ी

सच्चाई है। वह हमारे साथ रहती है और विकसित होती है। वह महसूस कर पाती है सब कुछ। कविता का हमारे आसपास रहना इसलिए ज़रूरी है कि वह हमारे आसपास ही सच्चे अर्थ में जीवित रहती है। कविता जब हमारे निकट रहती है तो हम ज़िन्दा लाशों की भूमिका में अवतरित नहीं हो सकते हैं। कविता और मनुष्य का सही संबन्ध यही है।"[1] हिन्दी कविता का आधुनिक परिदृश्य व्यापक है। यूरोपीय आधुनिकतावाद से अभिभूत होने पर भी हिन्दी की आधुनिक कविता ने सदैव हमारे नज़दीक होने का एहसास दिया है। अर्थात् उसने लोक जीवन को अपने भीतर सुरक्षित रखा है।

आधुनिक हिन्दी कविता अपने जीवन परिदृश्य से संपृक्त कविता है। जीवन यथार्थ के कई पक्ष इन कविताओं में अभिव्यक्त हुए हैं। कविता ने लोक जीवन में होने वाले मूल्यों के संघर्ष-फलक को अपने में समेट लिया है। कविता चाहे किसी किसी वैचारिकता से ओत प्रोत हो, संवेदना के अलग-अलग घनीभूत पक्षों को अभिव्यक्त करने में सक्षम क्यों न हो अंततः कविता को जीवन की गहराइयों से संपृक्त होना पड़ता है जो उसकी अपरिहार्यता है। ऐसे अवसरों पर कविता लोक यथार्थ याने लोक जीवन के सूक्ष्मतम पहलुओं का अवलंब लेता है और अपने अंतरंग का विस्तार करती है। हिंदी की आधुनिक कविता आधुनिकता से अभिभूत कविता है। लेकिन वह हमारे यथार्थ की भी कविता है। इसलिए उसमें लोक का आकलन सुलभ है। लेकिन यह आकलन प्रयोग के स्तर पर नहीं बल्कि संवेदना के घनत्व के प्रकरण के प्रयुक्त है।

❖❖❖

---

1. ए. अरविंदाक्षन : रचना के विकल्प (प्र.सं. 2006) : पृ. 29

अध्याय-2

आधुनिक कविता की लोकबद्ध दृष्टि

भूमिका

'आधुनिक' शब्द की चर्चा कई अर्थों में संभव है। जहाँ तक हिन्दी कविता का सवाल है, उसका सीधा और सरल संबंध आधुनिकता से है। आधुनिकता के प्रसार के प्रभाव में लिखी गई कविता का एक सशक्त प्रत्येक भाषा में दौर रहा है। उस दौर को आधुनिक कविता का दौर माना गया है। हर समय में प्रासंगिक होना ही आधुनिकता है। आधुनिक कविता में वर्तमान अनुभव पूरी संश्लिष्टता के साथ संलग्न हैं। आधुनिक कविता का मूल स्रोत आज के युग-सत्य और युग - यथार्थ है। हिन्दीं में आधुनिक कविता से ज़्यादा 'नई कविता' शब्द का प्रचलन और प्रयोग रहा है। नयी कविता आधुनिकता की देन है। आधुनिकता में यथार्थ का समर्थन सर्वाधिक है। आधुनिक संवेदना के सही मायने में प्रस्तुत करनेवाली अद्यतन काव्य-विधा ही आधुनिक कविता है।

आधुनिक कविता में यथार्थ की स्वीकृति के साथ-साथ कवि अपने अस्तित्व को उस यथार्थ का अंश मानकर उसके प्रति जागरूक अभिव्यक्तियाँ देता है। इनमें आत्मानुभूति की समस्त संवेदनाओं को स्वतंत्र रूप में रखने की चेष्टा मिलती है। अतः यथार्थ की कटुताओं और विषमताओं के प्रति कवि की भावनाएँ यहाँ व्यक्त होती हैं। वर्तमान संदर्भ में आधुनिक कविता का तात्पर्य स्वातंत्र्योत्तर कविता से है। इसमें आधुनिकता

को समग्र चेतना की भाँति स्वीकार किया गया है। आधुनिक कविता यथार्थ जीवन के ठोस अनुभवों को स्वीकारते हुए पूर्ण होती है। "आधुनिक प्रक्रिया की गतिमानता का प्रतिफलित तत्व आधुनिकता है, जिसे आधुनिकीकरण से उत्पन्न एक बोधात्मक सत्ता के रूप में भी देखा जा सकता है। आधुनिकता एक बोध के रूप में जब रूपांतरित होती है, तब वह आधुनिक बोध अथवा आधुनिक संवेदना के रूप में अभिहित की जाती है।"[1] इस प्रकार आधुनिक कविता में हमारे समय के यथार्थ की संवेदना लक्षित होती है।

नयी कविता ने अपने समय के भारतीय जन मानस के संकट, प्रश्न, स्वप्न, टूटन, पीड़ा आदि को स्वर दिया है। नयी कविता ने सच्चाई की ओर यात्रा की है। "साहित्य का मूल संबंध मानव की संवेदना से हैं। संवेदना के बिना साहित्य नहीं बनता, चाहे उसमें बुद्धिवाद का कितना भी ऊहापोह क्यों न हो, दर्शन की नयी-नयी भंगिमा क्यों न हो। बुद्धि, दर्शन, चिंतन, ज्ञान-विज्ञान सब को पहले जीवन में आत्मसात होना पड़ता है। आत्मसात होकर मानव संवेदना का अंग बनना पड़ता है।"[2] आधुनिक कवि खुद को अपने परिवेश के सुख-दुःख, संगति-विसंगति, पीड़ा और उल्लास का भोक्ता मानकर सब कुछ को अपने भीतर से उभारता है।

आधुनिक कविता ने मानवीय चेतना को नया अर्थ प्रदान किया है। मानव की आकाँक्षाओं को भी कविता ने अपने भीतर सहेज लिया है।

---

1. गंगाप्रसाद विमल : आधुनिकता साहित्य के संदर्भ में (प्र.सं. 1978) : पृ. 21
2. रामदरश मिश्र : आधुनिक हिन्दी कविता-सर्जनात्मक संदर्भ (प्र.सं. 1986) : पृ. 22

आधुनिक कविता आम जनता की विसंगतियों, विकृतियों, कुण्ठाओं से भरे जीवन में से ही जीवनीशक्ति के तत्वों को खोजती है। आधुनिक कवियों ने जन-जीवन की वेदना को महसूसा है। इस प्रकार वैयक्तिक एवं सामाजिक यथार्थ के प्रतिमानों को सहेजकर आधुनिक कविता विकसित होती है। "मैं कविता को मानवीय चेतना की अर्थपूर्ण अभिव्यक्ति का श्रेष्ठतम रूप मानता हूँ। उसे मनुष्य मात्र की मातृभाषा कहा गया है। जीवन के गहन से गहन पहलुओं तक उसकी व्याप्ति है। इसीलिए जीवन की अतल गहरइयों में होनेवाले परिवर्तनों की छाया साहित्य में सब से पहले कविता पर ही पड़ती है।"[1] आधुनिक कविता जीवन की सीधी-सच्ची और सहज अभिव्यक्ति को दर्ज करती है।

कविता काल का अतिक्रमण करती है। आज के कठिन समय में मनुष्य और यथार्थ को कविता की हरियाली ही नया मोड़ प्रदान करती है। "आधुनिकता में सामाजिक गतिशीलता, सामाजिक वर्गों का गाँव-देहात से नगर क्षेत्रों में आवागमन और प्रभावग्रहण पर निर्भर करती है। व्यक्ति तथा उसका संकट, संघर्ष तथा नियति ही इसका चिंत्य विषय है।"[2] मानवीय संवेदना की रक्षा करना कविता का प्रमुख दायित्व है। अन्याय के खिलाफ संघर्ष करने की प्रेरणा कविता के द्वारा मिलती है। वास्तव में कविता मानव जीवन की ज़रूरत बन जाती है। कविता की चरम सार्थकता कर्ममय जीवन में मानव की गति को रेखांकित करना ही है। इसी कारण

---

1. सं. जगदीश गुप्त : नयी कविता सैद्धान्तिक पक्ष-खंड 1 (प्र.सं. 2000) : पृ. 20
2. बलदेव वंशी : आधुनिक हिन्दी कविता में विचार (प्र.सं. 2002) : पृ. 16

से कविता व्यापक जीवन से जुड़ जाती है। कविता मानवीय संवेदना की क्रिया है। ऐसी स्थिति में कविता में आधुनिकता बोध का होना स्वाभाविक है। इसी बोध के द्वारा कविता की प्रयोग-धर्मिता बनी रखती है। "आधुनिकता का आधार प्रासंगिकता में खोजा जाना चाहिए। जीवन के लिए जो प्रासंगिक है, वह आधुनिक है। देशकाल के अनुसार बदलती और विकसित होती गयी संवेदना और मूल्यदृष्टि का कलात्मक निरूपण, किसी-साहित्य धारा को आधुनिक सिद्ध करता है।"[1]

आधुनिक कविता की शुरुआत सन् 1950 के आसपास मानी जा सकती है। 'तार सप्तक' के प्रकाशन के बाद प्रयोगवादी रचनाओं ने नयी कविता के लिए एक भावभूमि तैयार कर दी थी। उसको आधार मानकर ही नयी कविता का विकास हुआ। इस तथ्य को लेकर दो मत प्रचलित है। 'कविता के नए प्रतिमान' शीर्षक अपनी चर्चित पुस्तक में नामवर सिंह ने नई कविता को प्रयोगवाद से प्रस्थान माना है। उन्होंने कई उदाहरणों के माध्यम से अपने इस मत को सिद्ध किया है। दूसरा मत यह है कि प्रयोगवाद कई कविता की पूर्वपीठिका है। प्रयोगवाद से ही आधुनिक कविता का विकास हुआ है।

इस में कोई संदेह नहीं है कि आधुनिक कविता यूरोपियन मोडेनिसम् से प्रभावित कविता है। उसी अनुपात में वह भारतीय यथार्थ की भी कविता है। यूरोपियन आधुनिकता आधुनिक कविता की भावभूमि को पुष्ट करने में सहायक रही है। साथ ही साथ वह अपने ठोस यथार्थ

---

1. डॉ. रमाकान्त शर्मा : कविता का स्वभाव (प्र.सं. 2000) : पृ. 111

को दर्ज करने में भी समर्थ रही है। इसलिए कहीं-कहीं व्यक्तिवादी प्रतीत होने वाली रचनात्मकता का परिचय मिलता है तो आधुनिक कविता में व्यापक यथार्थ से संपृक्त जीवन संघर्ष के संदर्भ भी भरे पडे हैं। आधुनिक कविता स्वातंत्र्योत्तर भारतीय जीवन परिवेश की जटिलताओं को व्यंजित करनेवाली कविता है और व्यक्तिसत्ता से स्वतंत्रता की भी कविता है।

आधुनिक हिन्दी कविता में लोकचेतना

लोक चेतना आधुनिक कविता के लिए कोई नई बात नहीं है। उसने अपने पूर्व युगीन कविताओं को लोक से संपृक्त होते देखा है। आधुनिक कविता में पश्चिमी काव्य संवेदनाओं का गहन प्रभाव है। उसी अनुपात में भारतीय परिप्रेक्ष्य का प्रतिफलन भी। यह संक्रमण आधुनिक कविता में सशक्त है। इसी प्रकरण में आधुनिक कविता लोक को आत्मसात करती दीखती है। उसे अपनी जलवायु की अनिवार्यता महसूस हुई। उसे अपने लोक को सृजित करना पड़ा है।

आधुनिक हिन्दी कविता लोक युक्त कविता है। 'लोक' से विमुख होकर उसका कोई अस्तित्व नहीं हैं, क्योंकि कविता का आधार संपूर्ण जीवन है। सामान्य जीवन को और उसके यथार्थ के समग्र को अनदेखा करते हुए 'कविता' रची नहीं जा सकती। "कविता की प्रकृति लोक की सक्रियता से निर्धारित होती है। लोक की सक्रियता की पहचान उनके व्यवहार जगत् से मिलती है। हर युग के कवि की आँख अपने समय के लोक हृदय की पहचान के लिए चेष्टारत रहती आयी है।"[1] लोकजीवन के

---

1. जीवन सिंह : कविता की लोक प्रकृति (प्र.सं. 1990) : पृ. 15

नब्ज़ों को पहचानने वाला सहृदय ही कवि बन सकता है। भीतरी आँख की सहायता से वह सामान्य जनता की वास्तविकताओं को ग्रहण करता है। कवि जितना लोक जीवन के निकट है, उसके अनुरूप उसके मन में उतनी ही भावना जागती है। 'लोक जीवन' को वह सृजन का विषय ही नहीं बनाता हैं बल्कि उसको वह रचता है। जिन भावों को कवि ग्रहण करता है, उनको पुष्ट करके कल्पना के द्वारा कविताओं का सृजन किया जाता है। आधुनिक हिन्दी कविता अपने समय के लोक जीवन के समस्त भावों के साथ पाठकों के सामने उपस्थित होती है। लोकजीवन ही उसका 'मूल' है।

आधुनिक कविता में लोक जीवन के विविध रूप

लोक जीवन सृजन का प्रेरक तत्व है। "लोक दृष्टि कविता की पूर्णावस्था है। सामाजिक जीवन को कविता का आधार मानने से लोकदृष्टि विकसित होती है।"[1] जीवन के सभी पहलुओं को लोक जीवन के अन्तर्गत रख सकते हैं। "लोक, हमारे जीवन की सहज विपुलताओं का ही दूसरा नाम है।"[2] समय के अनुसार लोक का जीवन बदलता रहता है। उस बदलाव को भी कवि आत्मसात् करता है। लोक वास्तव में जीवन यथार्थ के बदलाव को अनदेखा करता नहीं है। इसका अर्थ यह भी नहीं है कि लोक बाह्य तत्व है। लोक दरअसल कविता का आँतरिक तत्व है। यथार्थ के बदलाव के आधार पर लोक के स्वरूप में अन्तर आ सकते हैं।

---

1. ए. अरविन्दाक्षन : कविता सबसे सुन्दर सपना है (प्र.सं. 2004) : पृ. 71
2. जीवनसिंह : कविता और कविकर्म (प्र.सं. 1999) : पृ. 16

लोकजीवन के स्पर्श को बरकरार रखते हुए कविता विकास करती है। इसी अर्थ में कविता लोक जीवन की ज़रूरत बन जाती है। लोकजीवन को दर्ज करने में कविता महत्वपूर्ण भूमिका निभाती ही है। कवि के रचनालोक की पहचान ही कविता की कसौटी बनती है। इसी कविता के द्वारा लोकजीवन का जीवंत चित्र उपस्थित होता है। मानवीय संवेदना का घनत्व कविता में लक्षित होता है। जीवन की अनुभूतियों का उदात्त रूप ही काव्य संवेदना है।

लोकधर्मी कविताएँ जीवनरस की निचोड़ होती है। "कवि का अपना यथार्थ, जिससे वह कविता को सृजित करता है, सृजन की वेला में वह यथार्थ का रचनात्मक विश्लेषण भी करता है। अपने इतिहास से जुड़ता है। अपनी परम्परा को स्वीकारता है।"[1] यह लोकधर्मिता ही कविता को सही दिशा प्रदान करती है। ऐसी कविताओं में जनपद को व्यक्त करने की क्षमता रहती है।

हिन्दी कविता में लोक का सान्निध्य मुक्तिबोध, अज्ञेय, धर्मवीर भारती, कुंवरनारायण, विजयदेव नारायण साही, केदारनाथ सिंह, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, भवानी प्रसाद मिश्र जैसे कवियों में अलग-अलग रूपों में मिलता है। इसके अलावा त्रिलोचन, केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन जैसे प्रगतिशील कवियों की रचनाओं में लोक का संसार अत्यधिक विपुल मात्रा में मिलता है।

---

1. ए. अरविन्दाक्षन : समकालीन हिन्दी कविता (प्र.सं. 1998) : पृ. 71

मुक्तिबोध की कविताओं में लोक जीवन का यथार्थ रूप दृष्टव्य होता है। वे अपने शब्दों की दूरदर्शी निगाहों से लोक जीवन के यथार्थ को अंकित करते हैं। अपनी जीवन-यात्रा में वे जनपद के अनुभवों को आत्मसात करके संवेदित करते हैं। उनकी कविता 'जीवन संघर्ष' की पंक्तियाँ हैं-

"उन किसानों के संघर्ष जीवन की
उसके भी पार पुनः जीवन के समतल में
नये-नये प्रश्नों के
लक्ष्यों की/नील-लहर यमुना है
श्रमिकों की, कृषकों की बाँहों से बन जाता दोआबा
अर्थों की हिम-गिरिजा गंगा में
प्राणों की सरयू यह मिलती है
तुलसी स्वर गन्धिता।"[1]

मुक्तिबोध ने यहाँ लोकजीवन की व्यापक झाँकी प्रस्तुत की है। भारतीय संस्कृति की अमिट छाप भी यहाँ मिलती हैं। भारत के बहुसंख्यक किसान हैं। मुक्तिबोध की कविता में किसानी संघर्ष को मिट्टी की महक के रूप में देखा हैं। इसी महक को उन्होंने तुलसी की गन्ध से जोड़ा है। गंगा और यमुना के तट पर किसानों का गुज़ारा होता है। यह श्रमिक वर्ग अपनी मेहनत से इस धरती पर सोना उगाता है। मुक्तिबोध का रचनालोक जनपद के संघर्ष को लोक से संपृक्त करके व्यक्त करता है। आशा-

---

1. सं. नेमिचन्द्र जैन : मुक्तिबोध रचनावली (2) (प्र.सं. 1980) : पृ. 46

निराशाओं का परिदृश्य इस कविता का वास्तविक रचनात्मक परिदृश्य है, जो लोकदृष्टि से निर्मित है। उनकी लोक दृष्टि अमुखर है।

मुक्तिबोध की एक दूसरी कविता 'बरगद' में संपूर्ण रूप से जनपद की झाँकी मिल जाती है। उन्होंने अपने चारों ओर के जीवंत लोक को अपनी कविता में उभारा है।

"गन्दी बस्तियों के पास नाले पार
बरगद है
उसी के श्याम तल में वे
रँभाती हैं कई गायें
कि पत्थर-ईंट के चूल्हे सुलगते हैं
फुदकते हैं वहीं दो-चार
बिखरे बालवाले बालकों के श्याम गन्दे तन
व लोहे की बनी स्त्री-पुरुष आकृतियाँ
चमकते धूप में।"[1]

लोक जीवन का यह एक रेखाचित्र है। मुक्तिबोध ने मनुष्य के साथ-साथ दूसरे प्राणियों को भी अपनी कविता में स्थान दिया है। 'बरगद' लोक धारा के निकट बसा हुआ पेड़ है। उसके चारों ओर पत्थर एवं ईंट के बने चूल्हे पर लोग खाना पकाते हैं। इस प्रकार लोक के यथार्थ को बिखरे चित्रों के रूप में प्रस्तुत किया गया है। मेहनतकश स्त्री-पुरुष का वर्णन मुक्तिबोध ने किया है। लोहे की भाँति उनका शरीर बहुत मज़बूत है।

---

1. सं. नेमिचन्द्र जैन : मुक्तिबोध रचनावली (2) (प्र.सं. 1980) : पृ. 222

धूप में भी वे लगातार काम करते रहते हैं। संघर्ष का लोक इस कविता का अभीष्ट यथार्थ है। इसी कारण लोक का जीवन यहाँ पर गतिशील बनता है। मुक्तिबोध की कविता में गतिशीलता लोक बद्धता के कारण अत्यंत मार्मिक है। "मुक्तिबोध की कविता की सबसे बड़ी विशेषता है चित्रांकन। यह चित्र केवल शब्दों का चित्र नहीं होता परन्तु रंगों का, स्पंदन का, और चेतना का चित्र होता है। उसमें चेतना झाँकती है, भाव दुलराता है, और माँसलता हमें आकर्षित करती है।"[1] यह लोकजीवन की सन्निहिति के कारण ही है।

अज्ञेय की कविताओं में लोक जीवन की अभूतपूर्व अभिव्यक्ति मिलती है। उनका रचना संसार लोक के चित्रों से ओतप्रोत है। लोकजीवन का अस्तित्व पंचभूतों पर आधारित है। वे प्रकृति के निकट रहनेवाले कवि हैं। इसकी अभिव्यक्ति अज्ञेय की कविता में हम देख सकते हैं -

"कुछ भी गायब नहीं होता
रहता है, किसी न किसी तरह
आकाश, हवा, पानी, आग, मिट्टी
किसी न किसी तरह।"[2]

इन पंक्तियों में आकाश, हवा, पानी, आग, मिट्टी जैसे पंचभूतों के संकेत संक्षेप में मिलते हैं। पूरी दुनिया इन्हीं पाँच तत्वों पर आधारित हैं। इन तत्वों के अलावा जीवन असंभव है। लोक जीवन ने इन तत्वों की

---

1. गंगा प्रसाद विमल : मुक्तिबोध का रचना संसार (प्र.सं. 1969) : पृ. 43
2. अज्ञेय : पूर्वा (प्र.सं. 1965) : पृ. 57

महत्ता को स्वीकारा है। पाँचों तत्वों के देवताओं का पूजन लोक करता है। यह उसका विश्वास है। इसी विश्वास को लेकर उसका जीवन अग्रसर है। अज्ञेय कहते हैं कि इस दुनिया से कुछ भी गायब नहीं होता है। पंचभूतों का अस्तित्व यथार्थ ही है। इस यथार्थ को अनदेखा करते हुए कोई भी आगे बढ़ नहीं सकता है। लोक जीवन इसी बुनियाद पर आश्रित होकर ही गतिशील बनता है। लोक का अनुभव यथार्थ ही कविता की असली ज़मीन है।

अज्ञेय की 'शरद पूर्णिमा' या 'कतकी पूनो' जैसे कविताओं में अपनी संवेदना के अभीष्ट यथार्थ तक पहुँचने के लिए अज्ञेय लोकबद्ध काव्य-दृष्टि का सहारा लेता है। उनमें लोक विश्वास और लोक आस्था के सूक्ष्मतम यथार्थ अंकित है।

शमशेर की कविताओं में लोक जीवन का स्वरूप स्वयमेव उभरकर आ जाता है। वे आम जनता के पक्ष में सृजनरत बनते हैं। लोकपक्ष को बहुत ही मार्मिकता के साथ वे कविताओं में प्रस्तुत करते हैं। प्रकृति के सभी तत्व उनकी कविताओं में दर्ज होते हैं। पेड़, पौधे, खेत, जंगल, पहाड़ आदि कार्य उनकी रचनाओं में जीवंत रूप में उपस्थित होते हैं। लोक जीवन इन सभी तत्वों पर टिका रहता है। मिट्टी की खुश्बू उनकी कविता द्वारा उपलब्ध होती है। प्रकटतः न सही शमशेर बहादूर सिंह लोक कवि के रूप में हमारे सामने आते हैं। अपने स्थानीय परिवेश का वर्णन कविता द्वारा वे व्यक्त करते हैं। शमशेर की कविता 'पथरीली

घास भरी इस पहाडी के ढ़ाल पर' में प्रकृति का सजीव चित्र के माध्यम से वे लोकदृष्टि को व्यक्त करते हैं -

"एक अनमना-सा आधा स्केचः
धूप में चमकती, मेरी गोद में एक सफेद कापी खुली
हिलते-चमकते बहुत-हरे छोटे-बड़े पेड़ मेरे चारों ओर खड़े
धूप से उज्जवल-नीलों आकाश में,
धुले आकाश में उज्वल, वर्षा के बादल।
मानो रूई की बिखरी-बिखरी छोटी-बड़ी पूनियाँ
कभी-कभी धीमी-धीमी साफ मधुर हवा की गूँज"[1]

इस प्रकार चारों ओर की प्रकृति का रंग पूर्ण रूप से उभर कर प्रस्तुत कविता में झलकता है। इसी माहौल में लोक का जीवन पलता है। धूप, आकाश, धरती, वर्षा आदि लोक की संपत्ति है। ये सब शमशेर की कविता में सचेत है। कवि इन चित्रों को समेटकर कविता का सृजन करते हैं।

शमशेर की एक अन्य कविता 'वसंत आया' में वसंत का आगमन वे व्यक्त करते हैं। वसंत के आने पर चारों ओर होने वाले बदलाव को पूरी तन्मयता से वे प्रस्तुत करते हैं। वसंत के आने से लोक का मन भी उल्लसित होता है। इसी उल्लास को वे अपनी कविता में शब्दबद्ध करते हैं।

"फिर पीले गुलाबों का, रस भीने गुलावों का, आयावसंत
सौ चाँद से मसले हुए जोबन पर
श्रृंगार की बजती हुई रागिनियाँ

---

1. शमशेर : चुका भी हूँ नहीं मैं (प्र.सं. 1975) : पृ. 77

रसराज की मधुपुरी की गलियों में
सौ नूरगहाएँ सौ पद्मिनियाँ, फिर लायीं वसंत
उन्मत्त वसंत आया।"[1]

इन पंक्तियों में वसंत को कई प्रकार से वर्णित किया गया है। प्रकृति का श्रृंगार वसंत द्वारा पूर्ण होता है। कई प्रकार के फूल वसंत ऋतु में खिलते हैं। अलग-अलग रंग, महक चारों ओर व्याप्त होती है। रसराज के रूप में वसंत का आगमन होता है। इससे समस्त लोक सुन्दर बन जाता है। शमशेर की कविता में प्रकृति का वर्णन प्रकृति के बाह्य सौंदर्य के हेतु न होकर उसके लोक बद्ध संदर्भ को उद्घाटित करने के लिए है।

धर्मवीर भारती की कविताओं में भी लोकजीवन की अभिव्यक्ति देखने को मिलती है। संपूर्ण प्रकृति को नानाविध रंगों के साथ वे वर्णन करते हैं। लोक जीवन में बोआई के वक्त जो गीत गाये जाये हैं, उसी को वे प्रमुख स्थान देते हैं। 'बोआई का गीत' नामक छोटी कविता में उनकी लोकधर्मिता की अभिव्यक्ति का अनुभव किया जा सकता है। प्रकृति को उन्होंने वीरबहूटी के रूप में चित्रित किया है।

"गोरी-गोरी सोंधी धरती-कारे-कारे बीज
बदरा पानी है
क्यारी-क्यारी गूँज उठा संगीत

---

1. शमशेर : कुछ कविताएँ व कुछ और कविताएँ (प्र.सं. 1984) : पृ. 61

मैं बोऊँगा बीरबहूरी, इन्द्रधनुष सतरंग
नये सितारे, नयी पीढियाँ, नये धान का रंग।"[1]

इस प्रकार 'बोआई' के कार्य को व्यक्त किया है। बीज बोने पर नयी फसल उगेंगी। सब कहीं मिट्टी की गन्ध फैलेगी। बादलों से पानी बरसेगा। सब कहीं प्रकृति का संगीत उमड़ेगा। कवि रंगों की दुनिया में प्रवेश करना चाहते हैं। लोक मन की इच्छाओं की पूर्ति इसी धरती द्वारा संभव है। इसलिए कवि भी नये सितारे एवं नयी पीढ़ी को बोना चाहता है। नयी पीढ़ी के द्वारा लोक पक्ष को सदा जीवंत रखने की कोशिश वे करते हैं। इस कविता में लोक परंपराएँ सृजनरत हो जाती हैं। यहाँ आस्था गृहातुरता के लिए प्रयुक्त नहीं है अपितु जीवन दृष्टि की गतिशीलता के लिए प्रयुक्त है।

लोक पक्ष की सजीवता को अभिव्यक्त करने वाले एक और कवि हैं प्रभाकर माचवे। उनकी कविताओं में लोक जीवन की झाँकी बिखरी पड़ी है। सड़क के किनारे बैठे मोचीराम अपने काम में लीन है। इस बात का वर्णन प्रभाकर माचवे ने कविता में कुछ इस तरह से प्रस्तुत किया है -

"सबेरे से शाम तक निहाई लिये, बेकाम
सड़क के किनारे बैठे हैं एक मोचीराम
कभी जूती लाया तो पालिश कर दी
सी दीं, मिटाई कभी बीड़ी से सर्दी
घिसी हुई आयी, लगा दी कभी एड़ी।"[2]

---

1. धर्मवीर भारती : ठंड़ा लोहा (प्र.सं. 1969) : पृ. 34
2. प्रभाकर माचवे : स्वप्न भंग (प्र.सं. 1957) : पृ. 80

यह कविता यथार्थ वर्णन को लांघती है। प्रभाकर माचवे का ध्यान मोचीराम की ओर है। मोची एक ऐसा वर्ग है, जो जीने के लिए अपने इस धंधे पर निर्भर है। सड़क किनारे बैठा मोचीराम जूतों की पालिश करता है, टूटे जूतों को सी देता है। वह अपना काम करता है। सर्दी लगने पर वह एक बीड़ी जलाता है। प्रभाकर माचवे ने उस मोचीराम का वर्णन करके पूरे वर्ग का समग्र स्वरूप प्रस्तुत किया है। एक लोकधर्मी कवि ही लोक की अन्दरुनी ताकत को पहचान सकता है।

प्रभाकर माचवे की कविताओं में लोकजीवन का संपूर्ण दृश्य उभरकर आता है। प्रकृति का सजीव चित्र भी प्रस्तुत करने में वे सक्षम हैं। लोक संस्कृति की पूर्ण अभिव्यक्ति 'एक दृश्य' में दृष्टव्य होती हैं -

"उन काले अछोर खेतों में
हलवाहों के बालकगण कुछ खेल रहे हैं
पहली झाड़ियों से निर्मित कर्दम की गेदें झेल रहे हैं
वे बालक हैं, वे भी कर्दम-मिट्टी के ही राजदुलारे
बादल पहले-पहले बरसे, बचे-खुचे छितरे दिशिहारे
सद्यस्नाता हरित-श्यामता, शस्य-बालियों में प्रफुल्लता
प्रकृति में सौन्दर्य फैलता
किन्तु गाँववालों के लड़के ये मट मैल्,
करते धक्कामधक्का।"[1]

---

1. प्रभाकर माचवे : अनुक्षण (प्र.सं. 1959) : पृ. 33

इन पंक्तियों के द्वारा कवि अपने मन के लोक की अभिव्यक्ति करते हैं। यहाँ लोकजीवन का यथार्थ ही रचा गया है। लोक के प्रति विशेष लगाव होने के कारण उन्होंने यह रचना की। लोक कवि अपने आसपास के परिवेश से जुड़े रहते हैं। देहात की संस्कृति, निरक्षर जनता की समस्या आदि इस कविता में अपनी सादगी में मिलती हैं। लोकजीवन से उपजी आधुनिक कविता इस प्रकार के अनुभव से आप्लवित है। लोक कवि अपने स्थानीय छवि को बरकरार रखने की कोशिश लगातार करते रहते हैं। यथार्थ के साथ-साथ यथार्थ के आगे के यथार्थ को प्रस्तुत करने से ही यह कविता लोक की हो गयी है।

भवानी प्रसाद मिश्र की कविताओं में लोकजीवन की यथातथ्यता एवं उसमें निहित विडंबनाओं को भरपूर मात्रा में महसूस किया जा सकता है। लोक का पक्षधर बनकर ही वे अपने रचना संसार की सृष्टि करते हैं।

हो-बे दर्द चढाते सूली
जल्लादों के गीत सरीखी
मूठ बनाते चित्र खींच दे
थके हुए भूखे किसान का
उस पर माँ का प्यार सींच दे।"[1]

कवि ने इन पंक्तियों के द्वारा लोक के जीवन की यथार्थता को व्यक्त किया है। किसानी जीवन के प्रति मात्र शाब्दिक सहानुभूति दर्शाना

---

1. भवानीप्रसाद मिश्र : गीतफरोश (प्र.सं. 1953) : पृ. 32

कवि का लक्ष्य नहीं है बल्कि उसकी गहराई में गोता लगाने के बाद प्रकट की गयी हृदय की सहानुभूति इसमें मुख्य है।

लोक का एक स्वरूप विफलता के यथार्थ का मूर्त रूप है। निम्नांकित कविता में ऐसा ही रस मिलता है -

"गाँव, इसमें झोंपड़ी है, घर नहीं है।
झोंपड़ी के फटकियाँ हैं, दर नहीं है
धूल उड़ती है, धुएँ से दम घुटा है
मानवों के हाथ से मानव लुटा है
रो रहे हैं शिशु कि माँ चक्की लिये है
पेट पापी के लिए पक्की किये है
फट रही छाती।"[1]

विपन्नता के अनेकों दृश्यों से भरी यह कविता वृत्तचित्र शिल्प के आकार पर संरचित है। विपन्नता की बारीकियों में जाना और यथार्थ के आन्तरिक रूप को दर्शाना इस लोकबद्ध कविता का उद्देश्य है।

कुंवर नारायण की कविताओं में भी लोकजीवन के विभिन्न पक्ष हम देख सकते हैं। समस्त प्रकृति का अंकन उनकी कविता प्रस्तुत करती है। अपनी रचनाओं द्वारा उन्होंने इस प्रकृतिबद्ध लोक पक्ष को विस्तार प्रदान करने का प्रयास किया है -

"ओस-नहाई रात
गीली सकुचती आशंक

---

1. भवानीप्रसाद मिश्र : गीतफरोश (प्र.सं. 1953) : पृ. 34

अपने अंग पर शशि-ज्योति की संदिग्ध-चादर डाल
देखो, आ रही है व्योमगंगा से निकल
इस ओर
झुरमुट मे सँवरने को.....।"[1]

इन पंक्तियों में पूर्ण रूपेण प्रकृति का स्पन्दन उभरकर आया है। लोक जीवन इसी प्रकृति पर केन्द्रित है। कुंवर नारायण ने रात का वर्णन बहुत ही मर्मस्पर्शी ढ़ंग से किया है। अपनी आँखों से जो वे देखते हैं, वही यथार्थ लोक का धरातल है। ओस की रात में चाँदनी बिखरी पड़ी है। इसी चाँदनी के कारण पूरी धरती सुन्दर लगती है। यह चाँदनी बड़े-ऊँचे पेड़ों पर ही नहीं बल्कि छोटी झाड़ियों पर भी अपनी अमिट छाप छोड़ देती है। व्योम को गंगा संज्ञा से अभिहित किया गया है। लोक कवि, जब लोक जीवन को अपनी रचनाओं का विषय बनाते हैं, तब प्रकृति भी अपने आप उसमें आ जाती है। इसी राह से गुज़रकर कविता पूर्णता प्राप्त कर सकती हैं। "यह लोक कवि वही है जो जगत् का जीवन का ज्ञान प्रत्यक्ष अपनी ज्ञानेन्द्रियों से प्राप्त करता है - और तदनुसार वह अपना जीवन-व्यवहार, कार्य-व्यापार तथा मानव धर्म-को निर्धारित करता है। इसी कारण उनकी रचनाओं में प्रकृति समाई रहती है।"[2] आधुनिक हिन्दी कविता लोक से जुड़ी होने के कारण अपने ज़मीन और जड़ की कविता है।

---

1. कुंवरनारायण : चक्रव्यूह (प्र.सं. 1956) : पृ. 18
2. सोमदत्त : कोठार से बीज (प्र.सं. 2004) : पृ. 22

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की कविताओं में लोकजीवन के भिन्न आयाम देखने को मिलते है। उनकी कविता का प्रमुख विषय लोकबद्ध जन जीवन ही है। "लोकजीवन के एक से एक चित्र उनकी कविता में मिलेंगे। मामूली आदमी की पीड़ा के कई चित्र सर्वेश्वर की कविता में बहुत है।"[1] कड़ी मेहनत करके जीवन बितानेवाले गरीब लोगों के चित्र उनकी कविताओं में सुलभ हैं।

"पुल पर
दही के मटके किए एक-एक कर अहीरों को
जाते देखता हूँ
वे सब शहर में दही बेचकर गाँव लौटते होते है।
कभी कभी कसी के सिर पर लकड़ियों
के बोझ भी होते हैं
या गठरियाँ, खरीदे सौदे-सलुफ की
उनकी परछाइयाँ शाँत हरे जल पर अच्छी लगती है।"[2]

यहाँ एक यथार्थ दृश्य कविता बनता है। ग्रामीण अहीरों के चित्र प्रस्तुत करने से इसमें लोकबद्धता नहीं आयी है बल्कि उनकी परछाइयों से यह कविता लोक रस से समृद्ध दीखती है।

लोगों के आने-जाने के लिए नदी के ऊपर से 'पुल' बनाया गया है। लोगों की आवजाही होती है। कुआनो नदी एक प्रतीक है, जो एक गाँव

---

1. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी : समकालीन हिन्दी कविता (प्र.सं. 1988) : पृ. 151
2. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना : कुंआनो नदी (सं. 2004) : पृ. 16

को शहर को मिलाती है। नदी के एक ओर गाँव का दृश्य है, दूसरी ओर महानगर का। महानगर की जनता अपना जीवन बिताती है, और गाँवों की जनता अलग प्रकार से अपना जीवन बिताती है।

सर्वेश्वर की कविता का वास्तविक संदर्भ मेहनतकश वर्ग के संघर्ष को दिखाना है। लेकिन उन्होंने उस संघर्ष को लोक से विलयित करके संघर्ष के सौंदर्य को भी दर्शाया है और उसकी गहराई को भी व्यक्त किया है।

सर्वेश्वर की कविताओं में लोक जीवन की व्याप्ति परखी जा सकती हैं। 'फसल' नामक कविता में वे लोक मन के भाव को समग्र रूप से व्यक्त करते हैं।

"कल जब फसल उगेगी लहलहायेगी
मेरे न रहने पर भी हवा से इठलायेगी
तब मेरी आत्मा सुनहरी धूप बन बरसेगी
जिन्होंने बीज बोया था, उन्हीं के चरन परसेगी
काटेंगे उसे जो, फिर वही उसे बोयेंगे
हम तो कहीं धरती के नीचे दबे सोयेंगे।"[1]

कवि का मन अपने आसपास के परिवेश से जुड़ा रहता है। 'फसल' को देखकर किसान वर्ग खुशी से झूम उठता है। इसका अनुभव करके कवि-मन भी झूम उठता है। लोकधर्मी कवि का मन ही इस प्रकार

---

1. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : खूँटियों पर टँगे लोग (प्र.सं. 1982) : पृ. 13

पुलकित हो सकता है। लोक केलिए अपनी धरती ही सब कुछ बनती है। इसी धरती पर उसका जीवन समर्पित होता है। लोक अपने श्रम से बीज बोकर, खाद देकर फसल को काटकर जीवन बिताता है। किसानी संस्कृति का एक ब्यौरा यहाँ प्राप्त होता है। इसी 'फसल' पर लोक की आशाएँ - प्रतीक्षाएँ निर्भर रहती हैं। उनके नब्ज़ों को पहचानकर सर्वेश्वर ने इस कविता का सृजन किया है।

सर्वेश्वर की रचना में भिन्न प्रकार के लोक जीवन के स्वरूप मिल जाते हैं। 'गाँव का सपेरा' नामक कविता में वे संपेरा का जीवंत रूप प्रस्तुत करते हैं। संपूर्ण गाँव की झाँकी इस कविता द्वारा देखने को मिलती है -

"एक तालाब था
जिसके किनारे इमली के बड़े बड़े पेड़ थे
फिर एक मन्दिर और खेत-ही खेत
बीन बजती थी। तो साँप-सा नसों में कुछ, रेंगने लगता था
दिशाएँ गूँजती थीं
चारों ओर से लो
लपकते हुए आते थे।"[1]

तालाब, इमली का पेड़, खेत, मन्दिर, संपेरा, ये सभी गाँव के परिवेश को प्रस्तुत करते हैं। लोक जीवन का साक्षात्कार यही पर होता है। सर्वेश्वर की कविता में लोक जीवन के निकट रहनेवाले सभी दृश्य

---

1. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : खूँटियों पर टंगे लोग (प्र.सं. 1982) : पृ. 125

संकेत दृष्टव्य हो जाते हैं। "सर्वेश्वर की कविता की विशेषता यह है कि उन्होंने अपनी कविता में लोक धुन, लोकराग, प्राकृतिक जीवन और प्राकृतिक रंगों का चित्रण किया है।"[1] उनकी कविताएँ लोक संपृक्ति से युक्त ही है। लोक जीवन की अभिव्यक्ति को पूरी सूक्ष्मता और आत्मीयता के साथ उन्होंने व्यक्त किया है।

आधुनिक कवियों की कविताओं के विश्लेषण के उपरांत प्रगतिशील कवियों की रचनाओं में उपलबद्ध लोक जीवन का बृहद् संदर्भ विचारणीय है। उनकी कविता को भी आधुनिक कविता के प्रकरण में ही देखा जाना चाहिए।

जीवन के व्यावहारिक पक्षों का कविता में उपयोग करना जरूरी नहीं है। यहाँ लोक पर इसलिए बल दिया गया है क्योंकि वह जीवन की वास्तविकता का सार है, जिससे कविता के लोक को प्रस्फुटित करने में कवि को पर्याप्त 'स्पेस' मिल जाते हैं। त्रिलोचन की एक कविता है -

"नींद कहाँ है, नींद कहाँ है, नींद कहाँ है।
नींद कहाँ है। चिंताओं को हरनेवाली
जीवन-ज्वर में चंदन चर्चित करनेवाली
क्षिप्त जागरण की विभीषिका खड़ी यहाँ है
दृष्टि उठी जिस ओर उदासी पड़ी वहाँ है
नींद कहाँ है, निखिल शून्यता भरने वाली।"[2]

---

1. डॉ. कल्पना अग्रवाल : सर्वेश्वर दयाल सक्सेना व्यक्ति और साहित्य (प्र.सं. 2001) : पृ. 94
2. त्रिलोचन : उस जनपद का कवि हूँ (प्र.सं. 1981) : पृ. 11

कवि इन पंक्तियों में कहते हैं कि 'नींद' या आराम कहाँ है? जनता को बहुत दूर जाना है। सामान्य जनता सदा चिन्ता से ग्रस्त रहती है। उनका तन-मन को कोई विराम नहीं मिलता। 'चंदन' जिस प्रकार शरीर को सुख-शीतलता देता है, उसी प्रकार 'नींद' जन को शीतलता प्रदान करेगी। लेकिन लोकजीवन में मेहनत करने वाले ही जीवन बिता सकते हैं। सोने के लिए, आराम करने के लिए उनके पास समय नहीं है। सामान्य जनता हमेशा अपने कामों में मग्न रहती है। अपनी इच्छाओं की पूर्ति जब तक न होगी, तब तक जनता अपने कर्म में रत रहेगी। कोई नींद या आराम नहीं।

हिन्दी कविता मे लोक का समृद्ध सान्निध्य त्रिलोचन की कविता में मिलता है। लोकजीवन को 'त्रिलोचन अपनी कविताओं के केन्द्र में स्पष्ट करते हैं। 'लोक' को की केन्द्रीयता से अपनी रचनाओं को त्रिलोचन ने संपन्न किया है। 'ताप के ताए हुए दिन' संकलन की कविताएँ एक संघर्षरत कवि के अनुभव के ताप से सृजित कविताएँ हैं। "त्रिलोचन ने लोकजीवन की क्रियाशीलता और जीवन व्यवहार का चित्रण करते हुए उनके भीतर से सामान्य लोक सत्य को रखा।"[1] त्रिलोचन की लोकदृष्टि का व्यापक परिदृश्य उनकी कविताओं में लक्षित है। 'झापस' नामक कविता में त्रिलोचन ने बारीकी से चारों ओर के दृश्यों को शब्दबद्ध किया है।

"आठ पहर की टिप् टिप्
सड़क भीग गई है

---

1. जीवनसिंह : कविता और कविकर्म (प्र.सं. 1999) : पृ. 124

पेड़ों के पत्तों से बूँदें
गिरती हैं टप् टप्
हवा सरसराती है
चिड़ियाँ समेटे पंख यहाँ वहाँ बैठी हैं
ऐसे लोग आते हैं जाते हैं
जो काम टाल नहीं सकते
किसी तरह"[1]

झापस का वर्णन से लोक लक्षित होता ही है। साथ जीवन का एक प्रसंग भी उसमें सन्निविष्ट है। त्रिलोचन प्रकृति का चित्रण भर नहीं रचना चाहते बल्कि प्रकृति के साथ जीवन को भी समेट रहे हैं।

'त्रिलोचन' की कविताओं में लोकजीवन के बदलते हुए चित्र मिलते हैं। उनकी कविता की प्रकृति लोक की क्रियाशीलता पर आधारित है। सक्रिय लोक की अभिव्यक्ति इन पंक्तियों में दृष्टव्य हैं -

"शब्द से कभी कभी काम नहीं चलता
जीवन को देखा है
यहाँ कुछ और
वहाँ कुछ और
इसी तरह यहाँ वहाँ
हरदम कुछ और
कोई एक ढ़ंग का सदा काम नहीं करता।"[2]

---

1. त्रिलोचन : ताप के ताए हुए दिन (प्र.सं. 1983) : पृ. 43
2. वही : पृ. 43

सामाजिक जीवन की व्यापक दृष्टि को त्रिलोचन ने यहाँ उकेरा है। कवि के अनुसार शब्द यहाँ पूर्ण रूप से सार्थक नहीं हैं। जीवन की सार्थकता क्रियाशीलता से निर्धारित होती है। लोकजीवन के आधार पर उस सार्थकता को उन्होंने व्यंजित किया है। सामान्य जन अपनी भूख मिटाने के लिए कई प्रकार के काम करते हैं। यहाँ लोक को संघर्ष के साथ जोड़ा गया है।

त्रिलोचन अपने को जनपद का कवि मानते हैं। उनकी लोक धुन की आवाज़ जनपद में गूँजती हैं। कवि लोक की आन्तरिक ऊर्जा और ऊष्मा के द्वारा जीवन-स्रोत को सदैव प्रवाहित करते हैं। जनपद के साथ के तादात्म्य बोध के कारण ही त्रिलोचन एसा लिख सके हैं -

> "क्या हलचल है इसके रुँधे रँधाए जी में
> कभी नहीं देखा है इसको चलते धीमे
> धुन का पक्का है; जो चेते नहीं चिताए
> जीवन इसका जो कुछ है पथ पर बिखरा है
> तप तप कर ही भट्ठी में सोना निखरा है।"[1]

'उस जन पद का कवि हूँ' नामक संकलन की कविताओं में त्रिलोचन खुद लोक का प्रतिनिधि बने हुए हैं। शोषित वर्ग की गरीबी को वे उपस्थित करते हैं। कई प्रकार की यातनाओं को सहकर ही वे जीवन बिताते हैं। "त्रिलोचन जिस जनपद के कवि होने का दावा करते हैं उसकी कमज़ोरियों का पता पहले लगा लेते है, इसके पास न तो धर्म-धन-दौलत

---

1. त्रिलोचन : उस जनपद का कवि हूँ (प्र.सं. 1981) : पृ. 11

की ताकत है, न ऊँचे-ऊँचे पदों की और न ही किसी सजीव और सशक्त आधुनिक विचार की। इसके बावजूद नंगे-भूखे का कवि होने में कवि गौरव का अनुभव करता है।"[1] इस प्रकार लोक बद्ध बनकर वे लोकस्वभाव का चित्रण अपनी रचना में दर्ज करते हैं। उनके कविताओं का विषय लोक का अनुभव जगत् ही है।

नागार्जुन को रचनालोक के केन्द्र में गाँव है। कृषक-जीवन और उसकी समस्याओं में नागार्जुन की गहरी दिलचस्पी हैं। वे अपनी रचना में ग्रामीण यथार्थ को प्रस्तुत करते हैं। ठेठ भारतीय किसान में अपने खेत और खलिहान को लेकर जो घनीभूत भावुकता है उसका अनुभूत्यात्मक अंकन नागार्जुन ने किया है। 'बहुत दिनों के बाद' नामक कविता में उन्होंने मनुष्य के इस लोकबद्ध जीवन को प्रस्तुत किया।

"बहुत दिनों के बाद
अब की मैं ने जी भर देखी
पकी-सुनहली फसलों की मुसकान
बहुत दिनों के बाद
अब की मैं जी भर सुन पाया
धान कूटती किशोरियों की कोकिल कंठी तान।"[2]

एक गतिशील ग्रामीण चित्र नागार्जुन की इस कविता में उपलब्ध है। वे इन दृश्यों में मुग्ध दिखाई पड़ते हैं। अपने लोक दृश्यों में मुग्ध

---

1. जीवनसिंह : कविता की लोक प्रकृति (प्र.सं. 1990) : पृ. 20
2. नागार्जुन : सतरंगे पंखोंवाली (प्र.सं. 1984) : पृ. 25

दिखाई पड़ते है अपने लोक में आंकठ डूबकर वे लिख रहे हैं। इसका मुख्य कारण उन दृश्यों के प्रति आकर्षण ही है। इन साधारण दृश्यों के प्रति आकर्षण नागार्जुन मे ही अधिक दिखाई देता है। इस आकर्षण के कारण ही वे 'अकाल और उसके बाद' जैसी कविता भी लिख सके हैं।

'अकाल और उसके बाद' नामक कविता में नागार्जुन सूक्ष्मदर्शी मनुष्य- धर्मिता को अंकित करते हैं। मनुष्य जीवन के हर कोण का स्पर्श करके यह कविता प्रस्तुत हुई है। कविता में प्रयुक्त हर एक शब्द अकाल के आतंक को व्यक्त करनेवाला है। नागार्जुन की कविता में मिट्टी का सुगन्ध महकती है। "कविता में जहाँ-जहाँ मिट्टी प्रकट होती है वहाँ कविता पूर्णता ग्रहण करती है वस्तु की लघुता के बावजूद कविता पूर्णता का परिचय देती है, क्यों कि मिट्टी कविता की थलीय संभावनाओं की रचनात्मक विवृत्ति हो जाती है।"[1] लोकजीवन में मनुष्य के साथ चारों ओर का जगत् भी आ जाता है। इस लघुकविता द्वारा नागार्जुन ने अकाल की भीषणता और उसके बाद की हालत को दर्शाया है। एक ही मिट्टी में अनुभवों का द्वन्द्व हम देख पाते हैं। मनुष्य के वर्णन न करने के बावजूद भी लोक की पूर्णता हमारे सामने प्रस्तुत होती है -

"कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास
कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उसके पास
कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकालियों की गश्त
कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त

---

1. ए. अरविन्दाक्षन : कविता का थल और काल (प्र.सं. 2001) : पृ. 86

दाने आए घर के अंदर कई दिनों के बाद
धुआँ उठा आँगन से ऊपर कई दिनों के बाद
चमक उठीं घर भर की आँखें कई दिनों के बाद
कौए ने खुजलाई पाँखें कई दिनों के बाद।"[1]

इस कविता की पहली चार पंक्तियाँ 'गरीबी', 'अकाल' के माहौल को व्यक्त करती हैं। इसी अभाव ग्रस्त अवस्था को कवि ने चूल्हा, चक्की, कुतिया, चूहों एवं छिपकलियों की चर्चा द्वारा स्पष्ट किया है। भूख मिटाने के लिए वहाँ एक दाना भी नहीं है। पर अंतिम चार पंक्तियों में हालत बदल गयी है। घर के भीतर अनाज के आने पर खुशी का माहौल छा गया। लोकजीवन की भिन्न-भिन्न झाँकियों का दृश्य नागार्जुन ने प्रस्तुत किया है।

केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं में लोकजीवन की अभिव्यक्ति खूब हुई है। लोक हमेशा अपने श्रम में रत रहता है। "केदार की चेतना जनवादी है। वे अपनी कविता में सामान्य जन का पक्ष लेते हैं। उसके दुःख-दर्द का बयान करते हैं। मेहनतकश जनता के विविध चित्र उनकी कविताओं में प्राप्त है।"[2] केदार के जनवादी दृष्टि ही उनकी कविता की लोक दृष्टि है। कवि ने गाँव की औरत को प्रस्तुत करके उसके जनवादी पक्ष पर जोर दिया है -

"गाँवों की औरतें
गन्दी कोठरियों में हाँफती

---

1. नागार्जुन : सतरंगे पंखोंवाली (प्र.सं. 1984) : पृ. 32
2. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी : समकालीन हिन्दी कविता (प्र.सं. 1982) : पृ. 67

खाँसती, खसोटती रुखे बाल
घिसती हैं जाँत जटिलतर
गाँव की औरतें
सूख-पिसान फाँक-फाँक कर
पीठ-पेट एक कर-हाड़ तोड़
मरती हैं पत्थर रगड़ कर।"[1]

इन पंक्तियों में गाँव की औरत की श्रमशीलता को दर्शाया गया है। अपने परिवार की देख-रेख के लिए औरत को दुगुना काम करना पड़ता है। मेहनतकश होने के कारण उसके पेट-पीठ एक ही तरह दिखाई पड़ते हैं। कड़ी मेहनत करने पर ही उसका पेट भरता है। संघर्षशीलता लोक की अपनी विशेषता है। इस लोकरीति को केदारनाथ अग्रवाल ने यहाँ प्रस्तुत किया है।

लोक के पक्षधर केदारनाथ अग्रवाल अपनी रचना में मानव के सफल जन्म का वर्णन करते हैं। उनकी राय में श्रम में ही सौन्दर्य हैं। इसीका बयान उनकी कविता खुलकर करती है -

"सब के हाथों में हँसिया है
सब की बाँहों में ताकत है
जल्दी जल्दी साँसें लेते
सब जन मन से काट रहे हैं
एक लगन से एक ध्येय से

---

1. केदारनाथ अग्रवाल : जो शिलाएँ तोडते हैं (प्र.सं. 1986) : पृ. 77

जीवन का श्रम सफल हुआ है
ज़िन्दा दिल होकर उठने को
खाने को भरपूर मिला है।"[1]

इन पंक्तियों में कर्मरत जनता को हम देख पाते हैं। सारी जनता पूरी लगन से, मिल-जुलकर काम करती है। जनता अपने ताकतवर हाथों से वह अपने जीवन को सफल बनाती है। जो भरपूर मेहनत करेगा, वही पेट भर सकेगा। कड़ी मेहनत करने के कारण जनता की साँसें तेज़ी से चलती है। यहाँ श्रम के सौन्दर्य को लोकदृष्टि से देखा गया है। लोक के सौन्दर्य में श्रम और संघर्ष के तत्व रहते ही है।

आधुनिक कविता में विन्यसित लोक-आस्था

लोक आस्था लघु समाजों की थाती है। यह उनके जीवन के साथ रची-बसी उम्मीद की तरह है। कभी-कभी वही उनके जीवन को आगे बढ़ाने वाली गतिशीलता होती है। इन्हीं आस्थाओं पर लघु समाज निर्भर रहता है।

मुक्तिबोध की कविता में लोक आस्था की छाप मिल जाती है। अपने रचना संसार में वे लोक आस्था को महत्व देते हैं। जीवन के यथार्थों से जूझने के लिए ये आस्था उनके लिए हथियार के समान हैं। भारत की संस्कृति में लघु समाज की ऐसी आस्थाएँ जुड़ी रहती है। मुक्तिबोध की कविता की पंक्तियाँ इसी को ज़ाहिर करती हैं -

---

1. केदारनाथ अग्रवाल : जो शिलाएँ तोडते हैं (प्र.सं. 1986) : पृ. 152

"जहाँ सूखे बबूलों की कँटीली पाँत
भरती है हृदय में धुन्ध-डूबा दुःख
भूखे बालकों के श्याम चेहरों साथ
मैं भी घूमता हूँ शुष्क
आती याद मेरे देश भारत की
मैं नित्य रहता हूँ अधेरे घर
जहाँ पर लाल ढ़िबरी-ज्योति के सिर पर
कसकतें स्वप्न मँड़राते।"[1]

मुक्तिबोध ने इन पंक्तियों में भारत की अवस्था को व्यक्त किया है। लोक आस्था से उत्प्रेरित कवि होने के कारण वे कभी भी इन दृश्यों को अनदेखा नहीं कर सकते हैं। इन विसंगतियों के कारण मन में गहरी कसक होती है। फिर भी एक सपना मन में उमड़ता है। इसका कारण यह है कि वे लोक पक्षधर हैं। स्वप्न भी एक तरह का का विश्वास ही है। क्योंकि इसी स्वप्न के कारण लोक का जीवन अग्रसर होता है। उनमें आत्मविश्वास बढ़ता है। इसी विश्वास को मुक्तिबोध ने अपनी कविता में स्थान दिया है। लोक विश्वास की लहरें यहाँ उमड़ती हैं।

अज्ञेय की कविता में लोक आस्था की बहुरंगी झाँकियाँ दिखती हैं। लोक के सुख-दुःख, आशा-निराशा सभी कार्य इसी विश्वास पर आश्रित रहते हैं। एक पूरा गाँव इसी आस्था को समेटकर सो गया है। अज्ञेय की पंक्तियाँ हैं -

---

1. सं. नेमिचन्द्र जैन : मुक्तिबोध रचनावली (प्र.सं. 1980) : पृ. 241

"झींगुरों की लोरियां
सुला गयी थीं गाँव को
झोंपड़े हिंड़ोले - सी झुला रही है
धीमे-धीमे
उजली कपायी घूम - डोरियाँ"[1]

रात के वक्त गाँव में झींगुरों की आवाज़ सुनायी पड़ती है। यही आवाज़ लोरियों के रूप में गाँव को सुला रही हैं। झूले में पड़कर जिस प्रकार बच्चा सोता है उसी प्रकार गाँववाले बच्चे के रूप में झोंपड़ियों में सो रहे हैं। एक पूरे गाँव का चित्र इन पंक्तियों में उभरता है। पूरी आस्था के साथ जनता सुप्पावस्था में हैं। इसी लोक पक्ष को शब्दबद्ध करते हुये अज्ञेय ने रचना की है। अज्ञेय के शब्दो से लोक आस्था का सुन्दर झाँकी उभरकर आयी है।

प्रभाकर माचवे की कविता में लोक आस्था की छवियाँ पर्याप्त मिलती हैं। लोक आस्था में देवी-देवता भी आ जाते हैं। उनके प्रति श्रद्धा ही आस्था कहलाती है।

"एक बडे पत्थर पर पानी में भैरव का चिह्नमय चरण
कितनी अजब मूर्तियाँ, उत्तर - बौद्ध, शैव,
तांत्रिक चित्रांकन
भयंकर सब कुछ, यहाँ काल का कौर मात्र है
मनुज महा मन

---

1. अज्ञेय : अरी ओ करुणा प्रभामय (प्र.सं. 1959) : पृ. 63

जनश्रुति है नरबलि होती थी
उसकी स्मृति के प्रतीक परशु
काले जमे खून के धब्बे, यूप
कुंड़ में हँकी निशानी
अब भी बलि चढ़वे मनौतियों में भैंसे,
बकरे, मुर्गे, पशु....."[1]

इन पंक्तियों में प्रभाकर माचवे ने नरबलि का वर्णन किया है। देवताओं के लिए जानवरों को बलि चढ़ाई जाती है। मानव बलि भी होती थी। यह सब कार्य रूढ़ि या परम्परा के नाम पर होते हैं। इस रूढ़िगत आचरण का लोक के साथ भी संबंध है। जानवरों की बलि चढ़ाने से मंगल की उम्मीद की जाती है। अपने जीवन को मंगलमय बनाने केलिए पशुओं की बलि चढ़ाते हैं। देवी की पूजा की जाती है। शिव की आराधना करते हैं। सत्य शिवं सुन्दं की कामना करते हैं। ईश्वर ही एक मात्र सत्य है। उस सत्य को पाने केलिए सच्चाई एवं भलाई का मार्ग अपनाना है। इस प्रकार पूरी दुनिया कल्याणमयी बनेगी। कविता में बलि मुख्य नहीं। इसलिए रूढियाँ भी मुख्य नहीं है। उसमें रूढि में निहित मानवीयता मुख्य होती है। वह एक प्रबल आस्था के रूप में जीवन का यथार्थ बनती है।

केदारनाथ सिंह की कविताओं में लोक आस्था के दृश्य सक्रिय हैं। लोकधर्मी होने के कारण वे लोक व्यवहार में आने वाले सभी कार्यकलापों के प्रति ध्यानरत हैं। लोक विश्वास या लोक-आस्था एक

---

1. प्रभाकर माचवे : स्वप्न भंग (प्र.सं. 1957) : पृ. 37

पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में संक्रमित होती है। ये विश्वास अनुभव के यथार्थ से ही प्राप्त होते हैं -

"अगर कभी लाल चींटियाँ
दिखाई पड़ें
तो समझना
आंधी आनेवाली है
अगर कई-कई रातों तक
कभी सुनाई न पड़े स्यारों की आवाज़
तो जान लेना
बुरे दिन आनेवाले हैं
रात को रोटी जब भी तोड़ना
तो पहले सिर झुकाकर
गेहूँ के पौधे को याद कर लेना।"[1]

एक किसान अपने बेटे को उपदेश दे रहा है। इसी भाव को केदारनाथ सिंह ने यहाँ पर शब्दबद्ध किया है। इसी विश्वास के साथ किसान वर्ग जीवन बिताता है। अन्न को देवता माना जाता है। इस प्रकार समग्र रूप से यहाँ लोक आस्था का अनन्य अनुभव मिल जाता है। उन्हें अपनी मिट्टी पर पूरा विश्वास होता है।

केदारनाथ सिंह की कविताओं में लोकजीवन की भीनी गन्ध का हम अनुभव कर पाते हैं। "केदार की कविता आज की वास्तविकता,

---

1. केदारनाथ सिंह : अकाल में सारस (प्र.सं. 1988) : पृ. 18

व्यवस्था की क्रूरता, समझौता, चुप्पी, मामूली आदमी की पीड़ा और उसके संघर्ष का चित्रण बहुत साँकेतिक ढ़ंग से करती है। उनकी कविता में मनुष्य तथा विराट प्रकृति के प्रति एक गहरी आत्मीयता है।"[1]

"बिना किसी सूचना के
खच्चर बैल या भैंस की पीठ पर
घर-असबाब लादकर
चल देते हैं कही और
यह कितना अद्‌भुत है
कि बाढ़ चाहे जितनी भयानक हो
उन्हें पानी में थोड़ी सी जगह ज़रूर मिल जाती है
थोड़ी सी धूप। थोड़ा सा आसमान।"[2]

कवि कहते हैं कि भयानक बाढ़ आ गयी है। पर इस बाढ़ में भी आम जनता जीवन बिता लेती है। वे अपने सारा सामान लादकर दूसरी जगह पहूँच जाते हैं। इस प्रकार जीवन यापन के लिए प्रकृति से संघर्ष करने वाली जनता को हम यहाँ देख सकते हैं। कितनी भी कठिनाइयाँ आये तो भी यह जनता जीने के लिए कोई न कोई रास्ता ढूँढ़ निकालती है। इसकी एक वास्तविकता है जिसे लोक कहना उचित लगता है।

केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं में लोक आस्था के प्रति अटूट विश्वास दृष्टव्य है। इस विश्वास के तहत लोक अपना विस्तार कविता में कर लेता है।

---

1. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी : समकालीन हिन्दी कविता (प्र.सं. 1982) : पृ. 160
2. केदारनाथ सिंह : यहाँ से देखो (प्र.सं. 1983) : पृ. 17

"जो जीवन की धूल चाटकर बड़ा हुआ है,
तूफानों से लड़ा और फिर खड़ा हुआ है
जिसने सोने को खोदा, लोहा मोड़ा है
जो रवि के रथ का घोड़ा है, वह जन मारे नहीं मरेगा।
नहीं मरेगा।
जो जीवन की आग जलाकर आग बना है,
फौलादी पंजे फैलाये नाग बना है।"[1]

'लोक' के पास कई प्रकार के अनुभव होते हैं। इसी कारण से कवि ने कहा है कि 'जीवन की धूल चाटना'। लोक का रथ समाज में व्याप्त शासन एवं शोषण को तहस-नहस करके आगे बढ़ता है। कटु अनुभवों से गुज़रने के कारण आम जनता ताकतवर बन गयी है। उसने मुश्किलों से लड़ना सीख लिया है। इस प्रकार केदारनाथ अग्रवाल ने अपनी कविताओं में लोक जीवन की आस्था के भिन्न-भिन्न रूपों को व्यक्त किया है।

लोक का जीवन कुछ विशेष विश्वासों पर निर्भर है। ये विश्वास उनके जीवन के अभिन्न अंग है। इस कविता में एक मामूली आस्था व्यक्त की गयी है जो कतई मुख्य नहीं है। फिर भी वह जीवन का अटूट हिस्सा है। इसलिए यह मुख्य है।

"एक सुन्न मकान है। उसकी मुँडेरी पर।
सबेरे कौवा बोलता है। सूने आँगन को देख देखकर
क्या कोई आयेगा आज? शाम को कहीं बन्दूक

---

1. केदारनाथ अग्रवाल : श्रम का सूरज (प्र.सं. 1986) : पृ. 91

छूटने की आवाज़ होती है।
सुन्न आकास में।
कौवा कोलाहल करता हुआ। मँड़राता है।
क्या कोई मर गया है आज?"[1]

लोकजीवन के एक भिन्न संवेदनात्मक रूप को यहाँ विजयदेव नारायण साही ने प्रस्तुत किया है। सामान्य जन मुख्यतया अपनी चारों ओर की प्रकृति एवं जीव-जन्तुओं से जुड़े रहते हैं। 'कौवे' का बोलना उनके लिए किसी 'मेहमान का आगमन' सूचित करता है। उसी प्रकार कौवे का कोलाहल या मँड़राना किसी की मृत्यु को सूचित करता है। ऐसे विश्वास लोक के लिए प्रमुख हैं। ऐसे विश्वास रूढ़ि या परम्परा से प्राप्त होते हैं। सामान्य जन के प्रति जागरूक होने कारण कवि ने यहाँ इन भावों को कविता के लिए स्वीकार किया है।

आधुनिक कविता में लोकबद्ध संघर्ष गाथाएँ

आधुनिक कविता के भीतरी विस्तार में मनुष्य के संघर्ष को प्रमुखता मिली है। मनुष्य की स्वतंत्रता की कामना ही इसके पीछे कार्यरत भावना है। भारत की भौतिक स्थिति के संदर्भ में यह एक सच है कि हम स्वतंत्र हो चुके थे। विदेशी हुकूमत से मुक्त हो चुके है। बावजूद इसके वास्तविक स्वतंत्रता के हम हकदार बने नहीं है। अतः आधुनिक हिन्दी कविता की स्वतंत्रता का एक बृहत्तर संदर्भ सन्निहित है। उसका तत्पर्य राजनीतिक हस्तान्तरण में नहीं है। वह मानवीय स्वतंत्रता को लेकर

---

1. विजयदेव नारायण साही : साखी (प्र.सं. 1983) : पृ. 43

परिकल्पित है। इसलिए विभिन्न मोर्चों पर लड़े जा रहे संघर्षों के संदर्भ कविता में प्रकट होते हैं। इस संघर्ष को लोक मनसिकता के नज़दीक रखकर ही देखा गया है।

जीवन को चलायमान रखने के लिए समाज को संघर्ष करना पड़ता है। यह संघर्ष आंतरिक या बाह्य भी हो सकता है। बाह्य संघर्ष लोक जीवन के यथार्थ को चित्रित करने वाला होता है। आन्तरिक संघर्ष लोक की संवेदनात्मक पक्ष को दर्शाने वाला। कविता में किसी न किसी रूप में यह देखने को मिलता है।

मुक्तिबोध ने 'लकड़ी का बना रावण' शीर्षक कविता लिखी है। यह लोक यथार्थ के दोनों पक्षों को दर्शाने वाली कविता है। रामलीला का वर्णन कविता में पहले भाग में किया गया है। लेकिन रावण के अंत का संबन्ध लोक के बाह्य एवं आँतरिक संघर्ष-गाथा से संबन्धित है।

"परन्तु, यह क्या
आत्म-प्रतीति भी धोका ही दे रही!
स्वयं को ही लगता हूँ
बाँस के व कागज़ के पुट्ठे के बने हुए
महाकाय रावण-सा हास्यास्पद
भयंकर!
हाय, हाय
उग्रतर हो रहा चेहरों का समुदाय
और कि भाग नहीं पाता मैं
हिल नहीं पाता हूँ

मैं मन्त्र-कीलित-सा, भूमि में गड़ा-सा
जड़ खड़ा हूँ
अब गिरा, तब गिरा
इसी पल कि उस पल....।"[1]

रामलीला की लोकोन्मुखी आस्था एक तरह से जन जीवन का अभिन्न हिस्सा है, जिसमें लोक की आस्था संश्लेषित है। उसे संघर्ष गाथा के रूप में स्थान मिल गया है। ऐसे संघर्ष मन के भीतर या बाह्य भी हो सकते हैं। संघर्ष से टकराहट होने के बाद ही जीवन गतिशील बनता है। यही सच्चाई सामने आती है।

अज्ञेय की कविता 'औद्योगिक बस्ती' में लोक के बाह्य एवं आँतरिक संघर्ष को देख सकते हैं। कारखानों में काम करनेवाले कमकरों के संघर्ष को यह कविता प्रस्फुटित करती है -

"पहाड़ियों से घिरी हुई उस छोटी सी घाटी में
ये मुँहझौंसी चिमनियाँ बराबर
घुआँ उगलती जाती हैं
भीतर जलते लाल धातु के साथ
कमकरों की दुःसाध्य विषमताएँ भी
तप्त उबलती जाती है
बँधी लीक पर रेलें लादे माल
चिहुँकती और रँभाती उफराये डाँगर सी
ठिलती चलती जाती है

---

1. नेमिचन्द्र जैन : मुक्तिबोध रचनावली-2 (प्र.सं. 1980) : पृ. 371

उद्यम की कड़ी-कड़ी बँधते जाती मुक्तिकाम
मानव की आशाएँ ही पल-पल
उसको छलती जाती है।"[1]

इस औद्योगिक बस्ती में कई काम करते हैं। इस धुआँ उगलने वाली, प्रदूषित वातावरण में ये वर्ग लोग जीवन बिताते हैं। मानव की आशाओं ने ही उनको छल दिया है। इसी माहौल में ये लोग दम घुटकर जी रहे हैं। इस प्रदूषण के कारण बस्ती का वातावरण बिगड़ गया है। एक प्रकार का द्वन्द्व वहाँ चलता रहता है। जिस प्रकार लाल धातु जल रही है, उसी प्रकार कमकरों की विषमताएँ भी जलती हैं। इस संघर्ष से भी उनको मुक्ति नहीं मिलती। संघर्ष जारी रहता है।

रघुवीर सहाय की कविता 'रामदास' में भी संघर्ष की गहरी अवस्था दर्ज है। व्यक्ति के घुटन को यहाँ दर्शाया है। 'रामदास' की उदासी को कवि ने यों शब्द बद्ध किया है -

"चोड़ी सड़क गली पतली थी
दिन का समय घनी बदली थी
रामदास उस दिन उदास था
उसे बता यह दिया गया था उसकी हत्या होगी
धीरे-धीरे चला अकेले
सोचा साथ किसी को ले ले
फिर रह गया, सड़क पर सब थे

---

1. अज्ञेय : अरी ओ करुणा प्रभामय (प्र.सं. 1959) : पृ. 47

सभी मौन थे, सभी निहत्थे
सभी जानते थे यह उस दिन उसकी हत्या होगी।"[1]

इन पंक्तियों में एक व्यक्ति का हत्याकाँड़ दर्शाया गया है। 'रामदास' एक मामूली आदमी है। आदमी से आदमी का खून हो गया है। इस दर्दीली हालत को कवि यहाँ व्यक्त करते हैं। 'रामदास' को कोई भी बचा नहीं पाया। लेकिन हत्या के बारे में पहले ही सब को जानकारी थी। 'रामदास' का संघर्ष ही उसके मुँह पर व्याप्त उदासी का कारण बना था। व्यक्ति एवं समाज का संघर्ष यहाँ देख सकते हैं। यह व्यक्ति के आँतरिक मन का संघर्ष है। इसी कारण संवेदनात्मक अनुभूतियाँ जाग जाती है। 'रामदास' के प्रति सब के मन में सहानुभूति का भाव उपजता दिखाई देता है। दिन के समय पर भी घनी बदली का छा जाना उदासी का कारण ही है। पूरा परिवेश संघर्ष के कारण धुँधला है। प्रकृति लोक के मन के निकट जुड़ी रहनेवाली है। इस संघर्ष की राह पर 'रामदास' अकेला चल रहा था। उसकी हत्या के बाद वहाँ पर माहौल बिगड़ जाता है। संघर्षमय वातावरण बना रहता है। संघर्ष के आंतरिक पक्ष ही इस कविता में अधिक मुखर है।

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की कविता में लोक के संघर्ष का परिचय मिलता है। सभी मानव भूख के खिलाफ संघर्ष करते हैं। भूख को मिटाने के लिए रोटी चाहिए। जीविका के लिए लोक सदा संघर्षरत रहता है।

"जब भी
भूख से लड़ने

---

1. रघुवीर सहाय : हँसो हँसो जल्दी हँसो (प्र.सं. 1975) : पृ. 27

कोई खड़ा हो जाता है
सुन्दर दीखने लगता है
झपटता बाज, फन उठाए सांप
दो पैरों पर खड़ी
काँटों से नन्हीं पत्तियाँ खाती बकरी
दबे पाँव झाड़ियों में चलता चीता
डाल पर उलटा लटक, फल कुतरता तोता
या इन सब की जगह
आदमी होता।"[1]

सर्वेश्वर की कविता यही बखान कर रही कि सभी प्राणी भूख की गिरफ्त में हैं। यही उनके संघर्ष का कारण है। संघर्ष करते समय सभी जीव-जंतुओं का सौन्दर्य बढ़ जाता है। भूख के आगे सभी प्राणी समान बन जाते हैं।

सर्वेश्वर की 'फसल' नामक कविता भी लोक के संघर्ष का बयान है। 'फसल' की उपज किसानों की भरसक कोशिश द्वारा ही संभव है। जिस प्रकार किसान हल, कुदाल और खुरपी से खेती करता है, उसी प्रकार कवि कलम से काम चलाता है। रचनाओं का सृजन करता है। यह भी एक तरह का संघर्ष है। ऐसे ही बाह्य या आँतरिक संघर्ष लोक को चलायमान बनाते रहते हैं -

"हल की तरह
कुदाल की तरह

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना : जंगल का दर्द (प्र.सं. 1976) : पृ. 28

या खुरपी की तरह
पकड भी लूँ कलम को
तो भी फसल काटने को
मिलेगी नहीं हम को
हम तो ज़मीन ही तैयार कर पायेंगे
क्रान्तिबीज बोने कुछ विरले ही आयेंगे
हरा-भरा वही करेंगे मेरे श्रम को
सिलसिला मिलेगा आगे मेरे क्रम को।"[1]

यहाँ जो श्रम का चित्र है, वही संघर्ष है। संघर्ष का एक नैरंतर्य है। यह एक आकांक्षा है। इस आकांक्षा को कवि ने लोक मानस के साथ जोडकर ही प्रस्तुत किया है।

कुंवर नारायण की कविता में भी लोक का संघर्ष उभरकर आता है। संघर्ष के बाद उम्मीदों की दुनिया में सब प्रवेश करते हैं - कुंवर नारायण की कविताएँ यही बताती है -

"मेरे हाथ में टूटा हुआ पहिया
पिघलती आग सी संध्या
बदन पर एक फूटा कवच
सारी देह क्षत-विक्षत
धरती खून में ज्यों सनी लथपथ आकाश
सिर पर गिद्ध-सा मँडला रह आकाश।"[2]

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना : खूँटियों पर टंगे लोग (प्र.सं. 1982) : पृ. 133
2. कुँवरनारायण : चक्रव्यूह (प्र.सं. 1956) : पृ. 133

कुंवर नारायण ने प्रकृति के चित्रों के द्वारा संघर्ष की व्याख्या की है। कवि का संघर्ष लोक पक्ष से संबंद्ध रहता है। प्रकृति के अर्थ को दृश्यों के द्वारा उन्होंने संघर्ष से जोड़कर शब्दबद्ध किया है। विसंगत यथार्थ से वशीभूत होने के कारण ही कवि में उदासी छा गयी है। यही संघर्ष उन्हें लिखने की प्रेरणा देता है। संघर्ष ही उनका रचना स्रोत बन जाता है।

केदारनाथ सिंह की कविताओं में ग्राम्य प्रकृति विविध रूपों में संघर्ष गाथा से चित्रित करती है। संघर्ष को उन्होंने महिमा मंडित नहीं किया है। लेकिन संघर्ष की ऊर्जा को लोक के ज़रिए कवितात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है।

"वे जला देते हैं, एक टूटही लालटेन
टाँग देत हैं किसी ऊँचे बाँस पर
ताकि उनके होने की खबर
पानी के पार तक पहुँचती रहे
फिर उस मद्धिम रोश्नी में
पानी की आँखों में, आँखें डाले हुए
वे रात भर खड़े रहते हैं
पानी के सामने, पानी की तरफ, पानी के खिलाफ।"[1]

केदारनाथ सिंह की इस कविता में बाढ़ का चित्र प्रस्तुत हुआ है। सामान्य जनता को जीवन के हर कदम में संघर्ष करना पड़ता है। उन्हें जूझना पड़ता है। इनके पास केवल एक 'लालटेन' है, जिसे उन लोगों ने

---

1. केदारनाथ सिंह : यहाँ से देखो (प्र.सं. 1983) : पृ. 19

जलाकर बाँस पर टाँग दिया है। बाढ़ आने के कारण वे लोग अपनी रोज़गारी का काम नहीं कर पाते हैं। लालटेन की उस मद्धिम रोश्नी में लोग रात उसी पानी में खड़े रहते हैं। कविता में कहीं भी शोषण का चित्रण नहीं है। लेकिन शोषण दर्ज होता है उसके प्रतिरोध में संघर्ष भी। संघर्षगाथा का रचनात्मक चयन इस कविता में लोक दृश्य से विन्यसित हुआ है। पानी के उस पार शहर फैला पड़ा है। पूरी यातनायें इन गाँव-वालों को सहनी पड़ती हैं। इस प्रकार साधारण लोगों को कई तरह के संघर्ष झेलने पड़ते हैं। यहाँ उनके मन के संघर्ष को, जो भीतरी संघर्ष है, महसूस किया जा सकता हैं।

आकांक्षाओं का उन्मेष

लोक जीवन यथार्थ का समग्र है। उसमें संघर्ष के तत्व प्राप्त होते हैं। उसी अनुपात में जीवन को अग्रगामी बनाने की दिशा भी मिलती है। वह अनेक भावों-विकारों का समाहार होता है। उसमें जड़ता के स्थान पर गतिशीलता अधिक मिलती है और गतिशीलता की कई प्रकार भाव भंगिमाएँ भी आरचित होती हैं। जिसे हम जीवनाकांक्षा या जिजीविषा कहते हैं वह लोक जीवन में अधिक मात्रा में उपलब्ध है। कविता की भाव-छवियाँ यहाँ जीवनाकाँक्षा में तब्दील होती है और उसके बहुरंगी रूप भी मिलते हैं।

अज्ञेय की एक छोटी सी कविता 'पगडंडी' इस प्रकार है -

"यह पगडंडी
चली लजीली

इधर-उधर, अटपटी चाल से
नीचे को, पर
वहाँ पहुँचकर घाटी में
- खिलखिला उठी
कुसुमित उपत्यका"[1]

इस में एक पहाडी तराई का गतिशील चित्र ही प्राप्त होता है। प्रकृति उक्त दृश्य से अज्ञेय ने लोक उन्मेष के रूप में प्रस्तुत किया है। प्रकृति के स्थिर चित्र से ही चित्र को चलायमानता प्रदान करके तथा लोक मन से संपृक्त करके उसे लोकोन्मेष की तरह प्रस्तुत किया गया है।

सर्वेश्वर की कवता आम जनता की आकांक्षाओं को उभारती है। उनकी लोक चेतना जीवोन्मेष का ही दूसरा रूप है -

"ज़हरीले आदमी से छुटकारे के लिए
फिर तुम क्या करो?
पहली बात, उससे मत डरो।
खुद में आत्मविश्वास भरो।
सब को साथ एक समुद्र बन उभरो, उभरो,
उभरो-ऊभ-चूभ उभरो।"[2]

सर्वेश्वर की ये पंक्तियाँ लोगों में आकाँक्षाओं को उभारती है। शासक वर्ग को यहाँ 'ज़हरीला आदमी' माना गया है। शासक वर्ग के

---

1. अज्ञेय : अरी ओ करुणा प्रभामय (प्र.सं. 1959) : पृ. 67
2. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना : खूँटियों पर टंगे लोग (प्र.सं. 1982) : पृ. 221

विरुद्ध आत्मविश्वास के साथ, एकता के साथ आगे बढ़ने का आह्वान वे देते हैं। उच्चवर्ग की ताकत उनके हाथ की संपत्ति मात्र है। इसको देखकर डरना नहीं चाहिए। लोक की ताकत अकृत्रिम होती है। मेहनतकश होने के कारण ये लोग ताकतवर होते हैं। पूँजीपतियों के विरुद्ध तनकर, आत्मविश्वास के साथ खड़ा होना है।

रघुवीर सहाय की कविताएँ सामाजिक प्रतिबद्धता के जीवंत प्रमाण है। सामान्य जन में धीरज बटोरने के कार्य कवि रचना के द्वारा संपन्न करता है।

> "आओ सब मिलकर उसे बस जीवित रखें
> सब नष्ट हो जाने की कल्पना
> शासक की इच्छा है।
> आओ हम सब मिलाकर
> उसे छोड़ बाकी सब नष्ट करे, सुन्दर है सर्वनाश
> वही सर्वहारा के कष्टों को सार्थक करता है।"[1]

रघुवीर सहाय की ये पंक्तियाँ व्यंग्य भी प्रकट करती हैं। शासक वर्ग के प्रति कवि खिल्ली उठाते हैं। शासक वर्ग का सर्वनाश देखना चाहते हैं। इस उच्चवर्ग को असहाय बना देना चाहते हैं। असहाय रूप का जीवन बहुत ही पीड़ा जनक होता है। निम्न वर्गों को शासक वर्ग का अत्याचार बहुत सहना पड़ा था। लेकिन अब वक्त बदल गया है। कालचक्र घूम गया है। सर्वहारा वर्ग को जितनी यातायें सहनी पड़ी, उतनी

---

1. रघुवीर सहाय : आत्महत्या के विरुद्ध (प्र.सं. 1968) : पृ. 27

वेदना शासक वर्ग को देने की बात वे कहते हैं। इस प्रकार वे लोगों में आकाँक्षाओं का उन्मेष उभारना चाहते हैं। उच्चवर्ग की इच्छा थी कि सर्वहारा वर्ग को नष्ट करें। इसीलिए वे सर्वहारा वर्ग पर अत्याचार करते हैं। कवि सर्वहारा वर्ग को आह्वान देते हैं, और कहते हैं कि उच्चवर्ग का सर्वनाश करो।

केदारनाथ सिंह की कविताओं में संपूर्ण रूप में लोक में जीवित मनुष्य उभरकर आता है उसके बहाने आज की वास्तविकता, व्यवस्था की क्रूरता आदि पर केदार की कविता इशारा करती है -

"घरों की कच्ची दीवारें
दीवारें पर बने हुए हाथी-घोड़े
फूल पत्ते। पाट-पटोरे। सब वह जाते हैं
मगर पानी में घिरे हुए लोग
शिकायत नहीं करते
वे हर कीमत पर अपनी चिलम के छेद में
कहीं न कहीं बचा रखते हैं। थोड़ी सी आग।"[1]

केदारनाथ सिंह की इन पंक्तियों में बाढ़ का चित्रण हुआ है। श्रमिक वर्ग छोटे घरों में रहनेवाले हैं। वे कोई महलों में नहीं रहते हैं। उनके घर की दीवारें कच्ची होने के कारण बाढ़ में बह जाती है। दीवारों पर वे हाथी, घोडे, फूल-पत्ते की चित्रकारी करते हैं। सब कुछ बाढ़ में बरबाद हो जाता है। ये लोग पानी से घिरे हुये हैं। दूसरी जगह पर ये लोग

---

1. केदारनाथ सिंह : यहाँ से देखो (प्र.सं. 1983) : पृ. 18

जा नहीं पाते हैं। इनका जीवन इस प्रकार लाचारी में ही बीतता है। ये लोग पीडाग्रस्त जीवन के आदी हो गये हैं। इन लोगों को किसी भी प्रकार की शिकायत नहीं है। पर ये लोग आकाँक्षा के ज़रिए नये जीवन में प्रवेश करते हैं। इन लोगों में जीवन के प्रति मोह होने के कारण वे भविष्योन्मुख हैं। धरती को वे अपने साथ बाँधकर रखते हैं। इस कविता में लोक का उन्मेष ही दिखाई पड़ता है।

भवानीप्रसाद मिश्र कमकर मज़दूर का उन्मेष प्रकट करते हैं। कवि मज़दूर वर्गों को उनके दुःखों से उबारना चाहते हैं। कवि का सपना है कि इन लोगों का जीवन सुखमय हो। कवि के मन में इन लोगों के प्रति सहानुभूति का भाव है। इसी कारण उन्होंने अपनी वेदना को वाणी दी है।

"चलो लेकर। एक नव आशा। नयी इच्छा
नया उत्साह। हम जहाँ सुख ढूँढ़ते हैं
वहाँ अब केवल प्रलय है।
वहाँ सावन की नहीं, शर की विजय है
इसलिए हम चलें,
सावन में संभालें खेत अपने
बखेर दें बो दें उगा दें
आज उनमें नये सपने।"[1]

भवानीप्रसाद मिश्र की इस कविता में नयी आशा की झलक मिलती है। खेतिहर वर्गों से कवि का कहना है कि नयी आशा, नयी इच्छा

---

1. भवानीप्रसाद मिश्र : गीतफरोश (प्र.सं. 1953) : पृ. 69

की पूर्ति के लिए नये उत्साह के साथ जाना है। सावन में खेत को संभालना है। उनकी आमदनी का मार्ग केवल खेती ही है। जनता से नये सपने पिरोने को कहते हैं। मन में नये सपने लेकर, उत्साह के साथ बीज बो दें तो ज़रूर उज्वल भविष्य होगा। अच्छी फसल उगेगी। उच्चवर्ग इन किसानों की कोई मदद करनेवाला नहीं है। कवि इस प्रकार सामान्य जनता में आकाँक्षाओं का उन्मेष जगाते हैं, तभी वह आगे बढ़ सकता है, तल्लीनता के साथ काम कर सकते हैं। लोकजीवन की आकाँक्षायें इस कविता में भरी पड़ी है।

विजयदेव नारायण साही की कविताओं में लोक संपृक्त भाव व्यक्त हैं। लोक के प्रति साही के मन में विशेष उन्मुखता है -

"परम गुरु, दो तो ऐसी विनम्रता दो
कि अन्तहीन सहानुभूति की वाणी बोल सकूँ
और यह अन्तहीन सहानुभूति
पाखण्ड न लगे। दो तो ऐसा कलेजा दो
कि अपमान, महत्वाकाँक्षा और भूख
की गाँठों में मरोड़े हुए उन लोगों का माथा सहला सकूँ"[1]

विजयदेव नारायण साही की इस कविता में लोक के प्रति उन्मुखता स्पष्ट है। 'कबीर' दास को संबोधित करके यह कविता लिखी गयी है। कबीरदास के पदों में लोक के प्रति विशिष्ट लगाव दिखाई पड़ता

---

1. विजयदेव नारायण साही : साखी (प्र.सं. 1983) : पृ. 148

हैं। 'साही' इन पंक्तियों द्वारा लोक जीवन में व्याप्त मुश्किलों का वर्णन करते हैं। लोक को उच्चवर्ग का अपमान सहना पड़ता है। उच्चवर्ग इन सामान्य जनों को अपने पैरों तले कुचल देते हैं। लोक - जनता को भूख, पीड़ा आदि का शिकार होना पड़ता है। इस प्रकार बर्बरता में गिर पड़ने वाली जनता को सच्चे दिल से कवि साँत्वना देते हैं। उनको सहलाते हुए। उनमें आकाँक्षायें भरने की कवि कोशिश करते हैं। जनता की दर्द-पीड़ा भरी गाँठों को सुलझाते हुए उनमें नये उन्मेष को भरना चाहते हैं।

नागार्जुन की कविता में लोक के संघर्षों का हल भी प्रस्तुत होता है। इसलिए नवोन्मेष का भाव उद्‌भासित होता है -

"झुकी पीठ को मिला
किसी हथेली का स्पर्श
तन गई रीढ़
महसूस हुई कन्धों को
पीछे से,
किसी नाक की सहज उष्ण निराकुल साँसें
तन गई रीढ़।"[1]

नागार्जुन की इन पंक्तियों में उन्मेष का भाव प्रकट होता है। मनुष्य को सीधे खड़े होने के लिए रीढ़ की हड्‌डी की ज़रूरत है। यहाँ आम जनता की सहायता के लिए एक हथेली का स्पर्श मिल गया है। इसके कारण उनकी झुकी पीठ अब सीधी हो गयी है। इनके भीतर की

---

1. नागार्जुन : सतरंगे पंखोंवाली (प्र.सं. 1984) : पृ. 19

आकाँक्षाओं को जगाने के लिए अब कोई आ गया है। आम जनता में उभरी हुई आकाँक्षाओं को हम यहाँ देख सकते हैं। उनकी 'रीढ़' अब तन गयी है। विषाद ग्रस्त होकर यूँ ही पड़े रहने से कोई फायदा नहीं है। मन में आकाँक्षायें जग जाती चाहिए। तभी जीवन के प्रति इच्छा मुखरित हो सकती है।

नागार्जुन लोक पक्ष से जुड़कर यह व्यक्त करते हैं कि 'धरती' से आम जनता का अटूट रिश्ता है। इसी धरती से उनके मन में नये उमंग उभरते हैं -

"पुलकित तन हो, मुकुलित मन हो
सरस और सक्षम जीवन हो
फिरनयुद्ध हो, गति न रुद्ध हो
निर्भय-निरातंक यौवन हो
अन्न-वस्त्रदा, सुखदा, शुभदा
प्राणों से भी बढ़ कर प्यारी
हिम किरीटिनी, जलदि-पैजनी
बने स्वर्ग यह भूमि हमारी।"[1]

कवि इन पंक्तियों के द्वारा सारी भूमि को स्वर्ग बनाना चाहते हैं। पूर्ण रूप से शान्त रूप में जीवन बिताने का संदेश देते हैं। इस महत्वपूर्ण आकाँक्षा को कवि व्यक्त करते हैं। सरस और सक्षम जीवन की उम्मीद करते हैं। इस प्रकार सारी भूमि पर सुख और शान्ति बनाये में तल्लीत

---

1. नागार्जुन : सतरंगे पंखोंवाली (प्र.सं. 1984) : पृ. 46

देखते हैं। कवि का मन झूम उठता है। मनुष्य के मन में जब सुख और शान्ति का भाव जागेगा तभी यह भूमि उसके लिए सुन्दर बन सकती है। सारी जनता एकता के साथ रहें तो पूरे विश्व में कल्याणकारी भाव होगा। तभी लोक कल्याण संभव हो सकता है। यही कवि का सपना है।

मनुष्य को इस जीवन में कई प्रकार की मुसीबतों का सामना करना पड़ता है। थककर, अलसता के साथ बैठे रहने से कोई फायदा नहीं है। अपने कर्मों से विचलित होनेवालों को नया सबेरा नसीब नहीं होगा। वे लोग वही पुरानी ज़िन्दगी जीने के लिए ही रह जायेंगे। नये भविष्य का लक्ष्य लेकर आगे बढ़नेवालों को ही जीवन का अमृत मिलेगा। उनका जीवन ही सार्थक होगा। उस जीवनामृत का पान करने से लोगों में नयी चेतना का जागरण होगा। यही लोक की चेतना है। भिन्न प्रकार की आशाओं का अंश इस लोक की चेतना में निहित रहता है। इसी आशा या चेतना के फलस्वरूप जनता की प्रगति होगी। त्रिलोचन का कहना है-

"जीवन के अंकुरों को
उठ कर अभिवादन करते प्रभात काल का
बाढ़ में। आँखों के आँसू बहा करेंगे
किन्तु जल थिराने पर
कमल ही खिलेंगे, सहस्रदल।"[1]

लोक कवि त्रिलोचन जनता को साँत्वना देते हैं और कहते हैं कि जल के थिराने पर सहस्रदल वाला कमल खिलेगा। लोक जनता का

---

1. त्रिलोचन : ताप के ताए हुए दिन (प्र.सं. 1983) : पृ. 14

जीवन सदा दुःख में नहीं बीतेगा। बाढ़ उतर जाने पर सब कहीं नया जीवन दीप्त होगा। जीवन के नये अंकुर खिल उठेंगे। इसलिए जनता को आँसू बहाने की ज़रूरत नहीं है। 'सहस्रदल' शब्द कवि ने यहाँ एक प्रतीक के रूप में रखा है। प्रतीक्षाओं को जागरित करने की कोशिश हुई है। 'कमल' कीचड़ में खिलनेवाला है। उसी प्रकार दुःख रूपी कीचड़ में सुख रूपी कमल खिलेगा। वह कमल सहस्रदल वाला होगा। इस तरह आनेवाले सुख के वातावरण को कवि ने इन पंक्तियों में प्रस्तुत किया है। चारों ओर का जीवन सुखमय बन जाने की उम्मीद रखते हैं।

"नव जीवन के सिंहद्वार पर आओ
नई चेतना के रथ पर आरूढ़
नई शक्ति से भरे हुए सानंद
अपने पथ को पर करो स्वच्छंद
बाधाओं की ओर न आँख उठाओ
नव मनुष्यता का लेकर विश्वास
अधिकारी मनुष्य के अत्याचार
के विरुद्ध करते ही चलो प्रहार
अत्याचारी को निस्तेज बनाओ।"[1]

यहाँ कवि जनता को नई चेतना की ओर आकृष्ट करते हैं। जनता से स्वतंत्र रूप में आगे बढ़ने को कहते हैं। शासक वर्ग के अत्याचारों के विरुद्ध प्रहार करने का उपदेश देते हैं। आम जनता की ताकत को उच्चवर्ग के अत्याचारों के विरुद्ध प्रयोग करने को कहते हैं।

---

1. त्रिलोचन : सब का अपना आकाश (प्र.सं. 1987) : पृ. 10

तभी सब कहीं नव जीवन का मार्ग खुलेगा। लोगों में नई ताकत आयेगी। बाधाओं को अनदेखा करते हुए नयी प्रतीक्षाओं के साथ नया जीवन शुरू करना है। कल तक उच्चवर्ग ने आम जनता को अपने पैरों के तले कुचल दिया था, लेकिन आज यह स्थिति बदल गयी है। आज की जनता में नया जागरण आ गया है। नया उन्मेष अब सब कहीं फैल रहा है।

लोक के विभिन्न रूप, उसकी विभिन्न अवस्थाएँ , उसकी विभिन्न मुखरतएँ आधुनिक कविता में संपृक्त हुई हैं। धरती के प्रति सब में विशेष उन्मुखता भी मिलती है जो भावुकता के प्रदर्शन केलिए नहीं है न गृहातुरता के कारण। यदि गृहातुरता का अँश है तो वह जायज है। कविता अपनी जड़ों से ही जन्म ले सकती है। आधुनिक कविता ने आधुनिक जीवन की विसंगतियों की तरफ इशारा करने के साथ इस सत्य का भी संकेत किया है।

❖❖❖

अध्याय-3

आधुनिक हिन्दी कविता में लोक कथाएँ

भूमिका

कविता का लोक के साथ संबंध गहरा है। लोक का कोई न कोई रूप कविता से संपृक्त रहता है। प्राचीन काल से लेकर समकालीन कविता तक की कविता-यात्रा में इस के लिए अनेक उदाहरण मिलते हैं। यह एक बहुत बड़ा सच है कि कविता को अनिवार्यतः लोक से जुड़ना ही पड़ता है क्योंकि कविता के सामूहिक अवचेतन लोक से परिपूर्ण हैं। इसी से कविता में सहजता आती है। कविता की रचनात्मक संश्लिष्टता के बावजूद कविता इसी से अधिकाधिक संप्रेषणीय बन जाती है। निरंतर कविता से जुड़ने वाले लोक रुपों में लोक कथा का प्रमुख स्थान है।

आधुनिक कविता में कथा संश्लेषण

कविता में पूर्ण रूप से या आँशिक रूप से कथाओं का संश्लेषण अपरिहार्य नहीं है। लेकिन कविताओं में यत्र-तत्र लोक कथायें संश्लेषित होती जाती हैं। इस प्रवृत्ति का संभावनापूर्ण रूप आधुनिक कथा-काव्यों में हम देख पाते हैं। कथा का संश्लेषण एक तरह से कविता की विषयवस्तु की माँग है, जिसके कारण कथा स्वयं सन्निविष्ट हो जाती है। कथा की मात्रा को लेकर कविता कोई सुनिश्चित नियम तो नहीं है। अतः कुछ कवितायें पूर्ण रूप से कथावलंबी हैं तो कुछ कविताओं में कथा के आँशिक या अपूर्ण उल्लेख ही मिलते हैं।

कविता में कथा के इस संगुंफन को अन्तःसन्निवेश कहा जा सकता है। कविता के अन्तर्जगत को पूरी तरह से परिवर्तित करने में इन कथाओं का यदि योगदान है तो अन्तःसन्निवेश सफल हो जाता है या फिर वह असफल सिद्ध होता है। अतः अन्तसन्निवेशित कथा कविता में अलग इकाई नहीं बनती। वह कविता के आत्मजगत् का अभिन्न अंग बन जाती है और कविता की मूल उन्मुखताओं के साथ विकसित होती जाती है। इस तरह आधुनिक कविता में कथा का सन्निवेश एक याँत्रिक प्रक्रिया न होकर जैविक प्रक्रिया का रूप धारण करता है। वास्तव में इसी में कविता की उपलब्धि है।

सामान्य कथायें, चाहे वह पौराणिक हो या अन्य प्रचलित कथायें, लोक कथा से एक-दम भिन्न होती हैं। लोक कथायें कविता में जब प्रयुक्त होती हैं, तो प्रायः कविता का पूरा कलेवर बदल जाता है। इसका कारण यह है लोक कथा से युक्त कविता पूरी तरह से लोक कविता है। अतः ऐसी कविताओं में एक लोक कथा-परिवेश का सन्निविष्ट होना असहज नहीं है। वह उसके मूल कलेवर का ही एक अंग है, इसके बावजूद ऐसी भी कवितायें हैं, जिनका मूल कलेवर लोक बद्ध नहीं है, पर उसमें लोक कथा सन्निविष्ट होती है। तब संभवतः यह देखने को मिल जाता है कि उक्त लोक कथा के पुट के रहने से कविता का अन्तर्जगत एक नयी दिशा ग्रहण कर लेता है।

हमारे आम जन जीवन में ऐसी असंख्य लोक कथायें प्रचलित हैं, जिनसे यद्यपि हमारा अटूट संबन्ध नहीं है, फिर भी उनके साथ के संबन्ध

को हम तोड़ भी नहीं पाते हैं। लोक कथाओं के साथ हमारा संबन्ध एक प्रकार से द्वन्द्वात्मक है, इसका कारण यह है कि समाज की समस्त प्रगतिशीलताओं के बावजूद हमारे स्वत्व में एक लोक पक्ष बना रहता है, जिसको हम अलग नहीं कर पाते हैं। यह पारंपरिक होता है जहाँ तक कविता की बात है, विशेषकर आधुनिक कविताओं में, दो प्रकार की कवितायें हमें मिलती हैं - पहली श्रेणी में वे कवितायें आती हैं, जो मुख्य धारा को संप्रेष्य बनानेवाली हैं। मुख्य धारा से विलगित एक और प्रकार की कवितायें भी मिलती हैं, जो अक्सर अपनी लोकोन्मुखता का परिचय देती हैं। यह वर्गीकरण यद्यपि उतना सटीक तो नहीं है, फिर भी आधुनिक कविता में इन दो श्रेणियों से संबद्ध कवितायें हमें उपलब्ध होती हैं। उसके कुछ कारण भी हैं - जिन कवियों का सीधा संबद्ध ग्रामीण वातावरण से है, वे अक्सर कविता में अपना लोक सृजित करते हैं, जिनमें जनसाधारण की कच्ची-पक्की धारणाओं, भावनाओं कथाओं और आकाँक्षाओं का एक भरा पूरा संसार रहता है। दूसरे वर्ग के कवि जो अपने स्वत्व के भीतर ही भीतर इन कुछ अंशों को लेकर चलते हैं, वे ऐसी कवितायें सृजित करते हैं, जिनमें अन्दरुनी स्तर पर लोक का विकास संभव होता है।

जहाँ तक लोक कथा के सन्निवेश का सवाल है, उसके उपयोग की मात्रा में पर्याप्त भिन्नतायें दिखायी पड़ती हैं। जैसे ऊपर संकेतित किया जा चुका है कि पूर्ण रूप से लोक कथा कविता में सन्निविष्ट हो, यह आवश्यक नहीं है। जहाँ-जहाँ जिन-जिन कविताओं में आँशिक तौर पर ही लोक कथा से संबद्ध कविताएँ मिल जाती हैं, उन कविताओं को भी इस

श्रेणी में रख सकते हैं और लोक कथा के संश्लेषण के संदर्भ में विश्लेषित भी कर सकते हैं।

लोक कथाओं की कविता-परिणतियाँ

लोक कथा का क्षेत्र विस्तृत होता है। वह केवल गाँव तक सीमित नहीं हो पाता है। हमारी मौखिक परंपरा तक इसकी व्याप्ति है। लोक कथायें, लोक जीवन के विश्वासों के आधार पर पलती है। इन विश्वासों पर ही लोक जीवन का सौन्दर्य टिका रहता है। लोक विश्वास समष्टिगत होता है। लोक विश्वासों में लोक जीवन के अनुभव मूल स्रोत का रूप ग्रहण करते हैं। "लोक विश्वास अतीत से चलकर वर्तमान में सदैव जीवन के साथ चलते हैं, और भविष्य के लिए सुरक्षित रहते हैं।"[1] जीवन के अनुभव व्यापक होते हैं। इन व्यापक अनुभवों की सच्चाई ही लोक विश्वास को विस्तृत और अमर बना देती है। ये लोक विश्वास पारदर्शी बनकर समय के साथ बहते रहते हैं। इनके समानान्तर लोक कथा भी आगे बढ़ती है। नया स्वर ग्रहण कर लेती है। ये कथायें कविता को पुष्ट करती हैं।

आधुनिक हिन्दी कविता में मुक्तिबोध की कविता में प्राप्त लोक कथा सन्निवेश पर विचार करना आवश्यक है। मुक्तिबोध की कविता का बाहरी पक्ष लोक-बद्ध नहीं है। लकिन उनकी कुछ श्रेष्ठतम कविताएँ लोक कथा सन्निवेश के अच्छे उदाहरण बनती हैं।

---

1. वसन्त निरगुणे : लोक संस्कृति (प्र.सं. 1996) : पृ. 68

मुक्तिबोध की कविता 'ब्रह्मराक्षस' लोक कथा को केन्द्र में रखकर लिखी गई है। 'ब्रह्मराक्षस' के मिथक के द्वारा कवि मध्यवर्गीय बुद्धि जीवि की विडंबना को व्यक्त करते हैं। मुक्तिबोध का ब्रह्मराक्षस 'लोक मिथक' है। मुक्तिबोध की यह रचना उनके जीवन एवं काव्य का प्रतिनिधित्व करने वाली महत्वपूर्ण रचना है।"[1]

"शहर के उस ओर खँड़हर की तरफ
परित्यक्त सूनी बावड़ी के भीतरी
ठंड़े अंधेरे में
बसी गहराइयाँ जल की
सीढ़ियाँ डूबीं अनेकों
उस पुराने घिरे पानी में
समझ में आ न सकता हो
कि जैसे बात का आधार
लेकिन बात गहरी हो।"[2]

मुक्तिबोध ने अंतर्मन की टकराहट को प्रस्तुत कविता में व्यक्त किया है। शहरी सभ्यता की चोट से त्रस्त कवि का जो देह है, उसे 'खँड़हर' के रूप में दिखाया गया है। बावड़ी सूनी होने के कारण वहाँ अंधेरा छाया हुआ है। यहाँ कवि का अंतर्मन ही व्यक्त हो जाता है। मन के भीतर उमड़ते हुए विचारों को, भावों को प्रकट न कर सकने के कारण सूनापन व्याप्त है। यहाँ खुद कवि मध्यवर्ग का प्रतिनिधि बनकर सर्वहारा का सहयोगी बना हुआ है।

---

1. जनक शर्मा : गजानन माधव मुक्तिबोध - व्यक्तित्व एवं कृतित्व (प्र.सं. 1983 : पृ. 212
2. सं त्रिलोचन शास्त्री : मुक्तिबोध की कविताएँ (प्र.सं. 1991) : पृ. 65

"गहन अनुमानिता, तन की मलिनता
दूर करने के लिए प्रतिपल
पाप-छाया दूर करने के लिए
दिन-रात स्वच्छ करने....
ब्रह्मराक्षस घिस रहा है देह
हाथ के पंजे, बराबर,
बाँह-छाती-मुँह छपाछप
खूब करते साफ - फिर भी मैल।"[1]

बावड़ी में ब्रह्मराक्षस कैद है, उसमें बैठकर वह पागलों की तरह बड़बड़ाता है। वह अपनी मलिनता को लगातार धो रहा है, लेकिन शरीर से मैल छूटता नहीं। बुद्धिजीवी बाह्य जगत् में जो करना चाहता है, वह उसे पूर्ण नहीं कर पाता है। वह सामाजिक परिवर्तन की आकाँक्षा करता है, पर वह पूर्ण नहीं होता। इसके कारण स्वयं को अपराधी मान बैठता है और लगातार मैल साफ करने की कोशिश करता है। यहाँ मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी का मन निस्संग बना हुआ है। "दो विचारधाराओं के विरोधी पाट है, जिनके बीच शोषित मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी संघर्षशील है। उसे इन दोनों में से एक का चुनाव करना ही होगा, शोषित वर्ग का होकर वह शोषक वर्गों की विचारधारा का वरण करेगा या तटस्थ रहेगा तो अपने वर्ग के साथ घटियाई और गद्दारी करेगा। ऐसी हालत में वह मुक्त नहीं हो सकता।"[2] इस प्रकार ब्रह्मराक्षस बावड़ी के भीतर बंदी बना हुआ है। अपने विचारों की फलपूर्ति चाहता है।

---

1. सं त्रिलोचन शास्त्री : मुक्तिबोध की कविताएँ (प्र.सं. 1991) : पृ. 65
2. चंचल चौहान : मुक्तिबोध के प्रतीक और बिंब (प्र.सं. 1997) : पृ. 138

"शोध में - सब पंड़ितों, सब चिन्तकों के पास
वह गुरू प्राप्त करने के लिए भटका।
किन्तु युग बदला व आया
कीर्ति व्यवसायी।
लाभकारी कार्य में से धन,
व धन में से हृदय मन,
और धन अभिभूत अन्तः करण में से
सत्य की झाई
निरन्तर चिलचिलाती थी।"[1]

'ब्रह्मराक्षस' एक ऐसी कविता है, जिसमें सत्य के शोध में भटकनेवाले शोधार्थी का परिचय मिलता है। वह जीवन के अच्छे-सार्थक मूल्यों की तलाश में भटकता है। अपनी ज़िन्दगी को नाकामयाब मानने के लिए अभिशप्त बन जाता है। अपने लक्ष्य को पूरा करने के लिए, मार्गदर्शन करने के लिए वह एक गुरू की तलाश करता है। पर वहाँ भी उसे असफलता मिलती है। इस प्रकार बाहर-भीतर की टकराहट जारी रहती है। इस टकराहट में वह पिसता जाता है। ब्रह्मराक्षस को कोई गुरू भी नहीं मिलता है, न कोई शिष्य भी। पर कविता के अंत में कवि खुद यह मानता है कि मैं ब्रह्मराक्षस का सजल उर शिष्य बनना चाहता हूँ। "ब्रह्मराक्षस को कवि ने अपने वैयक्तिक विज़न देकर उसे व्यक्ति और समष्टि दोनों की ट्रेजिड़ी का प्रतीक बना दिया है।"[2] इस प्रकार उसके

---

1. सं त्रिलोचन शास्त्री : मुक्तिबोध की कविताएँ (प्र.सं. 1991) : पृ. 67
2. सुरेन्द्र प्रताप : मुक्तिबोध विचारक, कवि और कथाकार (प्र.सं. 1992) : पृ. 73

अधूरे कार्य को पूरा कर सकूँ। 'ब्रह्मराक्षस' कविता का संवेदनात्मक उद्देश्य है कि मध्यवर्ग को करुणा के साथ सर्वहारा का सहयोगी बनना चाहिए। लोक के पक्ष में रहना चाहिए।

ब्रह्मराक्षस की लोक कथा का सही उपयोग इस कविता के लिए किया गया है। वह एक असफल या अपूर्ण आत्मा के रूप में लोक कथा में भारतीय सामूहिक अवचेतन में उपस्थित है जिसको मुक्तिबोध ने अपनी श्रेष्ठ कविता के लिए स्वीकारा है। एक असफल बुद्धिजीवि का व्यक्तित्व ही ब्रह्मराक्षस के माध्यम से व्यक्त होता है।

मुक्तिबोध की एक दूसरी कविता है 'लकड़ी का बना रावण'। जिसमें लोककथा के एक अंश को आंशिक तौर पर प्रयुक्त किया गया है। वह रामलीला का प्रसंग है जिसमें रावण के पुतले को जलाया जाता है।

"डरता हूँ - उनमें से कोई, हाय
सहसा न चढ़ जाय
उत्तुंग शिखर की सर्वोच्च स्थिति पर
पत्थर व लोहे के रंग का यह कुहरा।
बढ़ न जाएँ - छा न जाएँ
मेरी इस अद्वितीय
सत्ता के शिखरों पर स्वर्णाभ
हमला न कर बैठें खतरनाक
कुहरे के जनतंत्री - वानर ये, नर ये।"[1]

---

1. सं. नेमीचन्द्र जैन : मुक्तिबोध रचनावली (प्र.सं. 1980) : पृ. 402

सत्ताधारी वर्ग पर्वत के ऊपर रह रहा है। 'कुहरा' शब्द निम्न वर्ग के लिए प्रयुक्त हुआ है। अभी तक शोषित जनता सुप्तावस्था में पड़ी थी। पर अब जनता में जागरण का भाव आया हुआ है। इसी बात से पर्वत-शिखर के ऊपर बैठे हुये उच्चवर्ग परेशान हैं। उनमें दहशत पैदा होती है। जब उच्च वर्ग के पास निम्न वर्ग पहुँच जाता है तब वहाँ कोई फर्क नहीं रहता है। दोनों वर्ग समान बन जाते हैं। इस यथार्थ को उच्चवर्ग आतंक के रूप में अनुभव रहा है। मज़दूर वर्ग ही क्राँति की राह पर आ सकता है। इसी मज़दूर वर्ग को 'लोहे के रंग का कुहरा' मान लिया है। "नर-वानर' पौराणिक त्रेता युग के पात्र हैं। इनका वर्तमान संदर्भों में प्रयोग इनमें नए अर्थ-अनुषंग भर देता है, इन्हें प्रतीक बना देता है।"[1] त्रेतायुग में जिस प्रकार वानर-नर ने मिलकर सत्ताधारी 'रावण' को पराजित कर लिया था, उसी प्रकार आज की जनता क्राँति की राह पर आ गयी है। शोषित वर्ग के इस नव-परिवर्तन से शोषक वर्ग परेशान है। इस बदलाव को वह नहीं चाहता है। हमेशा शोषक बना रहना चाहता है। आज़ाद होने के लिए लोक को संघर्ष करना पड़ता है। संघर्षशील जनता खतरनाक बन सकती है। शोषक और शोषित के बीच का अन्तर मिटने वाला है। कविता की अंतिम पंक्तियाँ सत्ताधारी रावण के अंत को व्यक्त करती है।

"हाय, हाय
अग्रतर हो रहा चेहरों का समुदाय
और कि भाग नहीं पाता मैं

---

1. अशोक चक्रधर : मुक्तिबोध की कविताई (प्र.सं. 1998) : पृ. 87

हिल नहीं पाता हूँ
मैं - मन्त्र - कीलित - सा,
भूमि में गड़ा - सा
जड़ खड़ा हूँ
अब गिरा, तब गिरा
इसी पल कि उस पल.....।"[1]

राम लीला के अंतिम प्रकरण में रावण के पुतले का जलकर गिराया जाना सुनिश्चित है। इसमें पौराणिक संदर्भ को पूरी तरह से लोक में समन्वित करके प्रयुक्त होने का उपक्रम ही मिलता है। "मुक्तिबोध की कविताएँ अपने समय के जीवित इतिहास को कविता में बदलने की कठिन चुनौती का सामना करनेवाली कविताएँ हैं।"[2] इस लोक कथा के विन्यास में यह कविता मुखर होने से बच गयी है और वह कलात्मक सिद्ध हुई है। एक विस्तृत प्रदेश या यों कहें कि पूरे मध्यदेश में प्रचलित लोक कथा का संश्लेषण इस कविता में हुआ है।

अज्ञेय ने अपनी भिन्न-भिन्न कविताओं में भिन्न प्रकार के लोक तत्वों का रचनात्मक प्रयोग किया है। उनकी कविता में वह शब्द से लेकर कथा तक व्याप्त है। जहाँ तक कथा संश्लेषण का सवाल है, उनकी 'असाध्य वीणा' सबसे विशिष्ट रचना है।

अज्ञेय की कविता 'असाध्यवीणा' में एक लोक कथा का सन्निवेश अपनी विस्तृति में उपलब्ध है। कविता की पृष्ठ भूमि में एक लोक कथा है।

---

1. नेमिचन्द्र जैन : मुक्तिबोध रचनावली (प्र.सं. 1980) : पृ. 403
2. केदारनाथ सिंह : मेरे समय के शब्द (प्र.सं. 1993) : पृ. 69

"पूरा तो इतिहास न जान सके हम :
किन्तु सुना है, वज्रकीर्ति ने मन्त्रपूत जिस
अतिप्राचीन किरीटी-तरु से इसे गढ़ा था-
उसके कानों में हिम-शिखर रहस्य कहा करते थे अपने,
कंधों पर बादल सोते थे,
उसकी करि-शुण्ड़ों - सी डालें
हिम - वर्षा से पूरे वन - यूथों का कर लेती थी परित्राण,
कोटर में भालू बसते थे,
केहरि उसके वत्कल से कन्धे खुजलाने आते थे।"[1]

इस वीणा का इतिहास यह है कि वज्रकीर्ति नामक साधक ने इस वीणा को किरीटी तरू से गढ़ा था। इस किरीटी तरू की विशेषता को कवि ने प्रस्तुत किया है। यह वृक्ष बहुत ऊँचा था, उसके कानों में हिम-शिखर रहस्य कहा करता था। इस वृक्ष के कन्धों पर बादल सोते थे। वह वृक्ष अम्बरचुंभी था। उसके भीतर के कोटर में भालू बसते थे। उस वृक्ष की डालें भी विशिष्ट थीं। जंगल के सभी जीव-जन्तु इस वृक्ष के साथ अपना लगाव रखने वाले थे। उस वृक्ष पर प्रकृति का अपना वरदान भी था। 'अज्ञेय' ने किरीटी तरू की विशिष्टता को इस प्रकार प्रस्तुत किया है। यह वर्णन कविता को लोक कथा में विलीन कर देते है।

"हठ साधना यही थी उस साधक की-
वीणा पूरी हुई, साथ साधना, साथ ही जीवन-लीला।
राजा रुके, साँस लंबी लेकर फिर बोले

---

1. अज्ञेय : आंगन के पार द्वार (प्र.सं. 1961) : पृ. 73

"मेरे हार गये सब जाने-माने कलावन्त,
सब की विद्या हो गयी उकारथ, दर्पचूर,
कोई ज्ञानी गुणी आज तक इसे न साध सका।
अब यह असाध्य वीणा ही ख्यात हो गयी।"[1]

इन पंक्तियों द्वारा अज्ञेय ने साधक वज्रकीर्ति की निपुणता को स्पष्ट किया है। वे श्रेष्ठ कलाकार थे। काल के पथ पर चलने वालों को दर्प-ईष्या जैसे बुरे भाव शोभा नहीं देते हैं। उस कलाकार का देहाँन्त हो जाता है। उसके बाद इस वीणा को तानने वाला कोई कलाकार अभी आया नहीं। राजा ने कई कलावन्तों को बुलाया, पर इस वीणा को बजानेवाला श्रेष्ठ कोई नहीं मिल पाया। इस बात पर राजा निराश भी था। ज्ञान की प्राप्ति के लिए ईश्वर चिन्तन की ज़रूरत है। दर्प को लेकर जो चलते हैं, उनका नाश अवश्य हो जाता है।

बहुत कोशिश करने पर भी कोई भी कलाविद् इस वीणा को न बजा पाया। इस प्रकार उस वीणा का 'असाध्य वीणा' नाम पड़ गया। समाज में उसकी ख्याति भी बढ़ गयी। प्रियंवदा नामक कलाकार उसे साधता है या साधने में सफल होता है। लोक कथा का विस्तार वहाँ भी देखने को मिलता है। इस कविता में लोक कथा और मिथकीयता का सम्मिश्रण है। मिथकीयता दरअसल लोक की आंतरिक व्याप्ति के लिए है। "जब कविता सामूहिक स्वत्व की पहचान में सफल होती है, जिसके ज़रिए वह जब एक गंभीर स्थिति का अनावरण करती है तब मिथक का

---

1. अज्ञेय : आंगन के पार द्वार (प्र.सं. 1961) : पृ. 73

कहीं न कहीं, किसी न किसी मात्रा में उपयोग होता है। अर्थात् मिथक कविता की भीतरी खोज का एक सूक्ष्मतम तत्व है।"[1] इन दोनों के सफल प्रयोग के कारण कविता की संवेदनात्मक दृष्टि में सघनता आयी है।

प्रियंवद वीणा को बजाता है। सब उसका स्वर सुनता है। सबने अपने-अपने ढंग से सुना। उक्त संदर्भ में भी अज्ञेय ने लोक का सहारा लिया है। आस्वादन को व्यापक बनाने के लिए लोक का सहारा लिया गया है। कविता में लोक के कई सूचक तत्व मिल जाते हैं। लेकिन प्रत्येक का जीवनानुभव यहाँ मुख्य है।

किसी एक को नयी वधु की सहमी-सी पायल-ध्वनि
किसी दूसरे को शिशु की खिलकारी
एक किसी को जाल-फँसी मछली की तड़पन-
एक अपर को चहक मुक्त नभ में उड़ती चिड़िया की।
एक तीसरे को मंड़ी की ठेलमठेल, ग्राहकों की आस्पर्द्धा
भरी बोलियाँ
चौथे को मन्दिर की
ताल युक्त घंटा-ध्वनि।"[2]

अज्ञेय की यह कविता लोक कथा के रूप में शुरू होती है और लोक कथा के रूप में समाप्त होती है। लोक कथा प्रस्तुति के बहाने कवि अपने काव्य सत्य को प्रस्तुत भी करते हैं।

---

1. ए. अरविन्दाक्षन : आधारशिला (प्र.सं. 2001) : पृ. 26
2. अज्ञेय : आंगन के पार द्वार (प्र.सं. 1961) : पृ. 77

लोक कथाएँ बलपूर्वक कविता में प्रयुक्त नहीं की जा सकती। वे स्वयमेव कविता में प्रयुक्त होती हैं। यह लोक के प्रति कवि के विशेष अनुराग के कारण नहीं अपितु कवि का एक अंश लोकबद्ध रहता है। कभी-कभी प्रकट और कभी-कभी अप्रकट।

रुघुवीर सहाय की कविता 'दुर्भिक्ष' में अकाल का संपूर्ण चित्र उभरकर आता है। अकाल से पीड़ित होकर 'देवीदत्त' नामक व्यक्ति भीख माँगने के लिए आया है। 'देवीदत्त' की पूरी ज़िन्दगी इन पंक्तियों में व्यक्त हुई है। रघुवीर सहाय की रचना में लोक नब्ज़ यहाँ हम अनुभव कर सकते हैं।

"मैं कुछ कह नहीं सका
सीधे पिता के पास जाकर उनसे पूछा
वह जो था देवीदत्त क्या आप जानते हैं पागल हो गया है?
और वह बोले हाँ
बहुत होनहार था आया है?
उसको खिला देना, उसके कोई नहीं, बस बूढ़ा बाप है
एक के बाद एक विपदा पड़ती गयी,
घर नष्ट हो गया
मैं बैंठक में लौटा
दो रोटी लाया था, भीतर बुलाकर परस दिया
उसने उठाया वह परोसा और रख लिया बूढ़े बाप के लिए।"[1]

---

1. रघुवीर सहाय : लोग भूल गये हैं (प्र.सं. 1982) : पृ. 94

यह कविता 'देवीदत्त' की वेदना को, उसके वास्तविक जीवन को प्रकट करने वाली है। यहाँ वास्तविक कथा लोक कथा के रूप में विन्यसित है 'दुर्भिक्ष' की भयानकता को भी दर्ज करती है। "रघुवीर सहाय ने अपने चारों ओर के यथार्थ जगत् की अभिव्यक्ति यहाँ प्रकट की हैं। रघुवीर सहाय की काव्य संवेदना और उनकी निरंतर सक्रिय प्रयोगधर्मिता का बहुत व्यवस्थित अध्ययन अभी होना है। कुछ जो बहुत सीधे-सीधे दिखाई देने वाली विशेषताएँ है, उनमें एक बड़ी विशेषता यह है कि बहुत ठोस और गद्यात्मक लगनेवाले संदर्भों के होते हुए कविता में उनके रचाव के द्वारा ऐसी नाटकीयता को हासिल किया गया है। जो हमारे जटिल समय के सामाजिक अन्तर्विरोधं से भरे जीवन के एक भीतरी खोखलेपन और क्रूरता को अनावृत्त करती है।"[1] इसी की अभिव्यक्ति के लिए उन्होंने 'मैं' शब्द का उपयोग किया है। कवि का अनुभव यथार्थ यहँ प्रकट होता है।

रघुवीर सहाय की कविताएँ समस्याओं को प्रकट करती हैं। ये समस्यायें कथाओं का रूप धारण करके कविता में प्रकट होती है। उनकी कविताएँ लोक जीवन की झाँकियों को प्रस्तुत करती हैं। 'दयावती का कनुबा' नामक कविता में रघुवीर सहाय ने 'दयावती' नामक लड़की का जीवन प्रस्तुत किया है। इस कविता द्वारा लोक का संस्कार प्रकट हुआ है। 'दयावती' की शादी, शादी के बाद ज़िन्दगी का बदलाव, दयावती की पीड़ा जैसे संकेत वर्णित हैं। इस कविता द्वारा दयावती का पूरा परिवार सामने आता है। यहाँ जीवनानुभव लोक कथा का आधार स्वीकार करता प्रतीत होता है।

---

1. विजयकुमार : कविता की संगत (सं. 1996) : पृ. 68

"यह एक लंबी कहानी है
वहाँ से शुरू करें ?
जब इस सदी के आरंभ में
दयावती घर संविदा हुई
हर पुत्री का अपना भाग्य है।
मानकर पिता ने वर ले दया
बोझ मिटा बाप का
जिसको संसार में कितने ही मोर्चे लड़ने थे
दयावती को उससे ज़्यादा लड़ने पड़े
तब से शुरू हुई दयावती की कथा
इच्छाएं दाव कर बदल कर स्वभाव को
जैसे ससुराल में पसंद था।"[1]

इस प्रकार दयावती का जीवन आगे बढ़ रहा है। लड़कियों को शादी के बाद ससुराल में जीना है। वहाँ एक अलग प्रकार का जीवन होता है। सभी समस्याओं से घिसते-पिटते 'दयावती' जीवन बिताती हैं। जीवन के अंत तक 'दयावती' समस्याओं के घेरे में पड़ रही। एक वास्तविक कथा अपनी समस्याओं की वजह से लोक कथा का रूप ग्रहण करती है। अलावा इसके मामूली जीवन को आधुनिक कवि कथात्मक बना देते हैं। इस कथात्मक प्रवृत्ति में लोकानुराग मुखर मिलता है।

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने लोक जीवन की विस्तृत अभिव्यक्ति 'कुआनो नदी' नामक कविता में प्रस्तुत की है। कवि का बचपन इस नदी

---

1. रघुवीर सहाय : कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ (प्र.सं. 1989) : पृ. 63

के साथ बीता है। इस नदी की साँस्कृतिक चेतना ने प्रस्तुत कविता में जीवंत रूप धारण कर लिया है। एक भौगोलिक स्थिति का लोक कथा में यह परिवर्तन प्रस्तुतः कवितात्मक है -

"कुआनो नदी-
सँकरी, नीली, शाँत
अभी भी बहती रहती है रात-दिन मेरे सामने
आदेखे को पाने का उत्साह कुरेदती हुई।
बरसात में अपना पाट चौगुना करती
आस-पास के गाँवों को डुबाती
शहर की ऊँची सड़क के
दोनों ओर की नीची ज़मीन को
हरहराते नाले-सा बनाती।"[1]

सर्वेश्वर की मूल चेतना लोक जीवन से संबद्ध है। ग्राम्य संवेदना को पूरी सूक्ष्मता और आत्मीयता के साथ उन्होंने व्यक्त किया है। 'कुआनो नदी' से कवि का परिचय बचपन से है। "कवि की मूल्य चेतना का उत्तम स्पुष्टन उसकी प्रबन्धात्मक रचनाओं में होता है, सर्वेश्वर की प्रबन्धात्मक रचनाओं में कुआनो नदी की श्रेष्ठता स्वीकृत रही है। अतः कुआनो नदी शीर्षक कविता सर्वेश्वर की सामाजिक चेतना की प्रतिनिधि वाहिका मानी जा सकती है।"[2] आज भी इस नदी की ताज़ी याद में कवि जीवन बिताते

---

1. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : कुआनो नदी (प्र.सं. 2004) : पृ. 12
2. इफ्फत असगर : सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के काव्य में सामाजिक चेतना (प्र.सं. 2004) : पृ. 120

है। वे अपने अनुभव के क्षणों को शब्दबद्ध करते हैं। अदृश्य शक्ति को पाने की चाह में नदी आगे बहती है। नदी में एक प्रकार की 'प्रतीक्षा' का भाव देख सकते हैं। यही भाव नदी को चेतनमय, गतिमय बना देता है। ऐसा ही उत्साह लोक में भी कवि देखना चाहते हैं। बारिश के मौसम में यह नदी पूरे गाँव को डुबा देती है। यह नदी तीन तरह की संस्कृतियों को गाँव, कस्बा और शहर-अपने में समेटती हुई आगे बढ़ती है।

"मछलियाँ, जोंक, पनियल साँप
सब के अलग-अलग ढ़ंग है पानी में चलने के
मैं आज भी उनका गवाह हूँ
बड़े ध्यान से मैं ने देखा है उन्हें।
पीले-पीले मेढ़कों की छपाक से ही
मैं बता सकता हूँ पानी यहाँ कितना गहरा है
और बरसात खत्म होने पर
इसे सूखने में कितने दिन लगेंगे।"[1]

उन्होंने पूरे लोक को बहुत ही सूक्ष्मता से अनुभव किया है। चारों ओर की दुनिया से कवि का संबद्ध बहुत निकट का है। मछलियाँ, जोंक, पनियल साँप और मेंढ़क कवि के जीवन के निकट ही पानी में बसने वाले जीव-जन्तु हैं। नदी के निकट बसने वाले लोक की कथा को इस कविता में स्थान दिया गया है।

---

1. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : कुआनो नदी (प्र.सं. 2004) : पृ.12

"बहुत गरीब ज़िला है वह, बस्ती-
जहां मैं ने इसे पहली बार देखा था।
मेरे नाना इस नदी में कूद पड़े थे
और निकाल लिए गये थे

ज़िन्दगी से ऊब कर मर नहीं सके।
तट पर न रेत थी न सीपियाँ,
सख्त कँकरीली ज़मीन थी काई लगी,
कहीं दलदल था, झाड़ियाँ थीं दूर तक
जिनमें सोते कुलबुलाते रहते थे
और चिड़ियाँ एक टहनी से दूसरी टहनी पर
शोर करती झूलती रहती थीं।"[1]

लोक कथात्मक ढाँचे में प्रस्तुत इन पंक्तियों के द्वारा कवि ने गरीबी का व्यापक चित्र प्रस्तुत किया है। कवि का बचपन गरीबी में ही बीता है। पूर्ण रूप से अभाव का चित्र यहाँ प्रकट है। दर्दीला वातावरण छाया हुआ है। भुखमरी का यथार्थ रूप हमारे सामने आता है। अब भी कोई बदलाव इसमें नहीं आया है। आम आदमी एक वक्त की रोटी के लिए परेशान रहता है। "कुआनो नदी में देश की गरीबी और भुखमरी का दर्द-भरपूर दिखाई देता है। कवि जिस प्रदेश में जन्मा और पला वह गरीबी का एक विशाल पटल है, जहाँ ज़िन्दगी रोटी के लिए सिसकती है।"[2] इस प्रकार सर्वेश्वर की कविता लोक की कथा के बहाने बहुत कुछ को व्यक्त

---

1. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : कुआनो नदी (प्र.सं. 2004) : पृ.13
2. युद्धवीर धवन : समकालीन लम्बी कविता की पहचान (प्र.सं. 1987) : पृ. 66

करने वाली है। दर्द के भिन्न-भिन्न आयामों का यथार्थ रूप प्रस्तुत कविता अंकित करती है।

"यह नदी मुर्दघाट के लिए मशहूर है।
कुआनो जाने का मतलब
किसी को फूँकने जाना है
मेरे पिता को हर शव-यात्रा में जाने का शौक था।
अक्सर वह आधी-आधी रात लौटते
और लकड़ियाँ गीली होने की शिकायत करते।
माँ से कहते - 'कुछ लोग अभागे होते हैं
उनकी चिता ठीक से नहीं जलती।
और हर अभागे की यही अधिरी कहानी
मैं आज भी सुनता हूँ।"[1]

'कुआनो नदी' को शोषण का प्रतीक बनाकर कवि ने चित्रित किया है। वर्तमान काल में भी शोषण में कमी नहीं आयी है। यह नदी बेचारे आम आदमी का शोषण करती है। बाढ़ के कारण जनता का विनाश होता है। मुर्दे को जलाने वाली लकड़ी गीली रहती है। इसलिए चिता ठीक से नहीं जलती। लोक का जीवन इस प्रकार आपदाग्रस्त होता है। आज भी कोई विशेष परिवर्तन नहीं हो पाया है।

"इस नदी के किनारे
कोई मेला नहीं लगता।
न ही पूर्णिमा स्नान होते हैं।

---

1. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : कुआनो नदी (प्र.सं. 2004) : पृ.14

एक मंदिर है, जो बहुत कम खुलता है
जिसकी सीढ़ियाँ
अहदियों के बैठने के काम आती हैं।"[1]

'कुआनो नदी' में चित्रित यथार्थ, व्यक्ति एवं सामाजिक परिवेश की दुर्दशा को प्रकट करता है। कोई भी मेला या पर्व इस नदी के किनारे मनाया नहीं जाता है। इस नदी के किनारे मुर्दाघाट का सन्नाटा छाया रहता है। हवा की गति तक इस स्थान पर मन्द पड़ जाती है। पूर्ण रूप से इन पंक्तियों में से आम जनता का जीवन यापन, उनकी मेहनत, पीड़ा आदि का वर्णन मिलता है। वहाँ के मंदिर में ठीक से ईश्वर की पूजा भी नहीं हो पाती है। ज़िन्दगी की भाग-दौड़ में पड़ने के कारण लोक की ज़िन्दगी आराम विहीन बन जाती है। यह एक महत्वपूर्ण सच्चाई है। 'कुआनो नदी' लोक कथा के परोक्ष रूप को व्यक्त करती है। उसके माध्यम से सर्वेश्वर एक लंबी कथा प्रस्तुत करते हैं। लोक कथा और वर्तमान की कथा का समान अनुपात इस कविता में संश्लेषण हुआ है।

कुंवर नारायण की कविताओं में लोक कथा के अंश मिलते हैं। 'गंगाजल' नामक कविता में गंगा की पवित्रता को प्रस्तुत किया गया है। गंगा की धर्मशीलता को इस प्रकार व्यक्त किया गया है -

"ऐ मुक्त वन विहारी
गर्दन ऊँची करो
गंगा का दानी जल

---

1. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : कुआनो नदी (प्र.सं. 2004) : पृ.11

लोक हित बहता है
आओ, शक्ति बाँध
कमल वन के इसी क्रीड़ा जल में....
अछूती गहराइयों में उतरें
अवगुंठित बल से इस धारा प्रवाह में
भय विहीन
विहरें देखें तो जीवन की दर्दम दुख कारा में
सचमुच ही कौन दैत्य
सदियों से रहता है।"[1]

लोक का विश्वास है कि गंगा जल सभी पापों को मिटा देता है। गंगा में नहाकर कोई भी व्यक्ति पाप से मुक्त हो जाता है। कुंवर नारायण की यह कविता इसी तथ्य को प्रस्तुत करती है। सदियों से यह विश्वास सामान्य जन-मानस में व्याप्त है। गंगा की पवित्रता को खूब गहराई के साथ वर्णित किया गया है। यह कथा लोकवार्ता का अंश बनता है। "लोक जीवन को नई दिशा देने के लिए लोकवार्ताओं का आश्रय लिया जाता है। भारतीय धर्मसाधना के साहित्य ने लोक वार्ताओं की दिशाओं से अद्‌भुत सामंजस्य स्थापित किया है।"[2] भारतीय धर्म में गंगा को श्रेष्ठ माना जाता है। इस धर्मसाधना से सामंजस्य स्थापित करके कुंवर नारायण ने यह पंक्तियाँ लिखी हैं। इसमें लोक की संस्कृति के अंश सन्निहित हैं।

कुंवर नारायण की कविता में प्रकारांतर के लोक पक्ष गौण है। लेकिन उनकी बहुत सी कविताएँ पौराणिक संदर्भों से युक्त है जिनकी

---

1. कुँवर नारायण : चक्रव्यूह (प्र.सं. 1976) : पृ. 102
2. वीरेन्द्र मोहन : इतिहास और संस्कृति (प्र.सं. 2004) : पृ. 113

मिथकीयता प्रबल है। उनकी मिथकीयता में लोक कथा का वातावरण सृजित किया गया है। उनकी एक कविता में 'अयोध्या-1992' शीर्षक में पता चलता है कि यह कविता बाबरी मस्जिद के धंस से संबंधित है। कविता से यह बात स्पष्ट हो जाती है। अयोध्या का महत्व उसकी पवित्रता तथा लोक बद्धता के कारण है। लेकिन आज स्थिति यह है-

"इस से बडा क्या हो सकता है
हमारा दुर्भाग्य
एक विवाहित स्थरम में सिमटकर रह गया है
तुम्हारा साम्राज्य"[1]

अयोध्या के प्रति, राम के प्रति इस में जो आदर भाव दिखाया गया है वह लोक से संबंद्ध है। राम कथा हमारी लोक दृष्टि की वस्तुपरकता है। इसलिए इस कविता में राम कथा के माध्यम से वस्तुतः एक लोक कथा का ही संश्लेषण हुआ है। राम के प्रति जो आस्था है वह मात्र कवि का नहीं है यह पूरे लोक की आस्था है। प्रस्तुत कविता में ऐसे भाव चमकते-दमकते मिलते हैं -

"हे राम, कहाँ यह समय
कहाँ तुम्हारा नेता युग
कहाँ तुम मर्यादा पुरुषोत्तम
और यहाँ यह नेता युग!

---

1. सं. यतीन्द्र मिश्र : कुंवरनारायण : संसार (2002) : पृ 137

सविनय निवेदन है
प्रभु कि लौट जाओ
किसी पुराण - किसी धर्मग्रंथ में"[1]

समय के विघटन को पुराण कथा लोक कथा के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है।

केदारनाथ सिंह की कविता में लोक कथा के कई अंश मिल जाते हैं। अपने स्थानीय परिवेश के प्रति सजगता का भाव उनकी कवितायें व्यक्त करती हैं। 'दन्तकथा' नामक कविता में केदारनाथ सिंह ने एक 'तलवार' की कहानी को वर्णित किया है। तलवार के बारे में कई प्रकार की कहानियाँ प्रचलित हैं। लोक जीवन का पूरा माहौल यह कविता व्यक्त करती है -

"पुरानी हवेली में
आज भी रखी है एक नंगी तलवार
हवेली में कोई नहीं रहता
पुरानी हवेली लोगों की याददाश्त में
जब से है
इसी तरह खाली है
पर लोगों की याददाश्त में
ठीक वहीं पर और उसी तरह रखी है
एक नंगी तलवार
बहुत-सी कहानियाँ हैं

1. सं. यतीन्द्र मिश्र : कुंवरनारायण : संसार (2002) : पृ 137

तलवार के बारे में
और लोगों के बारे में।"[1]

प्रस्तुत कविता में केदारनाथ सिंह ने एक तलवार की कथा को प्रस्तुत किया है। कुसुमपुर गाँव का चित्रण पूरी तन्मयता के साथ किया गया है। बस्ती के जीवन यथार्थ के पहलुओं को यह कविता दर्ज करती है। तलवार एक प्रतीक के रूप में याने लोक कथा के प्रतीक के रूप में अंकित हैं। प्रत्यक्षतः यद्यपि कोई कहानी व्यक्त नहीं है फिर भी लोक कथाओं की सूचनाएँ यह कविता दे रही है।

केदारनाथ सिंह की एक और कविता है 'भिखारी ठाकुर'। इसमें उन्होंने लोक अभिनेता 'भिखारी ठाकुर' की कथा को व्यक्त किया है। लोक जीवन की गतिशीलता को भिखारी ठाकुर अभिनय द्वारा मंच पर प्रस्तुत करता है। इसी यथार्थ को केदारनाथ सिंह ने अपनी कविता में शब्दबद्ध किया है।

"विषय कुछ और था
शहर कोई और
पर मुड़ गई बात भिखारी ठाकुर की ओर
और वहाँ सब हैरान थे यह जानकर
कि पाते नहीं थे वे
क्यों कि सिर्फ वे नाचते थे
और खेलते थे मंच पर वे सारे खेल
जिन्हें हवा खेलती है पानी से

---

1. केदारनाथ सिंह : यहाँ से देखो (प्र.सं. 1983) : पृ. 70

या जीवन खोता है
मृत्यु के साथ।"[1]

यहाँ लोक गीतिनाट्य का वर्णन मिलता है। जीवन का खेल प्रस्तुत किया गया है। जीवन का खेल मंचित किया गया है। मनुष्य का जीवन सुख-दुःख, आशा-निराशा के बहाव में आगे बढ़ता है। इन सब यथार्थों को मंच पर प्रस्तुत किया जा रहा है। "केदार मनुष्य की छोटी से छोटी खुशी, विषाद और संघर्ष को बड़ी बारीकों से आँकते हैं और पाठकों को उसे महसूस करने के लिए विवश कर देते हैं।"[2] इसी कारण अपनी कविता में उन्होंने नाटकीयता का अंश स्वीकार किया है। दृश्य-श्रव्य होने के कारण नाटक ही दर्शकों पर ज़्यादा असर डाल सकती है। दर्शकों एवं पाठकों को महसूस कराने के लिए कविता में लोक जीवन का पक्ष मंचित किया है।

लोकपक्षधर केदारनाथ सिंह अपनी कविता में किसी न किसी कथा को प्रकट करते हैं। लोक का संपूर्ण रूप उसमें उमड़ता रहता है। धरती के सभी जीव-जंतुओं के वे पूरी सूक्ष्मता के साथ अपनी रचना में स्थान देते हैं। रचना को आलोकित करने के लिए वे सभी प्राणियों को अपना विषय बनाते हैं। लोक कथाएँ समाज में विरासत की पूँजी के समान सुरक्षित होती हैं। 'लोक कथा' नामक कविता में वे लोक जीवन के विभिन्न आयाम को प्रस्तुत करते हैं। समाज के कई वर्गों का ज़िक्र होता है।

---

1. केदारनाथ सिंह : उत्तर कबीर और अन्य कविताएं (प्र.सं. 1995) : पृ. 28
2. सं. भारत यायावर : राजा खुगशल - कवि केदारनाथ सिंह (प्र.सं. 1983): पृ. 119

राजा की मृत्यु का वर्णन किया गया है। मृत्यु के सामने राजा या रंक का कोई भेद-भाव नहीं होता है। यही एक वास्तविकता है।

"जब राजा मरा
सोने की एक बहुत बड़ी अर्थी बनायी गयी
जिस जर रखा गया उसका शव
सब से पहले मंत्री आया
और शव के सामने
झुककर खड़ा हो गया
फिर धीरे-धीरे
बढ़ई, धोबी, नाई
कुम्हार सब आये
और सब खड़े हो गये
विशाल चमचमाती हुई अर्थी को घेरकर।"[1]

राजा की अर्थी को घेरकर सभी तबके मनुष्य खड़े हैं। सभी जन आदर का भाव प्रकट करके वहाँ खड़े हैं। मृत्यु के समय विशिष्ट व्यक्ति भी सामान्य बन जाता है।

'विजयदेव नारायण साही' की कविता में लोक कथा की अभिव्यक्ति मिल जाती है। यह संकेतित किया जा चुका है कि लोक कथा में लोक के विश्वास जुड़े रहते हैं। लोक विश्वास के अनुसार पेड़ों को ईश्वर माना जाता है। इसी विश्वास के आधार पर विजयदेव नारायण साही अपनी

---

1. केदारनाथ सिंह : अकाल में सारस (प्र.सं. 1988) : पृ. 47

कविता में 'देवदारु' का वर्णन करते हैं। 'अर्थ भस्म देवदारु' की कथा है। बिजली की कौंध ने देवदारू को नष्ट किया है। पूर्णरूपेण में वह भस्म हो गया है। लेकिन कवि उस पेड़ के बीते हुए दिन की याद करते हैं। उसकी सुखद-शीतल शाखाओं का स्मरण करते हैं।

"बिजली की तरह वह आया
और तुम्हें पुराने देवदारू की तरह
बीच से चीरता हुआ
भूमि में समा गया
तुम इस विशाल आलोक को देखते रहे।
जो सहसा चारों ओर छा गया था
तुम्हें ध्यान ही नहीं रहा
कि तुम दो टुकड़े हो गये हो
और अब तुम्हारे पास
वे शब्द भी नहीं हैं
जिनसे तुम
उस कथा की आवृत्ति कर सके।"[1]

इन पंक्तियों में कवि देवदारु की कथा को पूर्ण रूप से प्रस्तुत करते हैं। लोक कथा-संश्लेषण कविता की एक सशक्त शैल्पिक प्रवृत्ति है। उसके ज़रिए कवि अपनी रचना का भीतरी भूगोल अधिक विस्तृत कर पाता है। साहि ने यही किया है।

---

1. विजयदेव नारायण साही : मछली घर (प्र.सं. 1966) : पृ. 56

विजयदेव नारायण साही की एक दूसरी कविता है 'सत् की परीक्षा'। इस कविता में लोक विश्वास के संस्कार मिल जाते हैं। सत् की परीक्षा की जानेवाली है। यह लोक की एक रीति है। यह रीति-रिवाज़ लोक जीवन के अन्तर्गत आनेवाले हैं। बहु को उबलते हुए तेल की कड़ाही में हाथ डालकर सत् की परीक्षा लेनी है। यह परीक्षा लेने के लिए सभी गाँव वाले इकट्ठे हुये हैं।

"साधो आज मेरे सत की परीक्षा है
आज मेरे सत की परीक्षा है
बीच में आग जल रही है
उस पर बहुत बड़ा कडाह रखा है
कड़ाह में तेल उबल रहा है
उस तेल में मुझे सब के सामने
हाथ ड़ालना है
साधो आज मेरे सत् की परीक्षा है।"[1]

इस प्रकार एक ओर ससुराल वाले और दूसरी ओर मायके वाले बैठे हैं। अंत में सत्य ही जीत जाता है। उस बहू के मानसिक संघर्ष के भाव यहाँ दिखाया गया है। उबलते कड़ाही में हाथ डालने पर जल जायेगा। फिर भी वह बहू आशा करती है कि कड़ाही का तेल गंगा जल बन जाये तो ठंड़ लगेगी। हाथ भी न जलेगा। साही ने कविता के आत्म संघर्ष को खुद महसूस करके प्रस्तुत किया है।

---

1. विजयदेव नारायण साही : मछली घर (प्र.सं. 1966) : पृ. 56

प्रभाकर माचवे की 'विजयदशमी' नामक कविता में भारतीय लघु संस्कृति का दृश्य उभरकर आता है। जिस प्रकार 'विजयदशमी' में न्याय एवं सत्य की जीत हुयी थी उसी प्रकार इस कविता में भी जनता की जीत दिखायी गयी है। भारत की जनता मुक्त हो गयी है। 'विजयदशमी' के दिन राम ने रावण पर विजय प्राप्त कर ली थी। जिस दिन राम ने रावण को मार लिया था, वह दिन विजयदशमी के रूप में लोग मनाते हैं। इसी कथा को प्रभाकर माचवे ने प्रस्तुत कविता में स्थान दिया है।

> "यह विजयदशमी आयी है नव हर्ष लिये जनता के हित
> अब मुक्त हुए वे ग्राम नगर जो रज़ाकार जन से पीड़ित
> यह विजय हुई है किस कारण? सेनाओं से
> सरदारों से ना?
> विजय हुई है पीड़ित की संघर्षमयी चीत्कारों में।"[1]

'विजयदशमी' जनता के हित के लिए है। लोक कल्याण के लिए है। इसी उद्देश्य के साथ रावण को मारा गया था। 'रावण' अन्याय का प्रतीक था। इसी पुराण कथा की आवृत्ति यहाँ होती हैं। हर्ष के साथ जनता इस पर्व को मना रही है। लोक जीवन में दीपावली, विजयदशमी जैसे पर्व मनाये जाते हैं। लोक पक्षधर होने के कारण प्रभाकर माचवे ने सामाजिक यथार्थ को पुराण कथा से जोड़ दिया है।

प्रभाकर माचवे की 'उज्जयिनी में' नामक कविता सामाजिक यथार्थ को जोश के साथ व्यक्त करती है। कालिदास इसी उज्जयिनी के

---

1. प्रभाकर माचवे : अनुक्षण (प्र.सं. 1959) : पृ. 76

रहनेवाले थे। प्रभाकर माचवे उज्जयिनी के वातावरण को इस कविता में प्रस्तुत करते हैं। वहाँ की जीवन के बारे में बताते हैं -

"मगर जहाँ तक मैं ने देखा
घोर गरीबी के बुज्जारे
भैरोगढ़ से छीपे देखे और बहादुरगंजी माली
देखे मैं ने बलई, रेंगर
भील और कुनबी बेचारे
मिल में पिसते
मेलों में जुटते देखे विक्रम बलशाली
कब तक उस कल्पना जगत् के संस्कृति -
स्वप्नों को पी-पीकर
भुला सकोगे कब तक राही
ये कठोर वास्तव श्रम-सीकर।"[1]

प्रभाकर माचवे व्यक्त करते हैं कि स्वप्न जगत् से यथार्थ जीवन बिलकुल अलग होता है। कवि स्वप्न के बारे में ही नहीं वास्तविक जीवन-यथार्थ को भी स्पष्ट करता है। लोक कवि होने के कारण अनुभव यथार्थ का चित्र वे प्रस्तुत करते हैं। कल्पना की दुनिया से हटकर जनता की पीड़ा, गरीबी आदि को वे व्यक्त करते हैं। बलई, रेगर, भील, कुनबी जैसे वर्ग का चित्रण भी उन्होंने किया है। वास्तविक जीवन कठोर होता है। इसी कठोर वास्तविकता को प्रभाकर माचवे ने अपनी कविता में व्यक्त

---

1. प्रभाकर माचवे : अनुक्षण (प्र.सं. 1959) : पृ. 60

किया है। सच्चा लोक कवि अनुभवी यथार्थ को स्पष्ट करने में सक्षम बनता है, यही बात उन्होंने यहाँ साबित की है।

जगदीश गुप्त की रचनाओं में भी लोक कथा की झाँकी उपस्थित होती है। लोक विश्वास के साथ कथा की गति बढ़ती है।

"नन्दा देवी के क्रीड़ा - प्रासादों की
रचना करने को स्वयं विश्वकर्मा ने
खंभे ही खंभे जगह-जगह रच ड़ाले
सर्जन संकल्पों में जाने-अनजाने
उनकी नभ भेदी गर्वित ऊँचाई को
जब विधि से देखा नहीं गया ईर्ष्यावश
निज मंत्र शक्ति से उसने उन स्तंभों को
परिणाम कर डाला तरुओं में अभ्रंकश।"[1]

इन पंक्तियों में दुर्गा देवी का वर्णन मिलता है। लोक में दुर्गा देवी की पूजा की जाती है। दुर्गादेवी की क्रीड़ा के लिए ब्रह्मा ने सभी जगहों पर खंभे रच डाले थे। लेकिन विधि ने अपनी मंत्र शक्ति से स्तंभों को तरुओं में बदल दिया। अहम को मिटाने के लिए यह कार्य किया था। इस प्रकार 'स्तम्भ-कथा' नामक यह कविता लोक विश्वास को प्रकट करती है। लोक का जीवन ऐसे अटूट विश्वासों एवं कथाओं पर आश्रित रहता है।

लोक की भूमि से कविता रस को ग्रहण कर लेती है। "रचना की नब्ज जब डूबने लगती है, साँस जब उखड़ने लगती है तब लोक ही उसे

---

1. जगदीश गुप्त : हिमविद्ध (प्र.सं. 1964) : पृ. 74

आँक्सीजन देकर पुनर्जीवन प्रदान करता है। सच्चा साहित्य अपनी प्रकृति में ही लोकधर्मी होता है।"[1]

भवानीप्रसाद मिश्र 'सतपुड़ा के जंगल में' स्थानीय प्रकृति को प्रस्तुत करते हैं। इन्होंने लोकजीवन के संदर्भ में प्रकृति का चित्रण किया है। पूर्ण रूप से कवि ने जंगल की वास्तविकता को कविता में स्थान दिया है। "कवि भवानी प्रसाद जंगल की असुन्दरता तथा अस्त-व्यवस्था के स्थान पर उसे व्यवस्थित और मंगलकार्य देखना चाहते हैं।"[2] इस कविता में उन्होंने सामान्य मनुष्य को याद किया है। लोक का आनंद सामाजिक कल्याण में ही है। यही सुन्दरता - मंगलमय वातावरण इस कविता में निहित है।

"सतपुड़ा के घने जंगल
नींद में डूबे हुए-से
ऊँघते अनमने जंगल।
झाड़ ऊँचे और नीचे
चुप खड़े हैं आँख भींचे
घास चुप है, काश चुप है
मूक शाल, पलाश चुप है
बन सके तो घँसो इनमें
घँस नहीं पाती हवा जिनमें।"[3]

---

1. एकान्त श्रीवास्तव : कविता का आत्मपक्ष (प्र. सं. 2006) : पृ. 52
2. मनीषाझा : प्रकृति, पर्यावरण और समकालीन कविता (प्र.सं. 2004) : पृ. 174
3. भवानीप्रसाद मिश्र : गीतफरोश (प्र.सं. 1953) : पृ. 60

पूर्ण रूप से जंगल चैतन्यहीन दिखाई देता है। पर जंगल के सन्नाटे का ही यह चित्र है। कवि का अरमान है कि इस जंगल में फिर से चेतनता का प्रसार हो। मनुष्य का आवागमन न होने के कारण पूर्ण रूप से जंगल की राह सड़े पत्तों से ढ़ँक गयी है। कवि इस वातावरण को पलटना चाहता है। इसी कारण आग्रह के साथ मनुष्य से कहता है कि 'बन सके तो धँसो इनमें।'

"अजगरों से भरे जंगल
अगम, गति से परे जंगल
सात-सात पहाड वाले
बड़े-छोटे झाड़ वाले
शेर वाले बाघ वाले
गरज और दहाड़ वाले
कंप से कनकने जंगल।"[1]

अजगर, शेर, बाघ आदि जानवर जंगल में रहते हैं। उनके कारण जंगल का अंतरंग पूरी तरह से जीवन्त है। उसमें कवि की लोक दृष्टि व्यक्त हुई है।

जिन कवियों को हम आधुनिक कविता के अग्रणी कवि मानते हैं उनकी कविता में लोक कथा कोई न कोई रूप मिलता है। अज्ञेय ने रचनात्मकता के रहस्य को उद्‌घाटित करने के लिए लोककथा का अवलंब किया तो मुक्तिबोध अपने में सिमटे मध्यवर्ग को चित्रित करने के

---

1. भवानीप्रसाद मिश्र : गीतफरोश (प्र.सं. 1953) : पृ. 60

लिए लोक कथा को अपनाया है। अन्य कवियों ने में भी यही किया है, उनके संदर्भ अलग हैं। इसलिए उनके द्वारा स्वीकृत लोक कथाएँ भी भिन्न हैं। लेकिन एक बात सुस्पष्ट हो जाती है और वह है कि लोक कथा का लोक मानस से कविता मुक्त नहीं हो सकती है।

प्रगतिशील कविताओं में लोक कथा का सन्निवेश

आधुनिक हिन्दी कविता के अलग-अलग प्रकरणों में हमें ग्रामीण जीवन और उसके यथार्थ का परिचय दिलाने वाले तीन महत्वपूर्ण कवि मिलते हैं। नागार्जुन, त्रिलोचन, केदारनाथ अग्रवाल। यद्यपि ये प्रगतिशील काव्यधारा के प्रारंभिक कवि हैं, फिर भी ग्रामीण जगत् को उन्होंने कविता का विषय बनाया। वे आधुनिक कविता के दौर में सर्जनात्मक रहे हैं। इस प्रकरण में हम देख पाते हैं कि ग्रामीण संस्कृति, ग्रामीण रीति-रिवाज़, और ग्रामीण जन जीवन से संबद्ध कुछ कथा संदर्भ उनकी रचनाओं में दर्ज हुए हैं। अतः यह सही प्रतीत होता है कि अपने प्रगतिशील भावों को व्यक्त करने के दौरान लोक जीवन से संबन्धित जीवन यथार्थ की कविता रचते-रचते तथा उस जीवन यथार्थ को कई प्रकार के कवितात्मक रूप देने के प्रयास में लगे ये कवि अपनी कविताओं में लोक कथाओं का उपयोग करते दिखायी पड़ते हैं। आधुनिक कविता के इतिहास में छायावाद के बाद आने वाले ये तीन कवि मूलतः ग्रामीण चेतना के कवि हैं। उनमें ग्रामीण चेतना बाहरी तत्व नहीं है। इसलिए वह कविता की आँतरिक अन्विति बन जाती है, जिसे प्रायः लोकचेतना के रूप में अभिहित किया गया है।

लोक कथा का केन्द्र लोक जीवन ही होता है। लोक जीवन मिट्टी और प्रकृति पर आश्रित होता है। लोक जीवन की नब्ज़ें मिट्टी पर टिकी है। इसकी एक पारदर्शी विशेषता होती है। लोक कथा में मनुष्य की संस्कृति निहित है। लोक कथायें जीवन की अभिव्यक्ति होती है। उनमें यथार्त जीवन की झाँकी मिलती है। इसलिए सामान्य जनता के जीवन पर लोक कथाओं का असर भी गहरा होता है। लोक कथायें, कविताओं में विन्यासित होने पर सुन्दर रूप ग्रहण करती हैं। लोक कथा की संपृक्ति से कविता का पूरा मानस पाठकों के लिए सुलभ हो जाता है। त्रिलोचन, नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं में लोककथायें सन्निविष्ट हुई हैं।

त्रिलोचन की कविताओं में लोक की संसक्ति दृष्टिगत है। "त्रिलोचन की कविता गहरे अर्थों में मानवीय चरित्र के उन्नयन की कविता है। कविताओं में भारत के किसान-मज़दूरों और दुःख-सुख को सहती संघर्षशील जनता की मुँह से बोलती तस्वीर अपने सरल रूपों में सामने आती हैं।"[1]

'त्रिलोचन' की कविता में लोक जीवन की सुन्दर झाँकी प्रस्तुत होती है। 'चम्पा काले काले अच्छर नहीं चीन्हती' नामक कविता में गाँव में रहने वालों का जीवन हम देख सकते हैं। 'चम्पा' नामक लड़की की मानसिक स्थिति को इसमें उभारा गया है। अक्षरों की दुनिया उसके लिए अचरज पैदा करने वाली है।

"चम्पा सुन्दर की लड़की है
सुन्दर ग्वाला है; गायें - भैंसे रखता है

---

1. गोविन्द प्रसाद : कविता के सम्मुख (प्र.सं. 2002) : पृ. 32

चम्पा चौपायों को लेकर
चरवाही करने जाती है
चम्पा अच्छी है, चंचल है
नटखट भी है
कभी कभी ऊधम करती है
कभी कभी वह कलम चुरा लेती है
जैसे तैसे उसे ढूँढ़ कर जब लाता हूँ
पाता हूँ - अब कागज़ गायब।"[1]

इन पंक्तियों के द्वारा 'चम्पा' नामक लड़की का पूरा चित्र सामने आता है। गाँव में लोग रोज़गार के लिए गाय - भैंस आदि को पालते हैं। यही उनकी कमाई है। इस कमाई से वे जीवन बिताते हैं। अक्षरों की दुनिया से इन लोगों का कोई नाता नहीं होता है। वह लड़की बहुत शरारती भी हैं। छोटे- निष्कलंक बच्चों की जो हरकते हैं, उनको बहुत ही तन्मयता से कवि ने यहाँ प्रस्तुत किया है। कवि के जीवन में ये क्षण अनुभव युक्त होते हैं।

"चम्पा काले काले अच्छर नहीं चीन्हती
मैं जब पढ़ाने लगता हूँ वह आ जाती है
खड़ी खड़ी चुपचाप सुना करती है
उसे बड़ा अचरज होता है
इन काले चीन्हों से कैसे ये सब स्वर
निकला करते हैं।"[2]

---

1. त्रिलोचन : धरती (प्र.सं. 1940) : पृ. 43
2. वही : पृ. 43

कविता की ये प्रारंभिक पंक्तियाँ चम्पा के अचरज भरे मन को व्यक्त करती हैं। वह अक्षरों की दुनिया में प्रवेश करना नहीं चाहती है। इसलिए उसे अक्षर 'काले' दीखते हैं। अक्षरों को पहचानने के बाद ही उसके लिए सुन्दर लगेंगे। लोक का जीवन, पुस्तक के ज्ञान से दूर रह जाता है। जीवनानुभवों को भी वे लोग पहचानते हैं। अक्षरों की दुनिया उनके लिए अनजान बन जाती है। चम्पा के घर में पढ़ा-लिखा कोई भी नहीं है। इसलिए अभी तक उसने अक्षरों की दुनिया में प्रवेश नहीं किया है। केवल ये लोग प्रकृति से रिश्ता बनाते हैं। "त्रिलोचन जीवन की विधायकता के कवि हैं। त्रिलोचन अपनी कविता को जीवन के सब से निचले बिन्दु से उठाते हैं।"[1] त्रिलोचन लोक निष्ठ कवि होने के कारण प्रकृति से उनका नाता बहुत गहरा है। उनकी कविता समाज के सामान्य, निचले वर्ग की जीवन गाथा थी। 'नगई महरा' शीर्षक लंबी कविता में उन्होंने निम्न वर्ग की संपूर्ण जीवन झाँकी को प्रस्तुत किया है।

"नगई कहार था। अपना गाँव छोड़ कर
चिरानीपट्टी आ बसा। पूरब की ओर
जहाँ बाग या जंगल था। बाग में
पेड़ आम जामुन या चिलबिल के
जंगल में मकोय, हंस, रिस्सवल की बँवर
झाड़ियाँ झरबेरी की। और कई जाति की
ढ़ेरे, कटार, ढ़ाक, आछी,

---

1. जीवन सिंह : कविता और कवि कर्म (प्र.सं. 1999) : पृ. 120

बबूल और रेवाँ के
पेड़ भी जहाँ तहाँ खड़े थे।"[1]

'चिरानीपट्टी' त्रिलोचन की अपनी धरती है। नगई वहाँ आकर बसने लगा था। उस गाँव में बाग और जंगल था। कई प्रकार के पेड़ वहाँ थे। 'जंगल में कई प्रकार की चिड़ियाँ स्वच्छन्द रूप में विहारती थी। उस गाँव में कई जातियाँ भी बसती थी। सब लोग मिलजुलकर जीवन बिताते थे। नगई अपना गाँव छोड़कर दूसरे गाँव में आ गया है। लोक का रिश्ता गाँव के परिवेश से ही होता है। महानगर में उसका कोई अस्तित्व नहीं है। "त्रिलोचन के चरित्रों पर एक नज़र डालने पर लगता है कि अधिकाँश चरित्र गाँवों के हैं, और आज के गाँवों के नहीं, कुछ पहले के गाँवों के, जब गाँवों का स्थिर-जीवन अपने अन्तिम दौर में था।"[2] त्रिलोचन ने मनुष्य की भाँति ही चारों ओर की प्रकृति की चर्चा की है।

"सूखे पत्ते वहाँ बहुत सारे थे
नगई ने भाड़ बैठा दिया
दिन में साँस मिलने पर
भाड़ को जगाता था
दूर दूर से भुँजाने वाले आ जाते थे
संझा के पहले ही
भाड़ बन्द होता था।"[3]

---

1. त्रिलोचन : ताप के ताए हुए दिन (प्र.सं. 1983) : पृ. 120
2. अरुण कमल : कविता और समय (प्र.सं. 1999): पृ. 54
3. त्रिलोचन : ताप के ताए हुए दिन (प्र.सं. 1983) : पृ. 120

गाँव के लोग 'भाड़' बनाकर उनकी रोज़ की रोटी पकाते हैं। 'भाड़' गाँव की सभ्यता को प्रकट करता है। नगई अपना जीवन बिताने के लिए, परिवार की देख-रेख के लिए भिन्न-भिन्न कामों में सदा व्यस्त रहता है। जंगल के सूखे पत्तों को इकट्ठा करके वह भाड़ जलाता है। कुछ पकवान बनाता है। संध्या के पहले यह काम पूरा हो जाता है। 'भाड़' मिट्टी से बनाया जाता है। लोक का रिश्ता मिट्टी से अलग नहीं हो पाता है। त्रिलोचन ने नगई के जीवन-यथार्थ को प्रस्तुत किया है। समांतर ढंग से नगई की कथा कविता को आगे बढाने में उसकी संवेदना को सघन बनाने में सफल होती है।

"नगई के गाँव के। तीन चार घरों का
पानी थाम लिया था
कभी वह भरता था
कभी घरनी भरती थी
कुछ खेत मिले थे इसके लिए
और घर घर से
कलेवा मिल जाता था
नगई नहीं खाता था
माँ-बेटी खा कर कुछ करती थीं।"[1]

गाँव के ज़्यादातर लोग खेती-बाड़ी से ज़िन्दगी काटने वाले हैं। नगई और उसकी घरवाली खेत में काम करते हैं। कुछ घरों में नगई पानी

---

1. त्रिलोचन : ताप के ताए हुए दिन (प्र.सं. 1983) : पृ. 65

भरने जाता हैं। उसकी घरनी भी खूब मेहनत करने वाली है। उनके लिए आराम की ज़िन्दगी नसीब नहीं है। नगई को अपने परिवार के प्रति गहन प्रेम है। रोज़ मिलने वाली कमाई से वह परिवार की देख रेख करता है। अपना पेट न भरने पर भी वह परिवार को खिलाता - पिलाता है। उसमें आनंद मग्न होता है। उसीमें उसकी खुशी है। नगई सदा भिन्न-भिन्न कामों में लगा रहता है। वह गाँववालों के लिए प्रिय भी है। कुछ लोग उसकी निन्दा भी करते हैं। वह ज़रा भी आलसी नहीं है।

"हाथों ने काम कोई लिया, किया
हो जाने को ही काम
हाथों में आता था
रस्सियाँ भी नगई बरा करता था
सुतली को कात कर बाध भी बनाता था
कहता था, दैव ने मुँह चीर दिया है
उसमें कुछ देने को हाथ तो चलाना है।"[1]

त्रिलोचन ने नगई का जीवंत चित्र खींच दिया है। "त्रिलोचन अपनी कविताओं में जिस मनुष्य को लाते हैं, वह अपने बल पर खड़ा मनुष्य है।"[2] जीवन के संबन्धों का सहज प्रवाह कविता में होता है। त्रिलोचन में भाव और विचार बहुत ही गहरे होते हैं। वे जीवन की सच्चाई को कभी भी अनदेखा नहीं कर सकते। उनका ध्यान कृत्रिमता की ओर

---

1. त्रिलोचन : ताप के ताए हुए दिन (प्र.सं. 1983) : पृ. 65
2. जीवन सिंह : कविता और कविकर्म (प्र.सं. 1999) : पृ. 120

कभी नहीं मुड़ता है। लोक में, चारों ओर की मिट्टी में यह कृत्रिमता दिखाई भी नहीं देगी। नगई बड़ा भक्त है। त्रिलोचन 'राम' को माननेवाले है। 'राम' भी लोक का अटूट हिस्सा है। नगई पढ़ना-लिखना न जानता है। लेकिन नगई ने 'सुन्दरकाँड' सुनने की इच्छा प्रकट की। त्रिलोचन उसके लिए तैयार हो जाते हैं।

"नगई ने बेठन को खोलकर पोथी को
माथे से लगा लिया
फिर उसे खाट के सिरहाने रखा
लोटे में पानी लेकर मु से कहा
चरण मुझे धोने दो
और उसने मेरे दोनों पैरों को
घुटनों तक धो दिया अच्छी तरह।"[1]

लोक पोथी के ज्ञान से दूर है। नगई ने आदर के साथ त्रिलोचन को चरण धोकर पोथी वाचन के लिए बिठाया है। श्रद्धा के साथ नगई ने उस पोथी को माथे से लगाया। जिस प्रकार रामचरितमानस में, केवट प्रसंग में राम की पद-धूली को केवट धोकर साफ करता है, उसी प्रकार यहाँ भी नगई प्रस्तुत आता है। नगई गहन ज्ञान के सामने माथा झुकाता है। केवट को भी राम के प्रति विशेष आदर था। इसी कारण राम के चरण धोये थे। लोक का ज्ञान पोथियों का नहीं है बल्कि अनुभव से ज्ञान का अर्जन होता है।

---

1. त्रिलोचन : ताप के ताए हुए दिन (प्र.सं. 1983) : पृ. 70

"पास के मँड़हे में कुशासन एक अलग था
उसकी गर्द झाड़ कर मुझे बठने को कहा
मेरे बैठ जाने पर पोथी मुझे सौंप दी
फिर मुझे बड़े भक्ति भाव से प्रणाम किया
कुछ हट कर हाथ जोड़ कर सामने ही
भूमि पर बैठ गया।"[1]

यहाँ त्रिलोचन ने नगई के भक्ति - भाव को बहुत ही सुन्दर ढ़ंग से प्रस्तुत किया है। 'रामायण' कथा को सुनने के लिए नगई भक्ति भाव से त्रिलोचन के पास बैठ गया। विशिष्ट श्रद्धा के कारण ही उसने हाथ जोड़ा है। रामायण का राम 'लोकनायक' होता है। तुलसीदास ने इसी भाव से लेखनी चलायी थी। इसी कारण से तुलसी को भी लोक कवि कहा जाता है। रामकथा सुनने के लिए नगई नीचे भूमि पर बैठा है। यहाँ भी श्रद्धा का भाव देख सकते हैं। नगई अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है -

"नगई ने हाथ चलाते फिर कहा
दुनिया है दुनिया का ज्ञान है आदमी है
आदमी को क्या क्या नहीं जानना है
देखते सुनते और करते ज्ञान होता है
अपनी जब होती है समझ नई होती है
मेरे लिए समझ पाना कठिन था
पर रुक रुक कर निकले बोल ये
कहीं ठहर गये थे मेरे मन में।"[2]

---

1. त्रिलोचन : ताप के ताए हुए दिन (प्र.सं. 1983) : पृ. 70
2. वही : पृ. 73

नगई के ये शब्द अनुभव ज्ञान से भरे होते हैं। इन शब्दों ने त्रिलोचन के मन पर गहरा प्रभाव डाला। लोक का ज्ञान, वास्तविक जीवन का ज्ञान होता है। वह बहुत कीमती भी होता है। यह क्षण हर एक मनुष्य को अनुभव का पाठ बता देते हैं। 'नगई' का व्यक्तित्व लोक का सपक्ष बनकर पाठक के सामने आता है। नगई की जीवन-गाथा द्वारा त्रिलोचन ने संपूर्ण लोकजीवन का चित्र खींचा है।

"पंचालय को मानो पंचपरमेसर है
नगई हाथ जोड़े अब खड़ा हुआ
बोला, जाति गंगा ने मुझे पावन कर दिया
धन्य हुआ
और फिर भोज हुआ
नाच और नाटक हुए।"[1]

त्रिलोचन की यह कविता व्यक्ति केंद्रित लोक कथा के आधार पर रचित है। एक समय मानसिकता का एहसास इसमें से मिलता है।

'नागार्जुन' की कविताओं में लोककथाओं के अंश भरे पड़े हैं। उनकी 'हरिजन-गाथा' नामक लंबी कविता में सामाजिक यथार्थ का चित्रण हुआ है। इस लंबी कविता में यही सूचित है कि उच्च वर्ग के लोग निम्न वर्ग के लोगों पर अत्याचार करते हैं। इस यथार्थ के रहते है पूरी कविता एक प्रकार का दहशत पैदा करती है-

---

1. त्रिलोचन : ताप के ताए हुए दिन (प्र.सं. 1983) : पृ. 76

"ऐसा तो कभी नहीं हुआ था?
महसूस करने लगी वे
एक अनोखी बेचैनी
एक अपूर्व आकुलता
उनकी गर्भकुक्षियों के अन्दर
बार-बार उठने लगी टीसें
लगाने लगे दौड़ उनके भ्रुण
अन्दर ही अन्दर
ऐसा तो कभी नहीं हुआ था कि
हरिजन-माताएँ अपने भ्रूणों के जनकों को
खो चुकी हों एक पैशाचिक दुष्काण्ड हैं।"[1]

ये पंक्तियाँ एक पैशाचिक दुष्काण्ड की ओर संकेत करती हैं। बेचारी हरिजन माताएँ तनाव से ग्रस्त हुई हैं। एक अपूर्व त्रास के कारण इन पंक्तियों में बेचैनी व्याप्त हुई हैं। उच्चवर्ग के लोग बेचारे गरीबों पर नीच व्यवहार करते हैं। यह अनुभव उनके लिए नया है। चारों ओर का वातावरण कलुषित हुआ है। हरिजनों के दुःख-दर्द की कथा को इस कविता में महसूस किया जा सकता हैं।

"किरासिन के कनस्तर, मोटे-मोटे लक्कड़
उपलों के ढ़ेर, सूखी घास-फूस के पूले
जुटाए गए हों उल्लासपूर्वक
और एक विराट चिताकुण्ड के लिए

---

1. सं. शोभाकान्त मिश्र : नागार्जुन चुनी हुई रचनाएँ (प्र.सं. 1985) : पृ. 240

खोदा गया हो गड्ढ़ा हँस-हँसकर
और ऊँची जातियों वाली वो समूची आबादी
आ गई हो होली वाले 'सूपर मौज' के मूड़ में
और, इस तरह जिन्दा झोंक दिए गए हों
तेरह-के-तेरह आभागे मनुपुत्र
सौ-सौ भाग्यवान मनुपुत्रों द्वारा
ऐसा तो कभी नहीं हुआ था।"[1]

ये पंक्तियाँ कथा के बहिरंग यथार्थ को प्रकट करती हैं। बहुत ही डरावना-सा माहौल छाया है। उच्च वर्ग के लोगों ने निम्न वर्ग के ऊपर कब्जा किया है। निम्नवर्ग को बचाने के लिए कोई भी नहीं हैं। वे लोग उच्चवर्ग के खिलाफ कुछ नहीं कर पाते हैं। एक विराट चिताकुण्ड बनाकर उसमें निम्न वर्ग के मनुपुत्रों को जलाया जा रहा है। "इस कविता में अभिव्यक्त उद्वेलन और तनाव वैयक्तिक और आत्मिक किस्म का न होकर कवि-मन की परिस्थिति, समाज-जन संस्कृति से टकराव का नतीजा है।"[2] यहाँ लोक विन्यास समाज में व्याप्त अत्याचार को व्यक्त करता है। ये पंक्तियाँ सामाजिक यथार्थ को व्यक्त करती हैं। उच्चवर्ग के लोग निम्न वर्ग पर मौज-मस्ती के साथ पेश आते हैं। यहाँ मनुष्य की हत्या दूसरा मनुष्य ही करता है। यह बात बहुत ही दर्द पैदा करती है। 'हरिजन' होने के कारण ही इन लोगों की हत्या की गयी है।

---

1. सं. शोभाकान्त मिश्र : नागार्जुन चुनी हुई रचनाएँ (प्र.सं. 1985) : पृ. 241
2. युद्धवीर धवन : समकालीन लंबी कविता की पहचान (प्र.सं. 1987) : पृ. 109

ऐसे एक घर पर बच्चे का जन्म और उसके भविष्य को देखकर जन्मी आशंकाएँ आदि कविता की सामाजिक संपृक्ति के उदाहरण है -

"बच्चे की हथेलियों के निशान
दिखलाएँगे गुरुजी से
वो ज़रूर कुछ न कुछ बतलाएँगे
इसकी किस्मत के बारे में
देखो तो ससुरे के कान हैं कैसे लम्बे
आँखें हैं छोटी पर कितनी तेज़ हैं
कैसी तेज़ रोश्नी फूट रही है इन से।"[1]

उस नवजात बालक के भविष्य के बारे में चर्चा चल रही है। उसके हाथ के निशान कुछ अनोखे लग रहे हैं। भविष्य वाणी सुनने के लिए गुरुजी को बुलाया गया है। लोक का विश्वास इस भविष्य वाणी पर आधारित है। लोक बच्चे के शरीर के अंगों की ओर ध्यान देता है। उसकी जन्म कुण्डली बना देता है। हर एक मनुष्य की अपनी 'किस्मत' होती है। यह किस्मत ही लोक को जीने की प्रेरणा देती है। हर एक व्यक्ति की किस्मत उसके हथेलियों के निशानों पर टिकी रहती है। इस पर लोक का अमिट विश्वास रहता है। इसे इन पंक्तियों द्वारा व्यक्त किया है।

"आज भगाओ, अभी भगाओ
तुम लोगों को मोह न घेरे
होशियार, इस शिशु के पीछे

---

1. सं. शोभाकान्त मिश्र : नागार्जुन चुनी हुई रचनाएँ (प्र.सं. 1987) : पृ. 243

लगा रेह हैं गीदड़ फेरे
बड़े-बड़े इन भूमिधरों को
यदि इसका कुछ पता चल गया
दीन-हीन छोटे लोगों को
समझो-फिर दुर्भाग्य छल गया।"[1]

इन पंक्तियों में लोक विश्वास की गहनता को प्रकट किया गया है। गुरुजी द्वारा उस नवजात हरिजन बालक की भविष्य वाणी सुनायी गयी है। गुरुजी ने बताया है कि यह शिशु ज़रूर निम्न वर्ग के लिए उन्नायक बनेगा। उच्च वर्ग के खिलाफ आवाज़ उठायेगा। इसलिए इस बच्चे की सही रखवाली करनी है। नहीं तो भूमिधर लोग इसे मार डालेंगे। यह बच्चा ज़रूर बड़ा होशियार बन जायेगा। इस प्रकार गुरुजी ने उस बच्चे के भविष्य को परख लिया है। ऐसी किस्मत पर ही लोक का विश्वास जुड़ा रहता है। निम्न वर्ग दीन-हीन है, ऐसे परिवार में ही उस बच्चे का जन्म हुआ है। यह बात ही उस बच्चे के लिए दुर्भाग्य बन गयी है। उसे उच्च वर्ग कुचल देगा। इस बच्चे को सर्वनाश से बचाना है तो उसे ज़रूर इस मार-काट की दुनिया से भगाना होगा। दूर कहीं ले जाना होगा।

"दिल ने कहा-अरे यह बच्चा
सचमुच अवतारी वराह है
इसकी भावी लीलाओं का
सारी धरती चारागाह है।

---

1. सं. शोभाकान्त मिश्र : नागार्जुन चुनी हुई रचनाएँ (प्र.सं. 1985) : पृ. 244

दिल ने कहा - अरे हम तो बस
पटते आए, रोते आए
बकरी के खुर जितना पानी
उसमें सौ-सौ गोते खाए।"[1]

गुरुजी ने इस बच्चे को 'अवतार' माना है। लोक का विश्वास है कि मानव समुदाय की सहायता के लिए अवतारों का जन्म होता है। यह अवतार ही मानव का उत्थान करता है। इसी लोक कथा-विश्वास के अनुसार कविता आगे बढ़ती है। वस्तुतः यह विश्वास कविता की असली धरती है। अब तक तो निम्न वर्ग पर उच्च वर्ग द्वारा प्रहार होता था। इस अवतार-शिशु के द्वारा अब इस माहौल में ज़रूर बदलाव आ जायेगा। यह नवजात शिशु ज़रूर अन्नायक का काम करेगा। पूरी व्यवस्था बदलने की संभावना है। 'कृष्ण' भगवान ने अवतार ग्रहण करके जगत् की रक्षा की थी। बुराइयों को सदा के लिए मिटा दिया था। इसी विश्वास के आगे लोक सिर झुकाता है। उस पर भरोसा करता है।

केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं में भी लोक कथा के अंश मिलते हैं। "केदारनाथ अग्रवाल ने लोक संवेदना की पूँजी के बल पर और सहज जीवनासक्ति के बल पर सर्वथा ताज़े बिम्ब दिये, जिनमें मानवीय आवेग की उपस्थिति लक्ष्य की जा सकती है।"[1] केदार जी ने सामान्य जन-जीवन को बहुत नज़दीक से देखा है। लोकरूपता इनकी कविता की विशेषता है।

---

1. शोभाकान्त मिश्र : नागार्जुन चुनी हुई रचनाएँ (प्र.सं. 1985) : पृ. 246
2. परमानन्द श्रीवास्तव : शब्द और मनुष्य (प्र.सं. 1999) : पृ. 20

"खड़ा है। बुजुर्गवार इमली का पेड़
निर्वाक। पुरनिया। उदिभज अस्तित्व की
प्रलम्ब ऊँचाई। अपनाये।
कलाकार की तरह। कलाकृतियों की जड़ें
भूगर्भ में। गड़ाये।
जटाजाल का। सिरछत्र।
आकाश में फैलाये।
वनस्पतीय बोध का सम्राट
विराट की कनिष्ठिका के समान त्रिकाल भोगी
ध्यानस्थ योगी हुआ।"[1]

केदार की कविता में प्रकृति को एक प्रमुख स्थान दिया गया है। इसमें लोक जीवन की पूरी झाँकी प्रस्तुत की है। गांव के बुजुर्ग 'इमली के पेड़' की वर्णना यहाँ की है। वह पेड़ बड़ा ऊँचा है। एक कलाकार की तरह विस्तृत खड़ा है। पेड़ की डालियाँ आकाश की तरफ फैली हैं। योगी सदा मौन रहता है। उसी प्रकार यह पेड़ भी मौन खड़ा है। गाँव की संस्कृति को लेकर वह खड़ा है। भूतकाल, वर्तमान और आगत समय की कथा एवं अनुभव से वह पेड़ खडा है। "मनुष्य-जीवन से वे प्रकृति में पलायन नहीं करते वरन् संकेत करते हैं कि प्रकृति में भी मनुष्य रचता है, 'प्रकृति' के बिना सच्चे आनन्द की सृष्टि नहीं।"[2] लोक कथाएँ अक्सर कविता के लिए परिकल्पित हुई होती हैं। पौराणिक तथा प्रचलित कथाएँ

---

1. केदारनाथ अग्रवाल : श्रम का सूरज (प्र.सं. 1996) : पृ. 143
2. जीवन सिंह : कविता की लोक प्रकृति (प्र.सं. 1990) : पृ. 91

अपवाद है। इन परिकल्पित कविता की लोक कथाओं में जीवन लबालब भरा रहता है।

लोक कथा में लोक का मन समग्र रूप से व्यक्त होता है। इसी लोक कथा को लोक पक्षधर कवि अपनी रचनाओं में स्थान देते हैं। अपने चारों ओर की यथार्थता को वे रचनालोक में व्यक्त करते हैं।

लोक दरअसल कल्पनाधारित यथार्थ है। यथार्थ की कठोर भूमि में जाने वाले मनुष्य यथार्थ को कल्पना में तब्दिल करता है। तब उसकी आकांक्षाएँ, उसके स्वत्व, उसकी इच्छाएं पूर्ति की ओर अग्रसर होती प्रतीत होती है। लोक यथार्थ से भिडकर जीनेवालों का कलाबद्ध इच्छित यथार्थ है। इसलिए उसकी अभिव्यक्ति में कविता में (अन्य कलाओं में) - लोक का स्वयमेव प्रवेश होता है - लोक कथा के रूप में या उनसे उत्पन्न होने वाले लोक मानस के रूप में। आधुनिक कविता ने इसका रचनात्मक प्रयोग किया है - प्रयोगपरकता के लिए नहीं बल्कि जीवन यथार्थ के उद्‌घाटन के लिए।

❖❖❖

अध्याय-4

आधुनिक हिन्दी कविता में लोक रीतियाँ

भूमिका

लोक चेतना को व्यंजित करने वाली कविताओं में लोक रीतियों का प्रयोग ज़रूर होता है। 'लोक' तो इहलोक ही है, जहाँ प्रत्यक्ष गोचर जगत् की प्रवृत्तियाँ देखी जा सकती हैं। लोक चेतना को जागृत करने के लिए लोक रीतियों का स्थान कविता में महत्वपूर्ण हो जाता है। इन लोक रीतियों में लोक व्यवहार, लोक का आचार-विचार, रहन-सहन, लोक वार्ता आदि सभी तत्वों का सन्निवेश होता है। ये लोक रीतियाँ पीढ़िगत आचारों का संवर्धन करती हैं। जीवन को गतिशील भी बनाती हैं।

लोक रीतियों का निर्वहण लोक व्यवहार द्वारा होता है। संपूर्ण रूप से लोक मानस की व्याख्या यहाँ होती है। लोक रीतियाँ देश, समय और काल के अनुसार बदलती रहती हैं। इसकी जड़ तो पुरानी होती है, यही वह जीवन है जिसे हम सामान्य जीवन कहते हैं। आधुनीकृत समाज के लिए उसका कोई मूल्य होता नहीं। लेकिन जो अपने में पूर्ण है, भौतिक सीमाओं के बावजूद, पूर्ण ही रहता है। लोक परिदृश्य की यही खूबी है। कविता में उसके प्रति आकर्षण रहता है। कविता पूर्णता की पक्षधर होती है। "लोक वार्ता को जन्म देने वाली लोक प्रवृत्ति का लोक मानस या जन मानस से संबन्धित माना जा सकता है। इस लोक मानस को लोक

साहित्य का स्रोत मानना है।"[1] लोक साहित्य की अभिव्यक्ति के लिए एक मूल तत्व होना चाहिए। वही लोकमानस है। इसी लोक मानस को नये-नये रूपों में संवारने का काम लोक रीतियाँ करती हैं।

लोकजीवन के प्रति गहरा लगाव ही कविता लिखने के लिए प्रेरक तत्व बन जाता है। गाँव और कस्बे के लोक जीवन की रीतियाँ कविता में सूक्ष्म या स्थूल रूप में सन्निविष्ट रहती हैं। लोक कवि अपनी आँखों के आगे व्याप्त कोई भी वस्तु, जीव-जंतु को अनदेखा नहीं कर सकते। लोक का रहन-सहन, लोक का खान-पान, लोक की वेशभूषा, लोक की बोली-बानी, लोक की प्रकृति तथा लोक के संघर्ष इन कवियों की रचनात्मकता के केन्द्रीय स्वर हैं। लोक के यथार्थ को काव्य की अंतर्वस्तु बनाकर ही कविता में लोक परिदृश्य को स्थापित किया जाता है। यह सच है कि लोक के प्रति गहरे सरोकार रखने वाला रचनाकार ही यह कर सकता है। इस प्रकार लोकोन्मुख कवि अपनी कविता में क्रियाशील लोक और उसकी प्रकृति को स्थान देने के लिए प्रयत्नरत रहते हैं। इस प्रकार वह कविता में सौन्दर्य की प्रतिष्ठा करना चाहते हैं। "आज लोक का क्षेत्र और व्यापक हुआ है। वह महानगरों में भी देखने को मिलता है। जो लोग बड़े-छोटे निर्माण कार्यों में लगे हैं, जो धरती को कमाकर अन्न उपजा रहे हैं, जो बड़ी-बड़ी धमन भट्टियों के आगे खडे होकर इस्पात का उत्पादन करते हैं, वे सब लोक ही हैं। निर्माणधर्मिता, क्रियाशीलता और अपने ही श्रम से अपनी आजीविका अर्जित करना लोक का अपना

---

1. श्री नारायण पाण्डेय : साहित्य और लोक साहित्य (प्र.सं. 1975) : पृ. 78

स्वभाव है।"[1] कविता को लोकजीवन के यथार्थ को जोड़ कर ही कवि कविता लिख सकता है। कवि को जनपद के यथार्थ की जानकारी होनी चाहिए। लोकोन्मुख कवियों में लोक के प्रति गहरी आस्था होनी चाहिए। जीवन में नयी आशा को संचरित करने की ताकत इन कविताओं में देखी जाती हैं।

लोक रीतियों का व्यापक परिदृश्य

ग्रामीण जीवन से परिचित कवि अपनी कविताओं में ऐसी लोक रीतियों को भी स्थान देते हैं जिनका ज्यादा प्रयोजन सिद्ध होता नहीं है। बावजूद वह हमारे जीवन के अंग ही हैं।

नागार्जुन की कविताओं में लोक-रीतियों के वैविध्यमय रूप हम देख सकते हैं। लोकोन्मुखी काव्यधारा के अग्रज कवि के रूप में नागार्जुन सामने आते हैं। लोकव्यवहार की एक विशेष रीति को प्रस्तुत करने वाली नागार्जुन की 'भुस का पुतला' शीर्षक कविता की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं -

"फैलाकर टाँग
उठाकर बाहें
अकड़कर खड़ा है भुस-भरा पुतला
कर रहा है निगरानी
ककड़ी - तरबूज की
खीरा-खरबूज की

---

1. सं. प्रेमशंकर रघुवंशी : लेखन सूत्र (जनवरी-जुलाई 2006) : पृ. 120

सो रहा होगा अपाहिज मालिक घर में निश्चिन्त हो
खेत के नगीज़
कोई मत आना
हाथ मत लगाना।"[1]

खेत में 'भूस का पुतला' बनाकर रख दिया गया है। खेत के बीच हाथ-पाँव फैलाकर यह पुतला खड़ा है। यह एक लोक रीति है कि फसल की निगरानी के लिए ऐसे भुस का पुतला बनाकर रखा जाता है। जिससे फसल सुरक्षित रहेगी। दिन भर की मेहनत के बाद मालिक आराम करता है। उसका विश्वास है कि फसल की बरबादी न हो। लोक के आचार-विचार और रीतियाँ यहाँ देखी सकती हैं। यह विश्वास लोक की विरासत है। खेती-बाड़ी के द्वारा इनकी आशाएँ फलती-फूलती है। ककडी, तरबूज, खरबूज, खीरा आदि की खेती हुई है। लोक के ये विश्वास आज भी उनके बीच सुरक्षित हैं। उनका व्यावहारिक जीवन ऐसी रीतियों के यथार्थ और अयथार्थ पर निर्भर रहता है। परम्पराओं से अर्जित विश्वास इसे जीवित रहता हैं।

लोक की संस्कृति की पहचान पारदर्शी परिवेश से मिल जाती है। त्रिलोचन की कविता 'नदी : कामधेनु' में लोक जीवन की रीतियों के दृश्य भरे पड़े हैं। लोकजीवन के प्रति अपनी संवेदनात्मक दृष्टि को वे अपनी कविता 'नदी : कामधेनु' में इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं।

---

1. नागार्जुन : चुनी हुई कविताएँ (प्र.सं. 1985) : पृ. 62

"नदी ने कहा था : मुझे बाँधे
मनुष्य ने सुना और
आखिर उसे बाँध लिया
बाँध कर नदी को
मनुष्य दुह रहा है
अब वह कामधेनु है।"[1]

'नदी' लोक की संस्कृति का संवहन करती है। लोक का जीवन इस नदी पर आश्रित रहता है। यह नदी उसे संस्कार देती है। अपनी खेती-बारी के लिए वह पानी इस नदी से लेता रहता है। 'कामधेनु' को मिथक के रूप में रखा गया है। वह इन्द्र की गाय है जो सब की आशा-पूर्ती करती हैं। यहाँ 'नदी' को कामधेनु माना गया है। यह नदी लोक की मदद करेगी। यही आशा है। इस आशा के सहारे लोक का जीवन आनंद से बीतता है। इन्हीं विश्वासों को लोक रीतियों के अन्तर्गत रखा जाता है। ऐसे विश्वास ही उनके जीवन को गतिशील बना देते हैं।

त्रिलोचन की कविताओं में मनुष्य के क्रियाशील जीवन के विभिन्न परिदृश्य मिलते हैं। इनमें लोक की पूरी सक्रियता हम देख सकते हैं। "मनुष्य के भावी की दिशा का पथ क्रियाशील जीवन ने आलोकित किया है और किसी समाज में सर्वाधिक क्रियाशील शक्ति के रूप में लोक होता है।"[2] सादगी के स्वर को अपनाकर संवेदनात्मक पक्ष को वे व्यक्त करते हैं। लोक की चेतना को बनाये रखने की रीति उनकी कविता में दृष्टव्य है।

---

1. त्रिलोचन : ताप के ताए हुए दिन (प्र.सं. 1983) : पृ. 13
2. जीवन सिंह : कविता की लोक प्रकृति (प्र.सं. 1990) : पृ. 14

जीवन यथार्थ के छोटे-बड़े प्रसंगों से त्रिलोचन की कविता जुड़ती है और वे अपना लोक सृजित करते हैं। "मानव जीवन की दशाओं और अनुभवों की अभिव्यक्ति अधिक है। वे मानवीय अनुभवों और जीवन दशाओं की अभिव्यक्ति करते हुए संघर्ष आस्था, जिजीविषा, प्रेम, न्याय जैसे जीवन मूल्यों की व्यंजना करते हैं।"[1] सामान्य जनता को अपना मार्ग स्वतंत्र बनाना है। सभी बाधाओं को सुलझाकर सक्रिय होना है। तभी नवजीवन का मार्ग खुलता है। यही त्रिलोचन की कविताओं का मूलस्वर है, वही उसका सौन्दर्य है। मानवीय आकाँक्षाओं के रहते व्यापक सामाजिक सरोकार स्थापित करने की चाह यहाँ स्पष्ट होती है। देहाती जीवन को लोक की व्यापकता के साथ प्रस्तुत की गई है। लोक-निकटता की परख यहाँ मिलती है। लोक के प्रति गहरी निष्ठा और गहरी संबद्धता का भाव प्रकट होता है। लोक की चेतना को बरकरार रहने के लिए वे पूरी तरह से संलग्न रहते हैं। इसकेलिए शब्दों का महल खड़ा करना चाहते हैं। लोक की शक्ति को कायम रखना कविता का लक्ष्य होता है। त्रिलोचन लोक बोली का संस्कार करते हैं। पूँजी के प्रदूषण ने मनुष्य को मनुष्य से अलग किया है। "त्रिलोचन की कविता में जो ठंडापन, उद्‌बोधनात्मकता, सूक्तिपरकता और सामान्य जीवन-सत्यों की उद्‌घाटक साधारण स्तर की दार्शनिकता दिखाई देती है, वह हिन्दी लोक मानस का ही जातीय प्रतिरूप है।"[2] त्रिलोचन की कविताओं में मनुष्य-मनुष्य का घुलना-मिलना, उसकी पारम्परिकता और पारिवारिकता है और वह प्रकृति है जो मनुष्य के सहज

---

1. डॉ. गोविन्द प्रसाद : त्रिलोचन के बारे में (प्र.सं. 1981) : पृ. 157, 158
2. सं. विजेन्द्र : कृति ओर (अंक-46, अक्तूबर-दिसंबर-2007) : पृ. 51

संबन्धों के लिए हर युग में ज़रूरी है। त्रिलोचन की लोक संबद्धता का प्रमाण उनके संपूर्ण आचरण, लोक व्यवहार और काव्य सर्जना में प्राप्त होता है। भाव एवं विचारों की गहराई उनकी कविता में देख सकते हैं। यथार्थ कविता की पहचान लोक की वेदी पर होती है।

केदारनाथ अग्रवाल का कविता संसार लोक से सदैव युक्त रहा है। लेकिन उन्होंने लोक को जनजीवन के संघर्ष के पर्याय के रूप में लिया है। उनका थथार्थ श्रमजीवी वर्ग का जीवन यथार्थ है। उसीसे संबद्ध लोक को उन्होंने अधिक प्रमुखता दी है। 'श्रम का सूरज' संकलन की कविताएँ इस वास्तविकता को प्रकट करती हैं।

"छोटे हाथ
सबेरा होते
लाल कमल से खिल उठते हैं
करनी करने को उत्सुक हो
धूप हवा में हिल उठते हैं
छोटे हाथ, नहीं रुकते हैं
और नहीं धीरज धरते हैं
जड़ को चेतन
पानी को पय
मिट्टी को सोना करते हैं।"[1]

लोक की रोज़मर्रा ज़िन्दगी को केदारनाथ अग्रवाल 'लाल कमल' का बिम्ब देकर उपस्थित करते हैं। सूर्य के उदय के साथ लाल कमल

---

1. केदारनाथ अग्रवाल : श्रम का सूरज (प्र.सं. 1980) : पृ. 91

खिल उठता है। खिला हुआ कमल बहुत सुन्दर दीख पड़ता है। उसी प्रकार काम करने के लिए उत्सुक होने वाला लोक का चेहरा भी उज्ज्वल एवं सुन्दर लगता है। ये जन अपने छोटे हाथों से जड़ जगत् को चेतनमय बनाते हैं। अतः जगत् में लोक चेतना का भाव उमड़ता है। हवा और धूप की परवाह किये बिना काम करते हैं। अपनी मेहनत से मिट्टी को सोना करते हैं। श्रमजीवी वर्ग के संघर्ष को सहज रूप में यहाँ रूपायित किया गया है। केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं में श्रम के प्रति सम्मान का भाव व्यक्त होता है। भाव की अनुभूति का लय यहाँ उभरकर आता है। श्रमशील रहना लोक की अपनी रीति होती है। आजकल यंत्रों के सहारे काम चलता रहता है। उत्तर आधुनिकता का असर समाज पर पड़ा है। सभी लोग अपनी मिट्टी से दूर होते जाते हैं। लोक कवि, मानव और धरती के बीच के संबन्ध को बनाये रखने की कोशिश अपनी कविता द्वारा करते हैं। उनका व्यक्तित्व लोकोन्मुखी होता है।

'अज्ञेय' की कविताओं में भी लोक की रीतियों की छवियाँ उभरकर आती हैं। अपनी चारों ओर की दुनिया के प्रति कवि संवेदनशील हैं। उनकी कविताओं में जीवन परिवेश का वर्णन मिल ही जाता है। हृदय के भीतर जागने वाले प्रकाश का वर्णन उन्होंने 'भीतर जागा दाता' शीर्षक कविता में किया है। कविता में व्यक्तित्व का अंशदान अभीष्ट है। अपने 'स्व' से निकलने की बात यहाँ व्यंजित होती है। लेकिन अज्ञेय ने उसे लोक रीति या लोक संस्कार के रूप में प्रस्तुत किया है। लोक संस्कार में

अपने में सीमित होने की बात कम और अपने के होने की बात अधिक है। उसी लोक संस्कार को अज्ञेय ने कविया में प्रयुक्त किया है।

"यह हरी-भरी धरती-यह सवत्सा कामधेनु - मैं ने तुम्हें दी
आकाश भी तुम्हें दिया
यह बौर, यह अंकुर, ये रंग, ये फूल, ये कोंपलें
ये दुधिया कनी से भरी बालियाँ
ये मैं ने तुम्हें दी"[1]

अज्ञेय ने धरती को 'कामधेनु' शब्द से अभिहित किया है। भगवान इन्द्र की गाय 'कामधेनु' सब की इच्छापूर्ति करने वाली है। यहाँ धरती सभी जनों की इच्छापूर्ति करती है। लोक का जीवन इसी धरती पर निर्भर है। परिवेश के संपूर्ण तत्वों पर कवि का ध्यान गया है। पूर्ण रूप से लोक के प्रति समर्पण का भाव देख सकते है। लोक के जीवन में स्वार्थता का लोप होता है। समर्पण की भावना को देख सकते हैं। लोक में व्यक्ति से समाज की ओर यात्रा होती है। समष्टिगत विचार जागरित होते हैं। अज्ञेय का मन लोक से दूर नहीं है। उनका अनुभव अद्वितीय होता हैं। लोक पक्ष के निकट होने के कारण ही उन्होंने परिवेश को इतने सुन्दर रूप में उभारा है। लोक में मानवमूल्यों को सुरक्षित रखने का प्रयास होता है। लोक को पहचानने के लिए व्यक्ति को संवेदनशील बनना पड़ता है। परिवेश की चीज़ें इनकेलिए संवेद्य बन जाती है। इसी कारण लोक कवि अपने परिवेश को अनदेखा नहीं कर पाता है।

---

1. अज्ञेय : आँगन के पार द्वार (प्र.सं. 1978) : पृ. 15

मुक्तिबोध की कविताओं में सामाजिक संपृक्ति का व्यापक परिदृश्य है। यही उनकी कविता की विषयवस्तु है। इसको प्रस्तुत करने के लिए मुक्तिबोध कविता को धरती से जोड़ते हैं। इस प्रक्रिया के कारण कविता में सहज रूप से विन्यसित लोक अनावृत होता है। 'पेड़ की जड़े' शीर्षक कविता में उनका उद्देश्य मनुष्य के नए जागरण को दर्शाना है। पेड़ को प्रतीकवत् करके उन्होंने यह दिखाया है। लेकिन उसके लिए उन्हें लोक रीति का सहारा लेना पडा है। पेड़ की जड़ें नीचे की ओर गई हुई है। जड़ों के नीचे धँसने के अनुपात में ही पेड़ की छतनार शाखाएँ फैल सकती है। मिट्टी की यह आस्था अन्ततः जागरण के लिए प्रयुक्त है। फिर भी लोक का अनुसरण उन्हें करना पड़ा है।

"मैं तो बार-बार झुकता, गिरता, उखड़ता
या कि सूखा ठूँठ हो के टूट जाता
श्रेय है तो मेरे पैरों-तले इस मिट्टी को
जिसमें न जाने कहाँ मेरी जड़ें खोयी हैं
ऊपर उठा हूँ उतना ही आकाश में
जितने कि मेरी जड़ें नीचे दूर धरती में समायी हैं।"[1]

इन पंक्तियों में स्थानीयता का ज़िक्र मिलता है। लोक का अस्तित्व मिट्टी पर ही निर्भर रहता है। लोक को अपनी संस्कृति खोनी नहीं चाहिए। मानव को काल-थल के साथ आगे बढ़ना है। कवि की अपनी जड़ें मिट्टी में खोयी हुयी हैं। यही मिट्टी उनको जीने की प्रेरणा देती है।

---

1. सं. नेमिचन्द्रजैन : मुक्तिबोध रचनावली (प्र.सं. 1980) : पृ. 50

मानव जितना भी बड़ा हो, उतना ही उसे विनम्र होना है। अपने पैरों को धरती पर मज़बूती से रहने के बाद ही व्यक्ति ऊपर की ओर बढ़ सकता है। यही धरती मानव को संस्कार देती है। इसी कारण मुक्तिबोध इस जीवनदायी धरती को प्रतीकवत् करते हैं। मिट्टी की ओर लौटना लोक आस्था का अनुसरण है।

शमशेर की कविता 'ये शाम' में लोक रीति का परिवेश दृष्टव्य हैं -

"ग्वालियार के मजूर का
गरीब के हृदय टँगे हुए
कि रोटियाँ लिये हुए निशान लाल-लाल
जा रहे
कि चल रहा
लहू-भरे ग्वालियर के बज़ार में जुलूस जल रहा
धुआँ-धुआँ
ग्वालियर के मजूर का हृदय।"[1]

शमशेर ने 'ग्वालियार' का परिवेश यहाँ प्रस्तुत किया है। प्रत्येक स्थान के लोक पक्ष को समझने के लिए परिवेशगत जानकारी भी ज़रूरी है। स्थानीयता का वर्णन यहाँ मिलता है। ग्वालियर के मज़दूर आन्दोलनकारी बन गये हैं। सब से पहले क्राँति के मार्ग को अपनाने वाले मज़दूर वर्ग ही होता है। 'लाल' रंग जागरण की निशानी है। मज़दूर वर्ग मर-मिटने के

---

1. शमशेर बाहादुर सिंह : कुछ कविताएँ व कुछ और कविताएँ (प्र.सं. 1984) : पृ. 40

लिए तैयार खड़े हैं। बाज़ार की ओर जुलूस बढ़ रहा है। आग की भट्ठी की तरह मज़दूर का हृदय वेदना से जल रहा है। उनके मन में विद्रोह की भावना उमड़ी है। प्रतिक्रिया विहीन रूप में जीने से कोई फायदा नहीं होगा। यह बात वे समझ गये हैं।

जिस तरह स्थान विशेष को शमशेर ने अपनी कविता में लोक से जोड़ा है; अर्थात् ग्वालियर की आवृत्ति से लोक संस्कार का परिदृश्य साफ-साफ खुलता है उसी प्रकार रखुवीर सहाय भी स्थान विशेष पर ज़ोर दे रहे हैं भले ही नाम का उल्लेख न हो। एक लोक प्रतीक कविता के केन्द्र में से उभरता है। उसके ज़रिए दृश्यों को देखा गया है।

रघुवीर सहाय की एक कविता - 'संस्कृत' में -

"उसी आम के नीचे बाँधकर मारा था
उन्होंने अठारह बरस के उन लड़कों को
हिन्दी बोलने वाले गाँव के लड़कों को
जो सेना को नहीं माने थे।"[1]

सेनायें मनुष्य को मार रही है। क्राँति पथ पर आने वाली पीढ़ी को नष्ट-भ्रष्ट कर देती है। हिन्दी भाषा बोलने वाले लड़कों का अंत हो गया है। सेना चाहती है कि पूरी जनता उसके अधीन में रह जाये। उच्चवर्ग के मन में निम्नवर्ग के के प्रति कोई भी सहानुभूति का भाव नहीं है। इन सभी हत्याकाँड़ों का साक्षी बनकर वहाँ आम का पेड़ खड़ा है। पेड़ आज भी

---

1. रघुवीर सहाय : हँसो हँसो जल्दी हँसो (प्र.सं. 1975) : पृ. 17

बचकर खड़ा है। लोक की रीतियों का साक्षी होकर, मूल्याँकन करते हुए पेड़ सिर उठाकर खड़ा है। यहाँ भी आम जनता की पीड़ा का वर्णन हुआ है। 'संस्कृत' उच्चवर्ग की भाषा है। अपने को ये लोग सभ्य मानते हैं। ये लोग निम्न वर्ग से कोई मेल रखना नहीं चाहते हैं। यहाँ निम्न वर्ग का शोषण हो रहा है। लाचारी से इस जनता का जीवन-यापन चलता है। निर्धन जनता को अपना भविष्य उज्ज्वल बनाना होगा। इसके लिए उनको अपनी इस जीवन पद्धति को परिवर्तित करना होगा। अपनी अस्मिता को सुरक्षित रखने की कोशिश करनी होगी। 'पेड़' को लोक के विश्वास का अटूट हिस्सा माना जाता है। 'पेड़' संस्कृति की अभिव्यक्ति करता है। इसप्रकार रघुवीर सहाय की कविता में लोकरीति के अन्तर्गत आनेवाले लोक के प्रतीक को अपनाया गया है।

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की कविताएँ सामाजिक परिप्रेक्ष्य से युक्त हैं। व्यक्तिवाद से उबरकर सामाजिकता का अग्रगामी विकास उनकी रचनाधर्मिता में देखने को मिलता है। आम आदमी के संघर्ष की आकाँक्षाएँ ही उनकी रचनाओं में लक्षित होती है। इन उलझनों से लोक को सही मार्ग दर्शन कराने का प्रयास इनकी कविता में मिलता है। 'स्थिति यही है' शीर्षक कविता को लिया जा सकता है। भाषा यहाँ अस्मिता का प्रतीक है। अपनी बानी के प्रति कोई सैद्धांतिक आग्रह लोक जीवन में नहीं होता है। यह अस्तित्ववत् आग्रह रहता है। यह जीवनोन्मुखी आस्था है जो लोक में सुरक्षित है। सर्वेश्वर की कविता में यह आकांक्षा भली भाँति सुरक्षित है।

"सब अपनी अपनी भाषा भूल चुके थे
केवल हम उसके
बने रहने के बोध के साथ ज़िन्दा थे। और रात दिन
भूखे-प्यासे फटेहाल चलते जाते थे
और जब हम अपनी यातना
दर्ज कराना चाहते हैं
हम से छीनने आये हैं वे
हमारी भाषा।"[1]

स्वत्वबोध भी लोक आकांक्षा का एक रूप है। यह एक संकुचित बोध नहीं है। लघु संस्कृति का हिस्सा है। उसको लोक सदैव पालता आया है। उसके बिना लोक का कोई मूल्य नहीं है। लघु संस्कृतियों में अपनी लघुता के प्रति विशेष आग्रह रहता है। उनमें से एक है उसकी अभिव्यक्ति - याने भाषा सर्वेश्वर लघुसंस्कृति के लोक पक्ष को इस तरह से व्यक्त करते हैं।

लोक दृश्य

लोक जीवन में प्रयुक्त होने वाली जीवन पद्धति के लोक दृश्यात्म रूप कविता में देख सकते हैं। नागार्जुन की कविताओं में लोकजीवन के ऐसे दृश्य समस्त परिवर्तनों के संदर्भ में हम देख सकते हैं। लोकरीतियों का परिवर्तन अनिवार्य भी है। इन परिवर्तनों को लोक पूरी तन्मयता के साथ अनुभव करता है। यही लोकदृश्य लोक की अंतरंगी और बहिरंगी चेतना को सक्रिय बनाता हैं।

---

1. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : गर्म हवाएँ (प्र.सं. 1969) : पृ. 27

"बहुत दिनों के बाद
अब की मैं ने जी भर देखी
पकी-सुनहली फसलों की मुसकान
अब की मैं जी भर सुन पाया
धान कूटती किशोरियों की कोकिल कंठ तान।"[1]

इन पंक्तियों के द्वारा नागार्जुन दो भिन्न-भिन्न पहलुओं को उद्घाटित करते हैं। अकाल के बाद का वर्णन किया है। अकाल में जो विसंगतियों का माहौल मौजूद था, वह अब नहीं रहा है। स्थिति बिलकुल बदल गयी है। इस समय पकी-सुनहली फसल लहलहाती है। चेहरे पर जो मायूसी का भाव है, वह अब नहीं रहा। लोक का जीवन, उसकी चेतना पूर्ण रूप से प्रकृति पर निर्भर होती है। अब गाँव के लोग फसल काटते हैं, धान कूटते हैं, सब कहीं आनंद झलकता है। प्रकृति के साथ तल्लीन रहने के कारण प्रकृति का पूरा असर लोक के मन पर छाया रहता है। काम करते वक्त लोक अपनी थकावट को दूर करने के लिए, मन को ताज़ा रखने के लिए ताल-लय के साथ गीत गाते हैं। गीत की अपनी एक लयात्मक विशेषता होती है। लोक जीवन की समग्र झाँकियाँ नागार्जुन की कविताओं में लक्षित हैं। लोक पक्षी होने के कारण उनमें संवेदनशीलता ज़्यादा नज़र आती है। 'फसल' नामक कविता में नागार्जुन ने लोक के श्रम को, प्रकृति की सुन्दरता को, धरती की महिमा को, नदी की संस्कृति को वर्णित किया है।

---

1. नागार्जुन : सतरंगे पंखोंवाली (प्र.सं. 1982) : पृ. 25

"जब तक यह पृथ्वी रसवती है
और
जब तक सूर्य की प्रदक्षिणा में लग्न है
तब तक आकाश में
उमड़ते रहेंगे बादल मंडल बाँध कर
जीवन ही जीवन।"[1]

लोक की संवेदनशीलता प्रकृति पर गहरे रूप में जुड़ी रहती है। प्रकृति के प्रति सजग दृष्टि उसकी होती है। प्रकृति लोक के लिए ईश्वर होती है। प्रकृति पर वे अटूट विश्वास करते हैं। उनका जीवन प्रकृति की हरियाली पर निर्भर है। हरे-भरे खेत को देखकर इनका मन आनंदित होता है। 'सूर्य' को ये देवता मानकर पूजा करते हैं। बादल के उमड़ने पर वर्षा होगी। इस प्रकार पूरे जीवन में पृथ्वी रसवती दिखाई देगी। ऐसी परिस्थिति से मानव मन में भी उल्लास, सक्रियता का भाव उमड़कर आता है।

अज्ञेय की कविता की प्रकृति उनके लोक के संवेदनात्मक पक्ष को जगाती है। प्रकृति का सुन्दर-सौम्य रूप उन्होंने खींचा है।

अज्ञेय की कविता 'चक्रान्त शिला' में व्याप्त लोकदृश्य -

"मैं सोते के साथ बहता हूँ
पक्षी के साथ गाता हूँ
वृक्षों के, कोंपलों के साथ थरथराता हूँ

---

1. त्रिलोचन : ताप के ताए हुए दिन (प्र.सं. 1983) : पृ. 13

और उसी अदृश्य क्रम में, भीतर ही भीतर
झरे पत्तों के साथ गलता और जीर्ण होता रहता हूँ
नये प्राण पाता हूँ।"[1]

यहाँ पर प्रकृति का लोकान्वयन हुआ है। अपनी आत्मा की बात यहाँ कही गयी है। अज्ञेय का जीवन पूर्ण रूप से प्रकृति के साथ जुड़ा है। अपने आत्मपक्ष से परिवेश के माध्यम से वे यहाँ चित्रित करते हैं। इसीके द्वारा लोक का अन्वयन हुआ है। प्रकृति के हर एक छोटे-छोटे कणों में कवि अपना सुख पाता है। सूखने पर पेड़ के पत्ते नीचे गिर जाते हैं। नीचे गिरकर पत्ते गल जाते हैं, जीर्ण होते हैं। उसी प्रकार मानव जीवन भी एक दिन मिट जायेगा। मनुष्य का जीवन क्षणिक होता है। जिस प्रकार वृक्ष के कोंपले पत्ते बनते हैं और फिर सूखकर नीचे गिरते जीर्ण होते हैं। उसी प्रकार मानव-जीवन में भी परिवर्तन आता है। बचपन के बाद जवान बनते हैं, जवानी के बाद बूढे बनकर देह का अंत हो जाता है। मरने के बाद मानव का शरीर मिट्टी में मिल जाता है। अंत में आत्मा का विलयन परमात्मा में होता है। यही लोक का विश्वास है। अपनी कवितात्मक वैचारिकता के लिए अज्ञेय ने लोकान्वयन को यहाँ स्वीकारा है। इसमें लोक दृश्य का पक्ष भी प्रबल है।

मुक्तिबोध की कविता 'आत्मा की व्यथा' में

"दुःख की कथाएँ
तरह-तरह की शिकायतें

---

1. अज्ञेय : आँगन के पार द्वार : (प्र.सं. 1961) : पृ. 36

अहंकार - विश्लेषण
चारित्रिक आख्यान
ज़माने के जानदार सूरे व आयतें
सुनने को मिलती हैं।"[1]

मुक्तिबोध को रचना करने के लिए बीज तत्व इसी दुनिया से मिल जाते हैं। यथार्थता पर उनका सृजन आधारित है। लोक जीवन की कई प्रकार की अभिव्यक्तियाँ उनके यहाँ मिल जाती है। कभी दुःख की कथाएँ, जीवन संघर्ष की शिकायतें, हृदय का मंथन, सभी प्रकार की दिशायें मिलती हैं। इन सभी राहों से मुक्तिबोध गुज़रना चाहता है। इतिहास बोध को सुरक्षित रखने की कोशिश होती है। आँखों से देखी सभी चीज़ों को रचना का विषय बना लेता है। सच्चा कवि कालबद्ध होता है। समय के अनुसार चलनेवाला होता है। रूढ़िगत विश्वास, संस्कृति एवं मूल्यवान तत्वों को सुरक्षित रखना लोक का स्वभाव होता है। कविताओं में भी यही प्रयास होता रहता है।

मुक्तिबोध की कविता 'मेरे लोग' की पंक्तियाँ कुछ इस प्रकार हैं -

"फिर वही यात्रा सुदुर की
फिर वही भटकती हुई खोज भरपूर की
कि वही आत्मचेतस् अन्तः संभावना
न जाने किन खतरों से जूझे ज़िन्दगी
....वे आस्थाएँ तुम को दरिद्र करवाएँगी।"[2]

---

1. सं. नेमिचन्द्र जैन : मुक्तिबोध रचनावली (प्र.सं. 1980) : पृ. 189
2. सं. नेमिचन्द्र जैन : मुक्तिबोध रचनावली (प्र.सं. 1980) : पृ. 46

मुक्तिबोध ने यहाँ भीतरी संसार को रचा है। कविता की इस भीतरी दुनिया को रचने के लिए उन्होंने जीवन के अनुभवों का सहारा लिया। भीतर का यथार्थ बहुत ही त्रास एवं तनाव उत्पन्न करनेवाला है। मानवीय अस्तित्व की खोज करने के कारण यह यथार्थ प्रखर सिद्ध होता है। इसी अस्मिता की तलाश में वे सुदूर यात्रा करते हैं। यह यात्रा पीढ़ियों से जारी है। मुक्तिबोध आम जनता का पक्षधर हैं। वह चेतावनी देते हैं कि सत्ताधारी व्यवस्था आम जनता का शोषण करेगी। दरिद्र बना देगी। नेताओं पर भरोसा करना खतरनाक सिद्ध होगा। नेतालोग वफादारी का ढ़ोंग मात्र रचते हैं। जनता को सतर्क बनाने के लिए वे इस सच्चाई को व्यक्त करते हैं। वे समाज के सामने प्रतिबद्ध रचनाकार सिद्ध होते हैं। आज के परिवेश में मानव को अभाव, षड्यन्त्र, आकस्मिकता, तनाव, घुटन आदि विवशतापूर्वक भोगना पड़ता है। मनुष्य के जीवित रहने की लालसा इनकी कविताओं में प्रकट होती है। खतरों से जूझकर भी मनुष्य को अस्मिता की खोज जारी रखनी है। समाज के जो ढ़ोंगी परिवेश उभरता है उसको अनदेखा करते हुए जनपद को आगे बढ़ना है। इसकी सही पहचान कराना रचना कर्म की सतत कोशिश होती है। मुक्तिबोध का दृश्य बोध इस कविता में ज़ाहिर होता है।

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की कविताओं में लोक जीवन की विभिन्न झाँकियों को देख सकते हैं। "सर्वेश्वर की कविता की विशेषता यह है कि उन्होंने अपनी कविता में लोक धुन, लोकराग, प्राकृतिक जीवन और प्राकृतिक रंगों का चित्रण किया है। लोक संपृक्ति से तात्पर्य लोकचेतना से

हैं।"[1] सर्वेश्वर की मूल चेतना लोक जीवन से संबद्ध होती है। उनके काव्य में ग्राम्य संवेदना को पूरी सूक्ष्मता और आत्मीयता के साथ व्यक्त किया गया है। 'धूल' नामक कविता की पंक्तियाँ -

"धूल में दबा यह रूप निरख
धूल से आँज ली मैं ने आँखें
होगी कहीं चाँदनी
होगा कहीं प्यार धूल केवल धूल
मेरा संसार।"[2]

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की ये पंक्तियाँ गाँव की धूल की महिमा को व्यक्त करती हैं। कवि आशा करते हैं कि धूल से मिले लोगों की ज़िन्दगी में सुधार हों। सुन्दर-शीतल-आराम देने वाली चाँदनी आएँ। लोक की धरती लू के थपेड़ों से पिट रही है। सारा दर्द सहकर जल रही है। लेकिन यह दर्द कम हों। पूर्ण रूप से मिट जाएँ। उच्चवर्ग की आँखों में कुहरा छाया है। उनकी आँखों में मूल्य की महत्ता खो गयी है। धरती से जुड़कर काम करना, धूल धूसरित होना लोक की अपनी रीति मानी जाती है। इसीको सर्वेश्वर ने 'मैं नया कवि हूँ' शीर्षक कविता में ने यहाँ वर्णित किया है।

"मैं नया कवि हूँ
इसीसे जानता हूँ

---

1. डॉ. कल्पना अग्रवाल : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना व्यक्ति और साहित्य (प्र.सं. 2002) : पृ. 94
2. गर्म हवाएँ : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना (प्र.सं. 1979) : पृ. 68

सत्य की चोट बहुत गहरी होती है
मैं नया कवि हूँ - इसी से मानता हूँ।
चश्मे के तले की दृष्टि बहरी होती है
इसीसे सच्ची चोटें बाँटता हूँ
झूठी मुसकाने नहीं बेचता।"[1]

सर्वेश्वर के सामाजिक सरोकार की अभिव्यक्ति की मिसाल ये पंक्तियाँ प्रस्तुत करती हैं। अपनी बुनियादी ज़रूरतों का अभाव लोक के चारों ओर व्याप्त है। ऐसी बदहाली में जनता असत्य को सत्य मानती है। आत्मा का खंडन होने पर भी अपने भीतर के दर्द को दबोचकर ज़िन्दा रहती है। अपने खंड़ित यथार्थ के प्रति अवाम को सजग करने के लिए सर्वेश्वर कवि कर्म को निभाता है। जनता को अपने कर्तव्य का बोध दिलाता है। प्रेरणा प्रदान करता है। जीवन का यथार्थ खौफनाक होता है। इसी के कारण 'सत्य की चोट को गहरी' रूप में प्रस्तुत किया गया है। अपनी संवेदनाओं को वे जनता के साथ बाँटते हैं। झूठी मुसकानें बेचना नहीं चाहता है। यथार्थता से जूझने का कार्य कठिन एवं पीड़ाजनक होता है। पूँजीपति वर्ग आम जनता को कुचल देते हैं। उनके वर्चस्व से लोक की दुनिया को मुक्त करना ही सच्चे कवि का दायित्व होना है। राह भटकी हुई जनता को सही पथ पर लाना, उनमें विवेक भरना सर्वेश्वर का उद्‌देश्य है। लोक का पक्षधर बनकर सर्वेश्वर उपस्थित होते हैं। वे अपने रचनाओं में प्रत्यक्षतः लोक दृश्य रचते जाते हैं।

---

1. सं. डॉ. जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव / डॉ. जितेन्द्रनाथ पाठक : अस्मिता (ष.सं. 2003) : पृ. 42

केदारनाथ सिंह अपनी रचनाओं में लोक के प्रति आस्थावादी दृष्टिकोण को लेकर उपस्थित होते हैं। कटु यथार्थ के साथ वे समझौता नहीं करते हैं। "आस्था को केदारनाथ सिंह उसके विशिष्ट भारतीय अर्थ में मूल्य सरीखी प्रतिष्ठा देते हैं और हताशा, कुंठा, परायापन, अलगाव, आत्महत्या, अजनबीपन जैसे मुहावरों में ही आधुनिक बोध या काव्यानुभूति की सीमा बनानेवाले काव्यदर्शन या विचार दर्शन के प्रति अपनी असहमति प्रकट करते हैं।"[1] लोक को सक्रियता प्रदान करने की कोशिश रचना धर्म के तहत करते हैं। ये पंक्तियाँ इसका मसलन बनती है - 'पृथ्वी रहेगी' शीर्षक कविता -

"मुझे विश्वास है
यह पृथ्वी रहेगी
यदि और कही नहीं तो मेरी हड्डियों में
यह रहेगी जैसे पेड़ के तने में रहते हैं दीमक
जैसे दाने में रह लेता है घुन
यह रहेगी प्रलय के बाद भी मेरे अन्दर
यदि और कही नहीं तो मेरी ज़बान और मेरी नश्वरता में
यह रहेगी।"[2]

पृथ्वी के दृश्यत्व को अपने हृदय में स्थापित करके केदारनाथ सिंह दरअसल लोक की व्यापकता को ही सुस्थिर कर रहे हैं। परिवर्तन की बाढ के बावजूद पृथ्वी को अपनी हड्डियों में आज़माने की इच्छा लोक

---

1. परमानंद श्रीवास्तव : शब्द और मनुष्य (प्र.सं. 1999) : पृ. 145
2. केदारनाथ सिंह : यहाँ से देखो (प्र.सं. 1983) : पृ. 25

आस्था ही है। उसे दृश्यत्व प्रदान करके प्रस्तुत किया गया है। इस लोक दृश्य की अवतारणा से संवेदना का घनत्व दुगुना हो गया है।

लोक यथार्थ

लोक यथार्थ एकायामी नहीं है। वह अनेकायामी है। कविता उसका कम से कम स्पर्श तो करती है। उसके बगैर कविता का संभव होना कठिन है। लोकजीवन की यथार्थताओं को प्रस्तुत करनेवाली नागार्जुन की कविता 'नई पौध' की पंक्तियाँ -

"खड़ा है नई पौध पीपल के नीचे
खाद की खोज में देख रहा ऊपर
कि फलियाँ गिरेंगी
पेट भरेगा
और फिर जाकर सो रहेगा,
चुपचाप झोंपड़ों के अन्दर भूखी माँ के पेट से सटकर।"[1]

लोकजीवन की वेदना और नयी आशा को यहाँ हम देख पाते हैं। नयी प्रतीक्षाओं को लेकर बच्चा भूखी माँ के पास जाकर सो गया है। जिस प्रकार छोटा पौधा बड़ा वृक्ष बनने के लिए खाद की खोज करता है, उसी प्रकार देखना वास्तव में आशाओं का जागरण ही है। उसकी माँ भी भूखी सोई हुई है। लेकिन उनका पेट भी खाली होता है। खाली पेट सोते वक्त उनके मन में आशायें भरी रहती है। कभी कभी इन मेहनतकशों को भूखा

---

1. नागार्जुन : चुनी हुई कविताएँ (प्र.सं. 1985) : पृ. 61

सोना ही पड़ता है। लोक का जीवन पीड़ा से पूर्ण होने पर भी नागार्जुन ने उनमें प्रतीक्षाओं की किरणें डाल दी हैं। इस प्रतीक्षा की कौंध से ही उनका जीवन सक्रिय बनता है। इसी यथार्थ से नागार्जुन ने प्रस्तुत किया है।

त्रिलोचन की कविता 'सहस्रकमल' का लोक यथार्थ चित्र इस प्रकार है -

"उठ कर अभिवादन करते प्रभात काल का
बाढ़ में
आँखों के आँसू बहा करेंगे
किन्तु जल थिराने पर
कमल ही खिलेंगे, सहस्रदल।"[1]

त्रिलोचन की कविता गहरे दुःख और संघर्ष के बीच आस्था को प्रस्तुत करने वाली है। मानव चरित्र को उन्नयन की राह पर ले चलने वाली भी है। एक सिक्के के दो पहलू होते हैं। उसी प्रकार यहाँ वर्षा के दो पहलुओं का वर्णन किया गया है। वर्षा के आने पर एक ओर बाढ़ आती है, बरबादी होती है। दूसरी ओर वर्षा न आये तो चारों ओर की हरियाली भी मिटती है। ज़मीन बंजर हो जाती है। तब भी पूरी बरबादी ही होती है। लेकिन पृथ्वी को रसवती होने के लिए वर्षा की ज़रूरत है। यहाँ वर्षा होने के कारण बाढ़ आ गयी है। इसके कारण लोक दुखी हो रहे हैं। उनकी खेती की बरबादी हो गयी है। लेकिन त्रिलोचन उनको साँत्वना देते हैं कि जल के थिराने पर कमल खिलेंगे। कमल खिलने का मतलब है

---

1. त्रिलोचन : ताप के ताए हुए दिन (प्र.सं. 1983) : पृ. 14

आशा का उदय। नये प्रभात का आगमन होगा। दुःख और पीड़ाओं का अंत होगा। सहस्रदल वाला कमल खिलेगा। इस प्रकार लोक के आस्थावान दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया गया है। लोक यथार्थ का पक्ष इस कविता में प्रकृतवात और काल्पनिकता के द्वन्द्व से युक्त है।

त्रिलोचन की कविताओं की असली ज़मीन उनका जनपद ही है। वही उनका लोक यथार्थ है। जनपदीय संघर्ष, आशा-निराशा, उत्थान-पतन, अंतर्विरोध आदि तत्व त्रिलोचन की कविताओं में स्थान पाते हैं। अपनी वाणी के द्वारा वे उज्ज्वल भविष्य का निर्माण करना चाहते हैं। अपनी इस अभिलाषा को वे मर्मस्पर्शी शब्दों के तहत पूर्णता प्रदान करते हैं।

'वही त्रिलोचन है' शीर्षक कविता की पंक्तियाँ -

"उसे कुछ भी नहीं पता
दुनिया कहाँ से कहाँ पहूँची
अब समाज में वे विचार रह गए नहीं है जिनको ढ़ोता
चला जा रहा है वह, अपने आँसू बोता
विफल मनोरथ होने पर अथवा अकाज में
धरम कमाता है वह तुलसीकृत रामायण
सुन पढ़कर, जपता है नारायण नारायण।"[1]

त्रिलोचन ने इन पंक्तियों में जनपद की निरक्षरता की बात कही है। ऐसे जनपद को आज शिक्षा की ज़रूरत है। सही राह की आवश्यकता है। तभी इनकी जीवन-संबन्धों के बारे में पहचान होगी। धरती और

---

1. त्रिलोचन : उस जनपद का कवि हूँ (प्र.सं. 1981) : पृ. 11

उससे जुड़ा मनुष्य त्रिलोचन के लिए मुख्य तत्व है। "कविता में जब तक जनपद की धड़कनें सुनाई देती है। तब तक वह समाज के लिए प्रयोजनीय रह पाती है। कविता में 'लोक' को व्यक्त होना ही चाहिए। हमारा लोक, हमारे आसपास का लोक यानी जनपद। लोक धर्मिता ही कविता की सही दिशा है।"[1] जनपद को अनदेखा करते हुए श्रेष्ठ कविता की रचना असंभव है। देहातों, कस्बों, गाँवों और नगरों में रहनेवाले ही लोक हैं। इनका क्षेत्र व्यापक है। आजीविका कमाने के लिए महानगरों में भी लोक क्रियाशील रूप धारण करते हैं। यह चेतना, क्रियाशीलता ही लोक का निजी स्वभाव होता है। 'लोकबद्ध' कवि ही लोक का हृदय पहचान सकता है। इस मायने में त्रिलोचन सफल होते हैं।

केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं में ज़्यादातर प्रकृति को प्रधानता दी गयी है। उनकी कविता का स्थायी भाव प्रकृति से संबन्ध है। प्रकृति के लोक रूप के प्रति उनका लगाव गहरा है। मज़दूर-किसान का श्रम-संघर्ष, प्रकृति के लोक रूप के प्रति इनका लगाव गहरा होता है। मज़दूर-किसान का श्रम-संघर्ष, प्रकृति का ताना-बाना आदि कवि के संवेदन को काव्य संस्कार प्रदान करते हैं।

"काली मिट्टी हल से जोतो
बीज खिलाओ
खून पसीना पानी सींचो
प्यास बुझाओ

---

1. सं. डॉ. ए. अरविन्दाक्षन : कविता का यथार्थ (प्र.सं. 2003) : पृ. 84

महाशक्ति की नमी फसल का
अन्न उगाओ
धरती के जीवन सत्ता की
भूख मिटाओ।"[1]

श्रमशील किसान वर्ग को इन पंक्तियों के द्वारा आह्वान दिया गया है। धरती और मनुष्य के बीच जो गहरा संबन्ध है, उसको व्यक्त किया गया है। काली मिट्टी में काम करने पर वहाँ फसल उगेगी। खून-पसीना एक करके काम करने पर धरती पर अन्न उगेगा। इसी अन्न पर जीवन की सत्ता निर्भर है। कवि का प्रकृति के प्रति बुनियादी सरोकार यहाँ दृष्टव्य होता है।

यथार्थ के दो पक्षों को लोक से जोड़कर केदारनाथ अग्रवाल प्रस्तुत करते हैं। एक है श्रम का कठिन पक्ष। उसमें अमानवीयता का पक्ष मिलता है। पर श्रमिक वर्ग उससे उबरता है। यह यथार्थ का दूसरा पक्ष है। वह भी लोक से स्पन्दित है।

"जो कुली पीठ पर बोझ लिये चलता है।
हाड़ों पर अपने भार लिये चलता है।
कंकड़ पत्थर रोड़ों पर पग धरता है
हरदम आगे ही आगे बढता है।"[2]

---

1. केदारनाथ अग्रवाल : जो शिलाएँ तोड़ते हैं (प्र.सं. 1986) : पृ. 180
2. वही : पृ. 153

केदारनाथ अग्रवाल श्रमरत मनुष्य को केन्द्र बिन्दु बनाकर सृजन करते हैं। जीवन की संघर्षरत स्थिति को व्यक्त करने के साथ-साथ भविष्य निर्माण के माहौल में श्रम को महत्व भी देते हैं। इसी श्रम से भविष्य उज्ज्वल होता है। यही श्रम लोक की चेतना को उजागर करती है। शोषण के दबाव में आकर पिसने वाली जनता को नैतिक बोध के प्रति सजग बनाते हैं। "वे ग्रामीण जीवन के कवि इस दृष्टि से है कि गाँव में अभी जो सुन्दर है, और वह है, उसे वे बचा लेना चाहते है। ...इस सुन्दर का शोषण और अत्याचार के विरुद्ध लड़ने में उपयोग न हो, लेकिन मनुष्य को मनुष्य बनाये रखने में उसका उपयोग अवश्य है।"[1] मनुष्य को मनुष्य से जोड़ना ही लोक का अपना अहम मुद्दा है। मज़दूर वर्ग आमदनी कमाने के लिए बोझ ढ़ोता है, उसकी राह कंकड़-पत्थरीली होती है। इसके बावजूद वह वर्ग श्रम के द्वारा गतिशील रहता है। यह गतिशीलता लोक का स्वभाव है।

"जो जीवन की आग जलाकर आग बना है
फौलादी पंजे फैलाये नाग बना है
जिसने शोषण को तोड़ा, शासन मोड़ा है।
जो युग के रथ का घोड़ा है।
वह जन मारे नहीं मरेगा
नहीं मरेगा।"[2]

---

1. वर्तमान साहित्य (कविता विशेषाँक) (अप्रैल-मई, 1992) : पृ. 328-329
2. केदारनाथ अग्रवाल : श्रम का सूरज (प्र.सं. 1996) : पृ. 91

न मर - मिटने के संकल्प में लोक यथार्थ संगुंफित है। लोक में निरंतरता के लिए स्थान है। अंत अंततः अवसान नहीं है। वह आरंभ है।

अज्ञेय की 'बाँगार और खादर' नामक कविता में गाँव का अंकन मिलता है। गाँव का परिवेश अंकित किया है। गाँव की अपनी एक संस्कृति होती है। उनका अपना रहन-सहन, आचार-विचार होता है -

"बाँगर में
राजाजी का बाग है
चारों ओर दीवार है। जिसमें एक द्वार है
बीच-बाग कुआँ है
बहुत-बहुत गहरा
और उसका जल
मीठा, निर्मल, शीतल।"[1]

राजाजी यहाँ उच्चवर्ग के प्रतिनिधि है। उसका अपना बाग है। बाग में उसका अपना कुआँ है। उस कुएँ का जल बहुत स्वादिष्ट होता है। मेहनत करने वाले ही पानी की रुचि को पहचानते हैं। इसी जगह पर राजाजी के पुरखे रहते थे। गाँव में मिट्टी का घर बनाया जाता है। गाँवों के लोग वहाँ से बहनेवाली नदी में ही नहाते हैं। यह नदी इन लोगों के लिए सब कुछ बन जाती है। लोक का जीवन इसी तरह मेहनत में बीतता है। केवल पानी पीकर जीवन बिताते हैं। इसी कारण पानी का स्वाद ही वे लोग जान पाते हैं। इन लोगों के लिए अपना एक कुआँ तक नहीं है।

---

1. अज्ञेय : अरी ओ करुणा प्रभामय (प्र.सं. 1959) : पृ. 45

राजाजी के कुएँ से पानी लेते हैं। उस गाँव के लोग इस नदी को 'गंगा' मानते हैं। उनका संस्कार इस नदी से जुड़ा है। यह 'नदी' ही उन लोगों के लिए सब कुछ है। कवि ने यहाँ 'नदी' के द्वारा संस्कृति का महत्व प्रस्तुत किया है। 'संस्कृति' को लोक में सुरक्षित रखने की कोशिश हुई है।

मुक्तिबोध की कविता 'बाँह फैलाते चौराहे' की पंक्तियाँ -

"मुझे कदम-कदम पर
चौराहे मिलते हैं
बाँहें फैलाये
एक पैर रखता हूँ
कि सौ राहें फूटतीं
व मैं उन सब पर से गुज़रना चाहता हूँ।"[1]

दोराहों और चौराहों का दृश्यत्व तथा यथार्थ लोक से संबद्ध है। मुक्तिबोध की कविता और कवि-दृष्टि की प्रतिबद्धता लोक यथार्थ से संपृक्त होकर विराट अनुभव में परिवर्तित होती है।

मुक्तिबोध की कविताएँ बुनियादी तौर पर गतिशील हैं। उनकी काव्य चेतना सामाजिक यथार्थ को स्वानुभव सत्य के रूप में अपनाने वाली है। मुक्तिबोध की कविताएँ एक संघर्षशील कवि की कविताएँ हैं। "मुक्तिबोध का आत्मसंघर्ष उनका अपना संघर्ष होते हुये भी पूरे सचेत प्रगतिशील मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी समुदाय का संघर्ष है और उसका संघर्ष

---

1. सं. नेमिचन्द्र जैन : मुक्तिबोध रचनावली (प्र.सं. 1980) : पृ. 189

होते हुए भी वह उनका अपना संघर्ष है।"[1] पूँजीवादी व्यवस्था में सर्वहारा लगातार शोषण एवं दमन का शिकार होता जा रहा है। ऐसी हालत में इन सर्वहारा वर्गों की मुक्ति उनकी रचनाओं का संवेदनात्मक उद्देश्य बनता है। अपनी रचनाओं में दलित-पीड़ित जनता को वे प्रश्रय देने का प्रयास करते हैं।

कभी भी वे जनपद से अलग होना नहीं चाहते हैं। "मुक्तिबोध के काव्य-संसार की पटभूमि में असंदिग्ध-रूप से ऐसी शासन-व्यवस्था या सत्ता है जो निहायत चालाक होने के साथ ही बेहद आततायी है।"[2] लोक यथार्थ से व्यापक अनुभव ग्रहण करने की क्षमता मुक्तिबोध को इसी पहचान से मिली है। उनकी कविता की पटभूमि जितनी भी व्यापक क्यों न हो उतनी ही वह लोक यथार्थ के मुक्त भी है।

शमशेर की कविता 'बात बोलेगी' में लोक यथार्थ का चित्र -

"दैन्य-दानव, काल
भीषण, क्रूर
स्थिति, कंगाल
बुद्धि; घर मजूर
सत्य का क्या रंग? - पूछो एक संग
एक जनता का
दुःख एक
हवा में उड़ती पताकाएँ

---

1. नंदकिशोर नवल : मुक्तिबोध ज्ञान और संवेदना (प्र.सं. 1993) : पृ. 10, 11
2. आयाम : समकालीन कविता का प्रतिनिधि संकलन (सं. 1993) : पृ. 35

अनेक
दैन्य दानव। क्रूर स्थिति।"[1]

शमशेर ने यहाँ लोकजीवन की पीड़ा को शब्दबद्ध किया है। लोक का जीवन संघर्षरत होता है। मानव ने दानव का रूप ले लिया है। इस प्रकार लोक का रहन-सहन मुश्किल बना हुआ है। इस हालत को बदलने के लिए जनता को सतर्क बनना है। पूँजीपति व्यवस्था के विरुद्ध इन लोगों ने झंड़ा फहराया है। क्राँति का आह्वान किया है। अस्मिता को गहरी चोट लगने के कारण जनता आन्दोलन के मार्ग को अपना रही है। सभी मज़दूर क्राँति के मार्ग पर आये हैं। पूँजीवाद की जड़ों को उखाड़ने के लिए जनता तैयार खड़ी है। एकता के स्वर में जनता कदम आगे बढ़ाती है स्वतंत्रता की तलाश में भटक रही है। लोक यथार्थ को यथार्थ और प्रतीक विन्यास के आधार पर गहराने का प्रयास किया गया है। लोक यथार्थ सीधा होता है। हमारा वास्तविक यथार्थ जटिल है। दोनों का मिश्रण शमशेर ने अपनी कविता में किया है।

रघुवीर सहाय की कविताओं में तानाशाहियों के विरुद्ध आवाज़ सुनाई देती है। वे तानाशाहों के ढ़ोंग को बेनकाब करने की कोशिश करते हैं। वे धरती की महिमा को परखने वाले हैं। वे लोक की रीतियों को महत्व देते हैं। जनता पर अत्याचार करने वाले उच्चवर्ग के प्रति विरोध का भाव वे अपनी 'धरती का पानी' शीर्षक कविता में प्रकट करते हैं।

---

1. सं. अशोक वाजपेयी : टूटी हुई बिखरी हुई (प्र.सं. 1980) : पृ. 76

"बच्चा बच्चा माँग रहा है
धरती के अन्दर का पानी
हमको बाहर लाने दो
अपनी धरती अपना पानी
हमको बाहर लाने दो
अपनी धरती अपना पानी
अपनी रोटी खाने दो
हमको अक्षर नहीं दिया है। हमको पानी नहीं दिया।"[1]

यह सही है कि शोषण इस कविता की केन्द्रीय धुरी है। लेकिन रघुवीर सहाय की पंक्ति जब आवृत्ति कर जाती है वो लोक यथार्थ का दृश्य सघन हो उठता है। बच्चा-बच्चा मांग रहा है - अपनी धरती और अपना पानी। आवृत्ति में इसका लोक यथार्थ अधिक संकल्पनापूर्ण हो जाती है।

सर्वेश्वर की कविता 'कुआनो नदी के पार' लोक के यथार्थ को व्यक्त करती है -

"पानी चढ़ रहा है। खून खौल रहा है
बहुत करीब आ गया है
खतरे का निशान
निर्मल नहीं होती कोई बाढ़-उफान है, भँवर है
गंदगी है
अंधावेग है।"[2]

---

1. रघुवीर सहाय : हँसो हँसो जल्दी हँसो (प्र.सं. 1975) : पृ. 6
2. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना : कुआने नदी (प्र.सं. 2004) : पृ. 29

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की ये पंक्तियाँ पीड़ा ग्रस्त लोक जीवन की झाँकी को प्रस्तुत करती है। गाँव की बस्ती बाढ़ से ग्रस्त है। सब कहीं पानी चढ़ आया है। खतरा नज़र आता है। इस बाढ़ में भँवर है, गंदगी भी है। सीमाहीन रूप में पानी और मैल ऊपर चढ़ा हुआ है। उच्चवर्ग के लोग बड़े-बड़े महलों में निवास करते हैं। आराम की ज़िन्दगी जीते हैं। पर बेचारे निम्न वर्ग मेहनती होने के बावजूद भी भाग्य हीन होते हैं। किस्मत इनका साथ नहीं देती है। इनको सभी पीड़ाओं को सहन करना पड़ता है। लोक लगातार अपनी किस्मत की लकीर से संघर्ष करता है। यही संघर्ष उसकी आत्मा का मंथन करता है। आत्म मंथन के बाद लोक की रीतियों में बदलाव आता है। उनका प्रवेश नये माहौल में होता है। त्रस्त ज़िन्दगी को आराम मिल जाता है। ऐसी आशायें ही इन लोगों में सक्रिय रहने की चाह भर देती है।

सर्वेश्वर की एक और कविता 'मुक्ति की आकाँक्षा' की पंक्तियाँ -

"मैं ने देखा, स्लेट पर चलती
उनकी उँगलियाँ
लौ में बदल रही है
और पूरा शब्द लिखते ही
उसका हाथ मशाल में बदल गया है।
'लो अब तुम चाहो इसे उठा लो।"[1]

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना : जंगल का दर्द (प्र.सं. 1968) : पृ. 91

इन पंक्तियों में लोक जीवन के बदलते यथार्थ का परिचय मिलता है। लोक की ज़िन्दगी अब नयी दिशा की ओर मुड़ रही है। उनमें क्राँति की भावना जाग गयी है। शब्दों की दुनिया में इन लोगों ने पदार्पण किया है। इन लोगों के हाथों में अक्षर रूपी मशाल जल रही है। मशाल के जलने पर चारों ओर रोशनी बिखेरती। उसी प्रकार लोक का अपना जीवन दूसरों के लिए जल कर राख बन जाता है। अक्षर रूपी मशाल द्वारा इनमें विवेक का भाव संचरित होता है। मनुष्य को जंतु जगत् से अलगाने वाला तत्व है 'विवेक'। इस विवेक को हाषिल करने में ही लोक की सक्रियता मूल्यवान होगी। लोक यथार्थ का परिकल्पित पक्ष इन कविताओं में मिलता है।

भवानी प्रसाद मिश्र की कविता 'गाँव' में लोक यथार्थ का चित्र प्रस्तुत है।

"गाँव में पहली किरन के साथ जागे
चैन जगने पर नहीं जिनको, अभागे
जोतना है खेत, हल के साथ निकले
बीज बोना है कि दल के साथ निकले।"[1]

गाँव के लोगों की सक्रियता को अंकित किया गया है। सूरज की पहली किरन के साथ ये जाग जाते हैं, अपने काम-धाम के लिए तैयार हो जाते हैं। यातना भरी ज़िन्दगी बिताने के कारण इनको 'अभागे' कहा गया है। गाँव के बहुमत किसान हैं। खेत में काम करना ही उनका एक मात्र

---

1. भवानी प्रसाद मिश्र : गीतफरोश (प्र.सं. 1948) : पृ. 34

लक्ष्य है। हल से खेत जोतते हैं, बीज बोते हैं। इसके लिए दल के साथ प्रभात की वेला में खेत के लिए निकलते हैं। सुबह की ठंड़ की कोई फ़िक्र ये लोग नहीं करते। ज़रा भी अलसता इनमें नहीं होती है। "भवानी प्रसाद मिश्र कवि से ऐसे बीज बोने की अपेक्षा रखते हैं, जिसकी लताएँ शक्ति के प्राण संचारी फल पैदा कर सकें। इनका अभिमत है कि जिस तरह फूलों को या फसलों को उगाने के लिए ज़मीन को बोना, बखरना और गोड़ना अनिवार्य होता है उसी तरह कविता को भी जनजीवन की यथार्थ धरती से संपृक्त करना पड़ता है। जीवन और जगत् से जुड़े बिना सार्थक काव्य सृजन संभव नहीं।"[1] भवानीप्रसाद लोक पक्ष को बरकरार रखने की कोशिश कविता द्वारा करते हैं।

कुँवरनारायण की कविताओं में अवाम के प्रति संवेदनशीलता व्यक्त होती है। आम जनता की विडम्बनाओं को शब्दबद्ध किया है। लोक का परिवेश भी रचनाओं में व्यक्त होता है। श्रमजीवियों के पास मौसम तथा गरीबी से लड़ने की जो ताकत होती है, वही शक्ति कुँवरनारायण की कविता में दीखती है। कविता की आख्यानात्मकता में सृजनकर्ता की भीतरी दुनिया भी बाहर प्रकट होती है। "यह भीतर की, कवि के अन्तर्जगत की व्यग्रता, जीवन्तता और गहरी मानवीय प्रतिबद्धता ही है जो कविता का असली ताप रचती है।"[2] कुंवर नारायण की कविताओं में लोक के प्रति सहानुभूति का भाव लक्षित होता है। विड़म्बनाओं से ग्रस्त लोक का मार्ग सुधारना ही इनका लक्ष्य रहा है।

---

1. सं. करुणाशंकर उपाध्याय : आधुनिक कविता का पुनर्पाठ (प्र.सं. 2008) : पृ. 168
2. सं. अशोकवाजपेयी : बहुवचन (प्र.सं. 2002) : पृ. 104

"भूख से जैसे बिलखता हुआ बालक
सिरहाने रखे दीये की रोशनी में
अभी थक कर सो गया हो -
सो गया वह एक छोटा-सा पहाड़ी ग्राम
केवल जागती है।"[1]

आम जनता का मार्ग पथरीला होता है। पीड़ा से युक्त मानव दुःख-दर्द में छटपटाता रहता है। एक पहाड़ी गाँव की झाँकी प्रस्तुत की है। श्रमशील जनता को भूखी पेट ही सोना पड़ता है। भरसक मेहनत के बाद भी उनके लिए दो अन्न के दाने भी नसीब नहीं होते। यही उनकी बदनसीबी है। गाँव में कोई औद्योगीकरण नहीं है। वहाँ आम आदमी दिये की रोशनी में जीवन बिताता है। मेहनतकश वर्ग दिन भर काम करने के बाद रात को थकावट के कारण सो जाता है - भूखे पेट। भूख के कारण बालक रोते -रोते थककर सोया हुआ है। यही लोक जीवन का यथार्थ है। इस हकीकत को कुँवरनारायण प्रस्तुत करते हैं।

कुँवरनारायण की कविता में व्यथा, निराशा, जैसी विसंगत उपन्यासों से बचने का मार्ग खुल जाता है। आस्था की किरणें भी कविता में प्रयुक्त होते हैं। आम जनता का जीवन सुरक्षित बनाने की कोशिश भी कविता के तहत होती है। "कवि उस दुनिया का साक्षात्कार करता है जो पाठक या श्रोता के चारों ओर है पर उनकी दृष्टि से ओझल है। चीज़ें जो अर्थहीन है, निरर्थक लगती है, रचना में उजागर होकर एक नया अर्थ देने लगती

---

1. कुवरनारायण : परिवेश हम तुम (प्र.सं. 1961) : पृ. 80

है। कवि अर्थ हीन दुनिया को अर्थ देता है, शब्दहीन दुनिया को शब्द देता है, मौन को मुखर करता है।"[1] कविता यथार्थ का सीधा प्रसारण करती है और लोक में व्याप्त मायूसी को तोड़ने की प्रेरणा देती है। यही प्रेरणा कुँवर की इन पंक्तियों में व्यक्त हुई है -

"सीले, व्यथावादी अक्षरों के बीच
ताज़ी धूप आने दो
इन्हें लाखों दिलों की खुशी में
जी भर नहाने दो
ज़हरीली फफूँदी-सी उदासी
छील कर मन से अलग कर दो।"[2]

कुंवर नारायण ने 'धूप' शब्द को लोक में प्रेरणात्मक अंश प्रदान करने के लिए उपयोग किया है। अक्षरों के बीच अवाम को सुरक्षित रखने की कोशिश है। अक्षरों की दुनिया अवाम के लिए रोशनी प्रदान करती है। अंतर्जगत् में ज्ञान का प्रकाश चमकेगा। कविता के द्वारा मूल्यों की स्थापना वे चाहते हैं। लोक की राह चमकीली करना चाहते हैं। जनता खामोश है। इस सन्नाटे को भेदकर जनता को आवाज़ उठाना है। अब उनका प्रवेश अक्षरों की दुनिया में हो गया है। धरती के प्रति लगाव कुंवर की कविता की विशेषता है।

---

1. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी : कविता क्या है? (सं. 1999) : पृ. 45
2 कुंवरनारायण : परिवेश हम तुम (प्र.सं. 1961) : पृ. 25

लोक सौन्दर्य

लोक सौंदर्य यथार्थ निरपेक्ष नहीं है। इसलिए वह बहिरंग भी नहीं है। लोक सौंदर्य पर कविता लिखते हुए बाहरी सौंदर्य को भी प्रस्तुत किया है। लेकिन सौंदर्य आंतरिक है।

नागार्जुन की कविता 'बसन्त की अगवानी' में लोक सौन्दर्य दृष्टिगत होता है।

> "रंग-बिरंगी खिली-अधखिली
> किसिम-किसिम की गन्धों - स्वादों वाली ये मंजरियाँ
> तरुण आम की डाल-डाल टहनी-टहनी पर
> झूम रही हैं....। चूम रही है - कुसुमाकर को
> ऋतुओं के राजाधिराज को।"[1]

धरती के सौन्दर्य का वर्णन इन पंक्तियों में नज़र आता है। 'वसंत' को 'ऋतुओं का राजा' माना जाता है। वसंत के आने से प्रकृति में कई मोहक बदलाव आ गये हैं। कई तरह के फूल खिले हैं। इस प्रकार पूरा परिवेश सुगन्ध से पूरित है। पेड़-पौधों में फल उग गये हैं। आम की डाली में मंजरियाँ लग गयी हैं। वसंत का आगमन सारी प्रकृति को मोहक बना देता है। लोक और धरती का संबन्ध अटूट होता है। अपनी चारों ओर की प्रकृति को लोक कवि अनदेखा नहीं कर सकता है। प्रकृति की उपस्थिति लोक की संस्कृति की उपस्थिति है। "प्रकृति का अनुभव जब लोक के

---

1. नागार्जुन : चुनी हुई कविताएँ (प्र.सं. 1985) : पृ. 237

अनुभव में परिवर्तित होता है तो वह साँस्कृतिक अनुभव में रूपाँतरित होता है।"[1] परिस्थितिकी संवेदना को कवि ने यहाँ प्रस्तुत किया है। इस के बिना लोक का जीवन सुखद नहीं हो सकता। वसंत की अगवानी उनके लिए आशाओं की कौंध साबित होती है। एक क्या उन्मेष जो आंतरिक है।

त्रिलोचन की कविता 'बादल घिर आए' में लोक सौन्दर्य का वर्णन मिलता है -

"जगीं वनस्पतियाँ मुरझाई।
जलधर तिर आए। बरखा, मेघ-मृदंग थाप पर
लहरों से देती हैं जी भर
रिमझिम रिमझिम नृत्य ताल पर
पवन अथिर आए
दादुर, मोर, पपीहे, बोले।
धरती ने सोंधे स्वर खोले।"[2]

प्रकृति का वर्णन यहाँ हुआ है। प्रकृति में आने वाले परिवर्तन लोक के मन को भी प्रभावित करते रहते हैं। सभी जीवजन्तुओं के प्रति ध्यान आकृष्ट हुआ है। अपनी चारों ओर की दुनिया पर कवि बाध्य रहता है। वर्षा आने पर जो परिवर्तन धरती पर नज़र आये, उन्हीं का वर्णन हुआ है। मुरझाई हुई सारी वनस्पतियाँ ताज़ी हो गयीं। बादल घिर आया

---

1. प्रेमशंकर रघुवंशी (सं) : लेखनसूत्र (जनवरी-जुलाई 2006) : पृ. 172
2. त्रिलोचन : सब का अपना आकाश (प्र.सं. 1952) : पृ. 9

है। घमासान बारिश हो रही है। बिजली चमकती है। मेघ का गर्जन सुनाई देता है। पानी की बूँदें ताल-लय के साथ ज़मीन पर गिर रही हैं। तेज़ हवा भी चल रही है। दादुर, मोर, पपीहे बरसात की प्रतीक्षा में रहते हैं। बारिश आयी तो ये जीव-जन्तु बोलने लगे। मानव ही नहीं जीव-जन्तु भी बरसात की प्रतीक्षा करते हैं। पपीहा, वर्षा की बूँदों की प्रतीक्षा में रहता है। बादल के गर्जन को देखकर मोर नाचता है। इस प्रकार उनकी खुशी की कोई सीमा भी नहीं होती है। पानी बरसने पर ताल भर जायेगा। फसल उगेगी। धरती पर सब कहीं सुगन्ध छा गयी। इस प्रकार त्रिलोचन की आँखें लोक के जीवन के यथार्थ पर टिकी हुई हैं। लोक जीवन के सुख-दुःख को कवि अनुभव करते हैं। आँखों देखे अनुभवों को शब्दबद्ध करते हैं। कविता में यथार्थता की परख से उपजा सौंदर्य ही यहाँ प्रकट होता है।

अज्ञेय की कविता 'भीतर जागा दाता' में लोक सौन्दर्य लक्षित होता है -

"छरहरे पेड़ की नयी रँगीली फुनगी
आकाश के भाल पर जय-तिलक आँक गयी
गेहूँ की हरी बालियों में से
कभी राई की उजली, कभी सरसों की पीली
फूल-ज्योत्सना दिप गयी।"[1]

प्रकृति की सहज स्वच्छन्दता के माध्यम से सौंदर्य का प्रतिपाद्य अज्ञेय ने किया है। बावजूद इसके वह सौंदर्य केन्द्रित सौंदर्यवर्णन नहीं है।

---

1. अज्ञेय : आँगन के पार द्वार (प्र.सं. 1961) : पृ. 14

उसमें लोक यथार्थ की झलक ही अधिक मिलती है जो श्रमिकों की आकांक्षाओं से जुड़ती है। इस तरह यहाँ पर सौंदर्य मेहनत से जुड़ता है और व्यापक अर्थ प्रदान करता है।

अज्ञेय की एक और कविता 'रात में गाँव' में लोक का सौन्दर्य व्याप्त है -

"झींगुरों की लोरियाँ
सुला गयी थीं गाँव को
झोंपडे हिंड़ोलों-सी झुला रही है
धीमे-धीमे
उजली कपासी घूम-डोरियाँ।"[1]

अज्ञेय की रचना में प्रकृति भी तल्लीन रहती है। परिवेश के सभी कणों को कविता में स्थान दिया गया है। गाँव का परिवेश वर्णित है। रात की वेला में गाँव बहुत सुन्दर होता है। झींगुरों की आवाज़ लोरी बनकर गाँववालों को सुलाती है। बहुमत लोग किसान होने के कारण झोंपड़ियों में बसते है। मेहनतकश वर्ग रात की वेला में चैन की नींद सोता है। उनकी अपनी कोई पूँजी नहीं होती। संपत्ति हीन होने के कारण इनको कोई तनाव नहीं होता। पर बेचारी गरीब जनता खूब मेहनत करने पर भी बद्हालत में जीने को मज़बूर है। यही वास्तविकता है। इस ठोस यथार्थ को अज्ञेय ने प्रस्तुत किया है।

---

1. अज्ञेय : अरी ओ करुणा प्रभामय (प्र.सं. 1959) : पृ. 63

शमशेर बहादुर सिंह की कविताओं में गहरे मानवीय प्रेम और पीड़ा से उपजा हुआ संसार मिलता है। उनकी भाव-संवेदना में प्रकृति का सौंदर्य परिवेश भी मुख्य है।

"शाम होने को हुई, लौटे किसान
दूर पेड़ों में बढ़ा खग-रव
धूल में लिपटा हुआ है आसमान
शाम होने को हुई, नीरव
तू न चेता
काम से थक कर
फटे-मैल वस्त्र में कमकर
लौट आये खोलियों में मौन।"[1]

किसान वर्ग दिन भर काम के बाद शाम को घर लौटता है। खग वृन्द भी अपने घोंसलों में लौटा है। आसमान में सूर्य पश्चिम दिशा की ओर अग्रसर हुआ है। थकावट के कारण किसानों का चेहरा फीका दिखाई देता है। उनके निर्मल चेहरे को आसमान शब्द से व्यक्त किया है। आसमान निष्कलंक एवं साफ होता है। शाम के वक्त आसमान पर लाल रंग छिड़ जाता है। धूल में काम करने के कारण कपड़े मैले हो गये हैं। यह गन्दगी लोक के कपड़ों में ही है। यह मेहनती सिद्ध होने की निशानी है। लेकिन लोक का मन साफ एवं कलंकरहित होता है। उनका मन आसमान की तरह फैला हुआ है। इस प्रकार प्रकृति एवं मानव के मेल का सामंजस्य पूर्ण अभिव्यक्ति यहाँ की गयी है। शमशेर लोक के नज़दीक ही है।

---

1. शमशेर : कविताएँ व कुछ और कविताएँ (प्र.सं. 1984) : पृ. 32

सर्वेश्वर की कविता 'फसल' में लोक का सौन्दर्य दिखायी देता है -

"कल जब फसल उगेगी लहलहायेगी
मेरे न रहने पर भी हवा से इठलायेगी
तब मेरी आत्मा सुनबहरी धूप बन बरसेगी
जिन्होंने बीज बोया था उन्हीं के चरन परसेगी
काटेंगे उसे जो फिर वही उसे बोयेंगे
हम तो कहीं धरती के नीचे दबे सोयेंगे।"[1]

सर्वेश्वर का कहना है कि धरती के नीचे दब कर सोने में ही लोक का सुख महसूस किया जा सकता है। लोक के जीवन में नये ढ़ंग की ताज़गी भरने की कोशिश हुई है। लोक का अस्तित्व स्वतंत्र होने वाला है। सभी बेड़ियों को ये लोग तोड़ने वाले हैं। किसानों ने कड़ी मेहनत से खेत में बीज बोया है, वे ही फसल काटेंगे। ये दृश्य देखने के लिए कवि उतावला हो रहा है। कवि की इच्छापूर्ति के लिए लोक का जागरण अवश्यभावी है। तभी कवि की आत्मा के द्वारा आनंदवर्षा होगी। धरती के चारों ओर फसल लहलहाने की इच्छा करता है। कवि लोक के यथार्थ से जुड़कर अपनी संवेदनशीलता को व्यक्त करता है। लहलहाते हुए फसल को देखने में ही लोक का आनंद है।

भवानीप्रसाद मिश्र की कविताओं में लोक जीवन के विविध दृश्यों का वर्णन मिलता है। लोक को अपने जीवन के भिन्न प्रकार के आयामों

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना : खूँटियों पर टँगे लोग (प्र.सं. 2004) : पृ. 180

से गुज़रना पड़ता है। लोक की ज़िन्दगी संघर्षों से भरी रहती है। इन संघर्षों को झेलने वालों में उन्होंने सौंदर्य देखा है -

"गाँव, इसमें झोंपड़ी है, घर नहीं है
झोंपड़ी के फटकियाँ हैं, दर नहीं है
धूल उड़ती है, धुएँ से दम घुटा है
मानवों के हाथ से मानव लुटा है।"[1]

भवानी प्रसाद मिश्र ने इस कविता मे सौंदर्य का नग्न चित्र प्रस्तुत किया है।

कुंवरनारायण की कविता 'बीज और मिट्टी' में धरती के प्रति लगाव देख सकते हैं। मानव को अपना अस्तित्व चारों ओर के परिवेश पर होना है। धरती भी उनके लिए अभिन्न बनती है।

"कुछ पल मिट्टी के जीवन में
मुझ को खो जाने दो
एक बीज इस दीर्घ गर्भ में
मुझको रख जाने दो
धरती के अनादी चिन्तन में
एक अंश अकुलाए इस उद्भव भी एक विकलता
मुझ को बो जाने दो।"[2]

कवि का संवेदन पक्ष धरती से कभी भी पृथक नहीं हो पाता। 'स्थानीयता' लोक की एक प्रमुख विशेषता है। जगत् पंचभूतों से लोक का

1. भवानी प्रसाद मिश्र : गीतफरोश (प्र.सं. 1953) : पृ. 32
2. कुँवरनारायण : चक्रव्यूह (प्र.सं. 1976) : पृ. 64

तादात्म्य होता है। पृथ्वी, आकाश, आग, वायु और पानी ये तत्व मानव के लिए अमूल्य होते हैं। मिट्टी के गर्भ में कवि खुद को न्योछावर करता है। यही समर्पण लोक को सोचने के लिए बाध्य करता है। लोक को कविता में कवि भले ही दृश्य बद्ध करें या उसे सौंदर्य से मंडित करें या प्रकृति का प्रकट वर्णन करें, सामान्य लोगों के श्रम और संघर्ष को महत्व प्रदान करें फिर भी लोक कविता में सूक्ष्मानुभव है। वह कविता में पूरी तरह से संलग्न रहता है। उसे आरोपित नहीं दीखना है। जहाँ तक आधुनिक कविता का सवाल है, उसमें लोक रीतियाँ, लोक दृश्य एवं लोक सौंदर्य अपनी संलग्नता का परिचय ही दे रहे हैं।

आम आदमी के जीवन आयामों को उसकी वास्तविकता के विकराल प्रसंगों सहित प्रस्तुत करते हुए आधुनिक कविता अपनी ईमानदारी दर्ज करती है। इस प्रकार आधुनिक कवि प्रतिबद्ध सिद्ध होता है। "आज कविता की अदाकारी कर्म के रूप में है। वह न हथियार है न कोई साधन या माध्यम कवि कर्म से बढ़कर कविता कर्म आज अधिक प्रासंगिक है।"[1] कविता मनुष्य और मनुष्य के बीच ठोस जीवंत रिश्तों को खोजती हुई ज़ाहिर होती है। सौंदर्य का नया तेवर लोकबद्ध होने से आधुनिक कविता संभव बन सकी है। वह सामान्य बात नहीं है। अपनी पश्चिमोन्मुखता से आधुनिक कविता लोक सौंदर्य की खोज के माध्यम से बच सही। पहली बात कविता धरती पर आ गई। आज आदमी कविता में जीवित नज़र आने लगे। लोक सिर्फ स्थानीय न होकर बृहत्तर अर्थ व्यंजना में सक्षम हो गयी। सौंदर्य के इस नए तेवर ने भविष्य की कविता का रास्ता प्रशस्त किया है।

❖❖❖

1. ए. अरविन्दाक्षन : कविता का थल और काल (प्र.सं. 2001) : पृ. 57

अध्याय-5

आधुनिक कविता में लोक भाषा का विन्यास

भूमिका

भाषा मनुष्य के अनुभवों की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति हैं। भाषा के द्वारा मनुष्य के मन का स्पंदन प्रतिफलित होता है। उसकी संवेदना का संप्रेषण भी भाषा के माध्यम से होता है। भाषा मनुष्य के संपूर्ण जीवन आयामों को उजागर करती है। इसलिए भाषा सामाजिक परिवेश से सदैव जुड़ी रहती है। कविता की भाषा में सामाजिक उन्मुखता गुंफित रहती है। यही सामाजिक उन्मुखता कविता की भाषिक स्थिति को लोकधर्मी बनाती है। अपने अनुभव-आकलन में जब कविता सामाजिकता को आत्मसात करती तो सामाजिक जीवन के मूल स्रोतों तक जाने के लिए वह बाध्य होती है। यह कविता की यात्रा है। वह एकायामी ढंग से प्रस्तुत नहीं हो सकती। उसे परंपरा के अनगिनत पक्षों से जुड़ना होता है। इस प्रक्रिया में कविता जीवन के लोकपक्ष के करीब आ जाती है और वह लोक भाषा के अलग-अलग रूपों को भी आत्मसात करती है।

भाषा और संवेदना

भाषा मनुष्य की अस्मिता की पहचान है। स्थूल और सूक्ष्म शब्द एवं अर्थ के द्वारा भाषा गगन चुंबी वृक्ष सरीखा आकार ग्रहण कर लेती है। भाषा सच का बयान करने वाली है। भाषा से कविता अपना प्रतिसंसार रचती है। मौन को तोड़कर भाषा भाव को प्रकट करती है।

भाषा के दो रूप मिलते हैं - सामान्य भाषा और काव्य भाषा। सामान्य भाषा बोलचाल की भाषा है। सामान्य भाषा में भाव तो संप्रेषित होते हैं, पर उसका कोई निर्धारित रूप नहीं होता है। सामान्य अर्थ-संप्रेषण बोलचाल की भाषा द्वारा संभव है। काव्य भाषा सामान्य भाषा से भिन्न है। वह एक तरह की विशिष्ट भाषा भी है। उसमें काव्याँगों का मिश्रण तो होता है और प्रत्येक शब्द सामान्य अर्थ के अतिरिक्त विशेष अर्थ भी वह प्रदान करता है। सामान्य भाषा का भी काव्य भाषा के रूप में प्रयोग होता है। लेकिन उसके लिए सामान्य भाषा के भीतर काव्य भाषा का सृजन करता है। अर्थात् काव्य भाषा अनुभूतिपरक सूक्ष्मधर्मी भाषा है।

काव्य भाषा की विशेषता ही उसकी संवेदनात्मक सघनता है। "काव्यभाषा अर्थ की सीमा को बाँधती नहीं है बल्कि 'गिरा अर्थ जल बीचि सम' की तरह अर्थ की अनन्त छायाओं और संभावनाओं की ओर संकेत करती है, एक अर्थ में वह पाठक को रचना के उस बिन्दु पर खींचती है, जहाँ से अर्थ का उत्सर्जन होता है।"[1] काव्य भाषा के विशिष्ट होने का अर्थ है उसका संवेदनात्मक होना है। काव्य भाषा की अपनी एक परंपरा है। भाषा की इस परंपरा पर ही हर युग का कवि प्रयोग कर सकता है। भाषा की जीवंत परंपरा को अपनी नई संवेदनात्मक ऊर्जा से प्रदीप्त करना ही सार्थक कवि का लक्ष्य है। ऐसे ही वह अपनी भाषा का सृजन करता है और वह संवेदनात्मक होती है। "भाव भाषा पर क्रिया करता है, तो भाषा भी भाव पर क्रिया करती है। भाषा एक जीवंत परम्परा है। शब्दों में एक स्पंदन है।"[2]

---

1. रामस्वरूप चतुर्वेदी : काव्य भाषा पर तीन निबन्ध (प्र.सं. 1989) : पृ. 6
2. डॉ. नंदकिशोर नवल : शताब्दी की कविता (प्र.सं. 2001) : पृ. 164

मानवीय संवेदना को संवेद्य बनाने में काव्य भाषा खास महत्व रखती है। "श्रेष्ठ कविता में अनुभवगत संप्रेषणीयता और अभिव्यक्तिगत संप्रेषणीयता का अलग-अलग बोध नहीं होता। उसमें अनुभव और अभिव्यक्ति परस्पर अविच्छिन्न होते हैं और उनमें पारस्परिक क्रिया-प्रतिक्रिया चलती रहती है।"[1] इस घात-प्रतिघात से गुज़रने वाला कवि ही सशक्त संप्रेषणीयता से युक्त और प्रभाव की दृष्टि से गतिशील कविताएं लिख पाता है और उसके अनुसार भाषा भी गढ़ता है।

लोक भाषा और संवेदना

लोक अपनी आस्था और जिजीविषा के माध्यम से सदा सौंदर्य के सृजन के लिए संघर्षशील है। इसकी पूर्णता के लिए वह प्रथमतः भाषा पर हावी होता है। लोक में शब्दों की अर्थवत्ता सदा पारदर्शिता के साथ रहती है। भाषा का फूल लोक के बीच ही खिलता है। लोक से अलग होने पर यह फूल मुरझाकर झड़ जाता है। इस फूल के लिए जीवन रस लोक की मिट्टी से ही प्राप्त होता है। "यह लोक की भूमि भाषा का ही नहीं बल्कि उस भाषा में रचे जा रहे साहित्य का भी मूलाधार है। रचना की नब्ज़ जब डूबने लगती है, साँस जब उखड़ने लगती है तब लोक ही उसे आँक्सीजन देकर पुनर्जीवन प्रदान करता है।"[2] सच्चा साहित्य लोकजीवन या लोक भाषा की अवहेलना नहीं कर सकता है। वह लोकधर्मी होता है। लोक की जीवन दृष्टि में श्रम का सौन्दर्य निहित रहता

---

1. डॉ. नंदकिशोर नवल : कविता की मुक्ति (प्र.सं. 1996) : पृ. 20
2. एकान्त श्रीवास्तव : कविता का आत्मपक्ष (प्र.सं. 2006) : पृ. 114

है। वह वास्तविक जीवन विडम्बनाओं का ढ़ेर होता है। ऐसे अनुभवों को झेलने की ताकत कविता की भाषा में प्रतिरोधी विकल्प सृजित करता है। संवेदनात्मक पक्ष का क्षरण हो रहा है तो लोक द्वारा कविता एक हद तक इसका प्रतिरोध कर सकती है। नव औपनिवेशिक दबाव में पड़कर लोक का स्वत्व छीन लिया जा रहा है। इसके खिलाफ कविता की भाषा सक्रिय बनती है। कवियों ने सृजन के अन्तर्गत कविता की प्रादेशिकता को स्पष्ट किया है जो लोक से संबद्ध है। "आज लोक की ज़रूरत ज़्यादा है क्योंकि लोकभाषाओं का क्षेत्र हमारे साँस्कृतिक जीवन का बहुत बड़ा महत्वपूर्ण हिस्सा है। इसके बिना हम अपना साँस्कृतिक दृश्य पूरा नहीं कर सकते। यह काम लोक कविता ही कर सकती है बशर्ते वह अपने ही जन और उनकी संवेदनाओं से होकर उसकी उन अर्थ छवियों तक जाए।"[1] लोक भाषा द्वारा सांस्कृतिक पतन को प्रतिरोधित किया जा सकता है। लोक भाषा को ग्रामीण परिवेश तक सीमित करना उसका अवमूल्यन करना ही है। "लोक भाषा शब्द का प्रयोग किसी सीमित-संकुचित अर्थ में नहीं कर रहा हूँ बल्कि व्यापक रूप में, किसी काल-विशेष में, जनता भाषा का इस्तेमाल जितने रूपों में करती है, वह सब लोक भाषा के अंतर्गत आता है।"[2] लोक की समग्रता से कविता अपना रिश्ता जोड़ लेती है। लोक संस्कृति, सभ्यता, समाज में व्याप्त सभी विद्रूपताओं को लोक भाषा में स्थान प्राप्त है। इस स्थिति की वास्तविक का पता लगाने के लिए भाषा को संवेदनशील होना है और लोक- धर्मी भी ।

---

1. भगवत रावत : कविता का दूसरा पाठ (प्र.सं. 1993) : पृ. 96
2. कृष्णचन्द्र लाल (सं) : कठिन समय में शब्द (प्र.सं. 2001) : पृ. 115

लोक भाषा में आम जीवन ही बिम्ब के रूप में प्रकट होता है। आम जीवन का श्रम ही उनका सौन्दर्य होता है। मज़दूर, निर्धन किसान और आबादी के शोषण ग्रस्त सभी हिस्सों को 'जनता' कह सकते हैं। "लोक जीवन में बहुत रस और आनंद है, जो जीवन ज़िन्दादिली से ओतप्रोत है, उसमें लोक गीतों की तरंग और लोक त्योहारों की रंगीनी है, पर यह सच्चाई है कि लोक जीवन व्यथा और संघर्ष से भरा हुआ है।"[1] काव्य-भाषा की विशिष्टता के बारे में बताया जा चुका है। विशिष्ट काव्य भाषा संवेदना की वाहक शक्ति है। जब काव्य भाषा लोक भाषा की रंगत के साथ अवतरित होती है तो संवेदना का गुणात्मक विकास होता है। कारण यह है कि लोक भाषा का मूल रूप विशिष्ट काव्य भाषा है जो सहज रूप से संवेदनात्मक है। लोक के संश्लेषण से काव्य भाषा का अंतस्थल अधिक व्यापक, मनुष्यधर्मी, संघर्षशील बन जाता है। लोक के कई रूप काव्य भाषा पर प्रभाव डाल सकते हैं। वह सामान्य लोक शब्द संश्लेषण से लेकर काव्य कलेवर को पूरी तरह से भी लोक युक्त बनाने तक है। लोक भाषा आधुनिक कविता की प्रयोगधर्मी दृष्टि ही नहीं है बल्कि वह कविता की आत्मा की यथास्थिति भी है।

आधुनिक कविता और लोक-जगत का पारस्पर्श

कवि का रचनाकर्म संपूर्ण सामाजिक जीवन उसके संबन्ध का द्योतक होता है। संवेदनशील कवि के जीवन कर्म और रचना कर्म में एकता होती है। वह मनुष्य की चेतना उसके सामाजिक अस्तित्व के

---

1. नंदकिशोर नवल : यथा प्रसंग (प्र.सं. 1992) : पृ. 86, 87

अनुरूप बनती है। "महत्वपूर्ण रचनाकार जनता के कर्मशील जीवन से रचना की प्रेरणा और अंतर्वस्तु ग्रहण करते हैं तथा लोक भाषा की सृजनशीलता से अपनी रचना की भाषा को समृद्ध करते हैं।"[1] रचना की भाषा लोक की मूल संवेदनाओं का तफसील करती है। इसी लोक संवेदनाओं को उभारते हुए नागार्जुन हमारे सामने आते हैं।

प्रगतिशील कवि त्रयी

नागार्जुन के जीवन के अनुभवों में विविधता है, काव्य के आस्वाद और भाषा की विविधता का अनुभव वैविध्य से घनिष्ठ संबन्ध है। उनकी काव्यचेतना का आधार मानववादी है। नागार्जुन समाज के अंतर्विरोध को समझते हैं, इस अंतर्विरोध से जुड़े हुए अत्याचार और उत्पीड़न का अनुभव करते हैं। श्रमिक जनता से नाता जोड़ते हैं। देश की साधारण जनता से कवि का लगाव जितना गहरा होता कविता का लोक उतना आत्मीय होता। कवि की संवेदना भी सघन बन जाती है। गंभीर यथार्थ से काव्य की जीवनी शक्ति भी पुष्ट होती। उदाहरणार्थ नागार्जुन की कविता 'जया' की पंक्तियाँ -

"वह बोल नहीं सकती
लेकिन उसकी भी अपनी भाषा है
काफी है सूझ-समझ उसमें, दुःख है, अभिलाषा है
माँ-बाप गरीब, न कर सकते कुछ प्रतीकार बहरापन का
सोचा होगा, पकड़ा देंगे, कोई पथ जीवन-यापन का

1. मैनेजर पाण्डेय : शब्द और कर्म (प्र.सं. 1997) : पृ. 262

बन सकती है वह चित्रकार
ले सकती है वह नाच सीख
जिससे न किसी पर पड़े भार
जिससे ने माँगनी पड़े भीख
लेकिन यह तो बस सपना है।"[1]

नागार्जुन ने यहाँ लोक जीवन की यथार्थता को प्रस्तुत किया है। इस कविता में गूँगी और बहरी लड़की का एक रेखाचित्र ही प्रस्तुत किया गया है। वह कुछ सुन या बोल नहीं सकती है। उसके माँ-बाप गरीब होने के कारण इस बदनसीबी से उबर नहीं सकते हैं। कवि के मन में इस लड़की के प्रति सहानुभूति का भाव उमड़ता है। भाषा की सामान्यता के माध्यम से यह कविता लोक युक्त हो जाती है। उसकी अभिधात्मकता में ही कविता की व्यंजना शक्ति प्रकट होती है।

नागार्जुन की कविताएँ 'आदमी की दम तोड़ती ज़िन्दगी की तकलीफों और संघर्षों' को लेकर संवेदनात्मक पक्ष ज़ाहिर करती है। साथ ही उनका मानवतावाद समाज के अंतर्विरोधों के खिलाफ एक सजग रचनाकार की भूमिका निभाता है। साधारण जनों की विपदाग्रस्त ज़िन्दगी को उन्होंने शब्दबद्ध किया है। नागार्जुन की काव्य-चेतना का सक्रिय सबूत उपरोक्त काव्यांश में दर्ज है। जनजीवन के साथ उनकी निकटता तो स्पष्ट होती है और तदनुकूल आत्मीय भाषा भी व्यंजित है।

---

1. नागार्जुन : चुनी हुई रचनाएँ (प्र.सं. 1985) : पृ. 26

नागार्जुन की रचनाशीलता मुख्य रूप से गाँव के साथ जुड़ी हुई है। 'सिन्दूर तिलकित भाल' गाँव के प्रति उनकी संवेदनशीलता की सुन्दरतम अभिव्यक्ति है। गाँव के भिन्न-भिन्न पहलुओं और ग्रामीण जनता की आकाँक्षाओं से कविता अपनी प्रकृति ग्रहण करती है। गाँव की आत्मीयता के प्रति कवि का मन सहज भावों को प्रकट करता है -

"याद आता मुझे अपना वह 'तरउनी' ग्राम
याद आतीं लीचियाँ वे आम
याद आते मुझे मिथिला के सुचिर भू-भाग
याद आते धान
याद आते कमल, कुमुदिनि और तालमखान
याद आते शस्य-श्यामल जनपदों के
रूप-गुण-अनुसार ही रखे गये वे नाम।"[1]

कवि की लोकधर्मी भावना यहाँ व्यंजित हुई है। संवेदनशील कवि लोक पक्ष को तलाशता रहता है। यहाँ कवि का मन श्यामल जनपद को खोजता-फिरता है। अपने गाँव की याद में कवि की आस्था तीव्र है। प्रकृति भी उनकी रागात्मक दुनिया में अनेक स्तरों पर फैली है और वह अनेक अनुभूति प्रवण प्रसंगों को उभारती है। प्रकृति कवि में आस्था, विनम्रता, सहजता और दृढ़ता भर देती है। इसके कारण वे जीवन की प्रसन्नता और सहजता को बरकरार रखने के लिए प्राकृतिक उपादान का उपयोग करते हैं। प्रकृति के प्रति नागार्जुन की संवेदना गहरी होती है। ऐसी संवेदना के

---

1. नागार्जुन : चुनी हुई रचनाएँ (प्र.सं. 1985) : पृ. 30

तहत मनुष्य की जिजीविषा भी युक्त रहती है। उनकी 'आत्मा की बाँसुरी' की पंक्तियाँ -

"बहुत दिनों के बाद
अब की मैं ने जी भर भोगे
गंध-रूप-रस-शब्द-स्पर्श सब साथ-साथ इस भू पर।"[1]

जीवन संघर्ष के पलों में वे प्रकृति के लगाव के माध्यम से मन में उल्लास भरने की कोशिश करते हैं। गहरे तनाव के बाद कवि ने गंध-रूप एवं शब्द का अनुभव किया। ये पाँच तत्व मानव के इन्द्रिय से जुड़े हैं। नाक, आँख, जिह्वा, कान, और त्वचा-मानव की संवेदनाओं को जगाती हैं। प्रकृति एवं परिवेश का अनुभव वास्तविक रूप में कवि ने संप्रेषित किया है। इस भूमि से कवि का अटूट संबंध दिखाई देता है। मिट्टी से कवि अलग नहीं होना चाहता।

इस कारण से नागार्जुन की काव्य भाषा का अंतरंग लोक जीवन की तरलता से युक्त है। साथ ही साथ लोक जीवन के संघर्ष के कठिन पक्षों को भी उनकी भाषा व्यक्त करती है। उसका एकमात्र लक्ष्य जीवन के साथ का गहरा जुडाव है। भाषा के ये भिन्न रूप कविता की जैविकता को सुरक्षित रखते हैं।

कविता की भाषा के मामले में त्रिलोचन अतीव सूझ-बूझ रखनेवाले कवि है। उनके पास भाषा विशिष्ट संस्कार सुरक्षित है। त्रिलोचन की

---

1. नागार्जुन : चुनी हुई रचनाएँ (प्र.सं. 1985) : पृ. 51

भाषा लोक जीवन की देन है। इसलिए लोकजीवन की अंतरंग पर्तों से ही वे भाषा का सृजन करते हैं।

त्रिलोचन की कविता 'पीडा के नीचे भाषा' की पंक्तियाँ -

"पीड़ा के नीचे भाषा अब दबी पड़ी है
आँखों, साँसों, मुखरेखाओं में गहराई उतर चली है
स्वर के यंत्रों पर लहराई अवरोह की निरंतरता
कौन सी घड़ी है जब जीवन सेना विनाश से नहीं लड़ी है
और लड़ाई यह अब तक ठहरी ठहराई नहीं किसी दिन।"[1]

त्रिलोचन ने इन पंक्तियों में सर्वहारा की पीड़ा को व्यक्त किया है। अवाम की भाषा उनकी पीड़ा के तले दबी-कुचली पड़ी रहती है। यह वर्ग तानाशाही वर्ग के खिलाफ कुछ बोल नहीं पाता है। इन लोगों के लिए जीवन एक संघर्ष है। संघर्ष से भिड़ते-लड़ते ये लोग जीने के लिए अभिशप्त हैं। इसके बावजूद भी यह वर्ग श्रमशील बनते हैं।

'नगई महरा' नामक लंबी कविता में गाँव की ज़िन्दगी में व्याप्त विषमता, रूढ़ियाँ और पिछड़ेपन अदि कविता में चित्रित हुए हैं। 'नगई महरा' अशिक्षित गरीब तथा निम्नवर्ग का होते हुए भी प्रगतिशील चेतना का नायक है। उसमें काम करने की शक्ति, ताकत तथा कुशलता के साथ-साथ बोलने-चलने तथा उठने-बैठने का भी ढ़ंग है। उसमें शिष्टता तथा नम्रता भी है। नगई का परिवार छोटा है, फिर भी रोटी के लिए कठिन

---

1. त्रिलोचन : फूल नाम है एक (प्र.सं. 1985) : पृ. 33

परिश्रम करना पड़ता है। 'नगई' समग्र सर्वहारा वर्ग का प्रतिनिधि बनकर हमारे सामने उपस्थित है। सर्वहारा जीवन का एक पक्ष ही कविता में प्रबल है और उसकी लोकभाषा का भी। लोक भाषा के कारण कविता गहन अनुभव में परिणत होती है। इस कविता में भाषा की सृजनशीलता के लिए लोक भाषा की अन्विति हुई है। भाषा का लोकत्व वस्तुतः उक्त कविता का अपनत्व है। उसके अभाव में वह कविता जीवित नहीं हो सकती है। कहीं-कहीं विवरणात्मक कहीं और व्यक्ति पर केन्द्रित या फिर लोक-आस्थाओं से परिपूर्ण यह कविता लोक भाषा की नई भंगिमा को व्यक्त करती ही है।

"गाँववाले इधर उधर कहते थे
नगई
सामना हो जाने पर कहते थे
नगई भगत
नगई कहार था
अपना गाँव छोड़ कर
चिरानीपट्टी आ बसा।"[1]

अभिधात्मक विवरण के भीतर से कविता जनम ले रही है और लोक भाषा की संभावनाएँ भी। "त्रिलोचन का जनपद बहुत बड़ा है। बहुत घनी आबादी वाला जनपद है - इतने तरह के लोग हैं, इतने चेहरे और स्वभाव। हर जन दूसरे से अलग। त्रिलोचन की कविता हमारे विराट

---

1. त्रिलोचन : ताप के ताए हुए दिन (प्र.सं. 1983) : पृ. 64

सामाजिक जीवन की विविधताओं की कविता है। विशेषकर ग्रामीण जीवन की विविधता की कविता।"[1] त्रिलोचन अपने भावों को बहुत ही सहजता के साथ भाषा में आरोपित करते हैं। 'चम्पा काले-काले अच्छर नहीं चिन्हती' नामक कविता में वे लोक बोली का संस्कार प्रस्तुत करते हैं। इसकी सृजन प्रक्रिया के दौरान चम्पा के लहजे में गाँव की एक अनपढ़ युवती की स्वाभाविक सहजता को दर्शाया गया है। गँवई जीवन का एक लघु प्रसंग इसमें मिल जाता है और उसका भाषा संस्कार भी।

त्रिलोचन जीवन संघर्ष तथा आत्मविश्लेषण के कवि हैं। वे जीवन की रीति-नीति, आस्था-अनास्था, आशा-निराशा तथा किसान जीवन की विभिन्न छवियों का वर्णन करते हैं। त्रिलोचन की चेतना मूलतः किसानी चेतना है। अपनी संवेदन शील रचनाओं के प्रति उनका विश्वास गहरा है। जीवन में व्याप्त संघर्ष और दुःख को, उसकी वास्तविकता को त्रिलोचन कभी झुठलाता नहीं है। स्वानुभूत जीवन का रूपायन उनकी रचना में होता है। उसके लिए जिस तरह की भाषा की आवश्यकता है उसके बारे में उनकी गहरी सूझ-बूझ है -

"जीवन इसका जो कुछ है पथ पर बिखरा है।
तप तप कर ही भट्ठी में सोना निखरा है।"[2]

इस कविता की भाषा में लोक अपनी सहजता के साथ उभरा है।

---

1. डॉ. हरिनिवास पाण्डेय : प्रगतिशील काव्यधारा और त्रिलोचन (प्र.सं. 2000) : पृ. 91
2. त्रिलोचन : उस जनपद का कवि हूँ (प्र.सं. 1981) : पृ. 11

त्रिलोचन की कविता में 'लोकधर्म' का संप्रेषण भी मिलता है। "लोकधर्म' साधारण जनों के विद्रोह की विचारधारा है। लोक धर्म का प्राण उसका विद्रोह है।"[1] त्रिलोचन की लोकचेतना विद्रोह करती हुई गतिशील रहने वाली है। यही गतिशीलता लोक का अपना स्वभाव है। लोक भाषा एवं बोली को कविताओं में सहज ढंग से अभिव्यक्त किया गया है। यही सहजता त्रिलोचन की खासियत है।

त्रिलोचन की कविताओं में सामान्य रूप से हिन्दी भाषा की धरती बोलती है। वे 'भाषा की लहरों में जीवन की हलचल' महसूस करने वाले हैं। उनकी कविता की संवेदनशीलता ने मानवतावाद को विस्तृत प्रदान की है। त्रिलोचन की कविता 'मानवता की जय होगी' में जीवन की सक्रियता ही प्रस्तुत है -

"मानवता की जय होगी -
धोखे पर धोखा खा खा कर भी यह विश्वास नहीं टूटा है -
मेरा अब तक : किन्तु धैर्य जब जब छूटा है।
जीवन चेतन है, यह बिलकुल नापा जोखा।"[2]

त्रिलोचन जीवन को चेतनमय मानते हैं। अपनी रचना में वे टूटते हुए मनुष्य को प्रश्रय देते हैं। लोक जीवन चेतनामय है। उसके मन में कोई आशंका या दहशत की आवश्यकता नहीं है। "उसके जीवन - संघर्ष का स्वर भी जुझारू या लडाकू नहीं है बल्कि बहुत कुछ अपने को उद्‌बोधन

---

1. नामवर सिंह : दूसरी परम्परा की खोज (प्र.सं. 1982) : पृ 80
2. त्रिलोचन : फूल नाम है एक (प्र.सं. 1985) : पृ. 28

देने जैसा है। उसमें संकल्प का ओज है, वह दहकती हुई आग नहीं जो अन्याय और असमानता को जलाकर राख कर दे। इसीलिए उसके क्राँति के आह्वान में भी एक शाँत है। गंभीर मंत्रण का पुट है।"[1] त्रिलोचन के जीवन संघर्ष की आँच भीतर को प्रकाशित करती है, बाहर की ओर प्रकट नहीं होती।

केदारनाथ अग्रवाल की काव्य-भाषा में भी लोक पक्ष के अनेक रूप दृष्टिगत होते हैं। आज मानवीय संवेदना का क्षरण हो रहा है। इस क्षति से कविता को लोक स्वर ही बचा सकता है। "लोक मेरे लिए एक दृश्य है अगणित चाक्षु-बिम्बों की एक नीहार का लोक लोक कहता भी है मुझ से कि तुम दृष्टा बन जाओ सिर्फ निहारते रहो, निरखते रहो, देखते रहो लोक कहता है कि जो आँख से देखता हूँ, उसे प्रमाण मानता रहूँ।"[2]

लोक प्रतीकों की अपनी दुनिया होती है। लोक सरल और भोला होता है। विश्वास-चालित होता है।

केदारनाथ अग्रवाल की कविता 'जनता का बल' की पंक्तियाँ -

"मुझे प्राप्त है जनता का बल
वह बल मेरी कविता का बल
मैं उस बल से
शक्ति प्रबल से

---

1. गोविन्द प्रसाद (सं) : त्रिलोचन के बारे में (प्र.सं. 1981) : पृ. 50
2. सं. पीयूष दईया : लोक (प्र.सं. 2002) : पृ. 382

एक नहीं-सौ साल जिऊँगा
काल कुटिल विष देगा तो भी
मैं उस विष को नहीं पिऊँगा
मुझे प्राप्त है जनता का स्वर
वह स्वर मेरी कविता का स्वर
मैं उस स्वर से
काव्य प्रखर से
युग जीवन के सत्य लिखूँगा।"[1]

इस कविता में प्रकटतः कोई लोक रस झलकता नहीं है। फिर भी इस कविता में जनता के व्यापक जीवन को उसके प्रति कवि की आस्था को व्यक्त किया गया है। यह एक विप्लवी लोक आस्था है। कविता को लोक के लिए समर्पित किया गया है। इसलिए लोक के रूढ़ शब्दों के अभाव में भी लोक भाषा का लचीलापन इस कविता में मिल जाता है।

केदार में किसानी चेतना का भाव भी नज़र आता है। वे किसानी चेतना के पक्षधर है। 'श्रम का सूरज' संकलन की कविताएँ इसी भावना को दर्ज करती हैं -

"धीरे से पाँव धरा धरती पर किरनों ने
मिट्टी पर दौड़ गया लाल रंग ललुवों का
छोटा सा गाँव हुआ केसर की क्यारी सा
कच्चे घर डूब गये कंचन के पानी में

---

1. केदारनाथ अग्रवाल : कहें केदार खरी खरी (प्र.सं. 1982) : पृ. 128

डालों की डोली में लज्जा के फूल खिले
ऊषा ने मस्ती से फूला को चुम लिया।"[1]

इस काव्याँश में केदार ने भोर का वर्णन किया है। भोर का तारा उदित होने पर पूरा गाँव केसरिया रंग का बन जाता है। गाँव में कच्चे घर होते हैं, जो सूरज की किरणों में कंचन जैसे चमकने लगे। पौधों में फूल खिल गये हैं। सूर्य के उदित होने का दृश्य पूरी तन्मयता के साथ यहाँ प्रस्तुत किया गया है। मनुष्य का जागरण प्रकृति के जागरण के साथ ही संभव होता है। सूर्योदय से चारों ओर का माहौल प्रकाशित होता है। अंधेरा मिटकर नया प्रभात आता है। इस नये प्रभात में लोक की अटूट आकाँक्षायें निहित हैं। केदार की काव्य भाषा में सरल और अभिधात्मक बिम्बधर्मिता की प्रवृत्ति तो मिलती है। अपनी अभिधात्मक भाषा में वे एक जीवन परिदृश्य को, एक स्वप्न को अनुभूति से संजोकर रखते हैं। ऐसे प्रकरणों में अभिधात्मक कविताओं का अंतरंग विस्तृत होने लगता है। उनकी काव्यभाषा की विशिष्टता का कारण यही है।

कवि का आत्म संलाप सही प्रतीत होता है जो भाषा के प्रकरण में मुख्य ही है। केदारनाथ अग्रवाल की कविता 'न चारण हूँ - न चाटुकार' की पंक्तियाँ -

'न चारण हूँ - न चाटुकार'
न स्वार्थ-साधक साहित्यकार मैं हूँ एक
स्वाभिमानी कवि-वकील, बाँदा का निवासी

---

1. केदारनाथ अग्रवाल : श्रम का सूरज (प्र.सं. 1996) : पृ. 121

गाँव से आया
गाँव के संस्कार लिये
जातीय जन जीवन की
भाषा स्वीकार किये।"[1]

केदार की ये पंक्तियाँ अपनी स्थानीयता से युक्त है और स्व परिचय भी। लोक में स्थानीयता का बड़ा महत्वा होता है। इसी स्थानीयता से मनुष्य अपनी परम्परा को ग्रहण करता है। अपनी परम्परा को केदार ने भी ग्रहण किया है। इसी परम्परा से उनको गतिशील संस्कार प्राप्त हुआ है। हर मनुष्य की अपनी भाषा होती है जो उसे स्वत्व का बोध दिलाती है। गाँव की परम्परा से संस्कार ग्रहण करके उन्होंने अपनी संवेदना का विस्तार किया है। इसी संवेदना का संप्रेषण केदार ने इस कविता में किया है।

"कविताओं में जो मैं ने लिखा
उसे मैं ने
अपने में आप
और दूसरों के साथ जिया
फिर इस जिये को जीवंत शब्दों से संप्रेषित किया।"[2]

प्रस्तुत पंक्तियाँ केदार की सामाजिक सद्भावना को व्यक्त करती हैं। केदार की रचनायें अनुभव के ताप में से उपजी हैं। कविताओं में चारों ओर का वास्तविक जगत् स्थान ग्रहण करता है। मनुष्य के जीवन पथ को कविता प्रकाशमान बना देती है। "लोक जीवन के ताज़े और स्वाभाविक

---

1. केदारनाथ अग्रवाल : बोले बोल अबोल (प्र.सं. 1985) : पृ. 138
2. वही : पृ. 141

चित्रों की अनुपस्थिति से कविता की एकरसता का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। ग्राम जीवन के कुछ अधिक निकट आज के गीत ही पहुँचते हैं, लेकिन कुल मिलाकर इस बात की ज़रूरत बनी हुई है कि कविता को गाँव जाना ही चाहिए।"[1]

आधुनिक कविता के इस कवि-त्रयी की कविताओं में और भाषिक संवेदना में पर्याप्त समानता है। जीवन यथार्थ से और उसकी अभिधात्मकता से उनकी काव्य भाषा का उत्तरोत्तर विकास हुआ है। इस कवि-त्रयी की काव्य भाषा में प्रकट सरल भंगिमा के भीतर लहलहाते धान के खेत की तरह भरा पूरा जीवन भी उपलब्ध मिलता है। वस्तुतः उसी जीवन की बारीकियों को कविता में उतारना उनका उद्देश्य रहा है। भाषा के लोक पक्ष का भी उन्होंने भरपूर उपयोग किया है।

प्रगतिशील कवि-त्रयी की तुलना में आधुनिक कवियों की काव्य भाषा कुछ ज्यादा ही जटिल और आधुनिक जीवन के बहुरंगी वैविध्य को तथा जटिल जीवन संदर्भ को व्यक्त करता है।

आधुनिकता की लोकबद्ध भाषा

अज्ञेय आधुनिकता से प्रभावित कवि हैं। हिन्दी में आधुनिक कविता को संभव बनाने में उनकी विशेष भूमिका रही है। आधुनिक कवियों ने प्रकृति को कविता में प्रस्तुत करना ही नहीं बल्कि प्रकृति के उस साहचर्य को महसूस करने का कार्य भी किया है। इस अर्थ में उनकी

---

1. ए. अरविन्दाक्षन : कविता का यथार्थ (प्र.सं. 2003) : पृ. 102

बहुसंख्यक कविताएँ पारिस्थितिकी कविता की श्रेणी में आती हैं। यह लोक का सामान्य रूप है।

"कविता में व्यक्त मिट्टी या कि जीवन प्रियता का महत्व, ठेठ ग्रामीण जीवन की प्रामाणिक बिम्ब माला और तद्भव शब्दावली पर बल - ये सभी तत्व अपनी आन्तरिक एकता के कारण रचना के खरे संघटन को संभव बनाते हैं, और कवि के व्यक्तित्व में भाषा और संवेदनता के बढ़ते हुए संतुलन को व्यक्त करते हैं।"[1] अज्ञेय की कविता की भाषा की प्रकृति आरंभ से ही ठेठ और तद्भव है। उनकी कविता की भाषा में संवेदनात्मकता व्याप्ति मिलती है। देशज शब्दों का भी प्रयोग भी उन्होंने किया है। ऐसे प्रयोग करने से जीवन और कविता का नाता अधिक दृढ़ हो जाता है। लोकव्यवहार पर ज़्यादातर तद्भव शब्द या देशज शब्दों से ही तफसील होती है। इन्हीं शब्दों में अज्ञेय की काव्य भाषा की सृजनात्मक मूल रहस्य छिपा है। 'असाध्यवीणा' में समग्र जीवन यथार्थ की व्यंजना तद्भव देशज शब्दों द्वारा ही हुई है। इस लंबी कविता में भाषा और संवेदना के महत्वपूर्ण सन्तुलन को उभारा गया है। इसके कारण भाषिक स्तर जनसाधारण से काफी गहरे रूप में मिला जुला है। अज्ञेय की कविता में व्यक्ति सत्ता के अंशदान की भावना झलकती है, जो समष्टि के प्रति श्रद्धा को दर्ज करती है। जिजीविषा का उत्कट रूप भी दृष्टिगत होता है। रचनाकार को उन्मुक्त भाव से कृति के प्रति खुद को समर्पित करना है। उसकेलिए कविता की भाषा सक्रिय होनी है।

---

1. रामस्वरूप चतुर्वेदी : अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या (प्र.सं. 1968) : पृ. 35

भाषा की सक्रियता को प्रकट करने के लिए 'कलगी बाजरे की' नामक कविता सार्थक सिद्ध होती है। -

"नहीं कारण कि मेरा हृदय उथला या कि सूना है
या कि मेरा प्यार मैला है
बल्कि केवल यही ये उपमान मैले हो गये हैं
देवता इन प्रतीकों के कर गये है कुच
कभी बासन अधिक घिसने सं मुलम्मा छूट जाता है।"[1]

इन पंक्तियों से व्यक्त होता है कि अतिप्रयोग के कारण पुराने जो उपमान हैं उनकी ताज़गी घटने लगी है, कुछ कम मर्मस्पर्शी रह गये हैं। तारिका, कुई, चम्पाकली आदि के स्थान पर 'बिछली घास' और 'बाजरे की कलगी' जैसे साधारण एवं नये उपमान प्रयोग किये गए हैं। 'मुलम्मा छूट जाना' लोक में प्रचलित मुहावरा है। 'बासन' तो बर्तन ही है। पर 'बासन' लोक प्रचलित साधारण बोलचाल का शब्द है। जिस प्रकार बर्तन को ज़्यादा घिसने से उसकी मुलायमियत नष्ट होती है, उसी प्रकार लगातार प्रयोग करने से शब्दों की भी चमक-सुन्दरता कम होती जाती है। 'शहरातियों' शब्द के द्वारा कवि ने आधुनिक सभ्यता की अतिकृत्रिमता के प्रति अपने मन की समूची ऊब को व्यंजित किया है। लोक स्वर के निकट पहुँचने से कविता बहुत सुन्दर बन जाती है। लोक की भाषा भी एकदम सक्रिय होती है। यही सक्रियता कविता और समाज को जोड़ती है।

---

1. डॉ. जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव और डॉ. जितेन्द्रनाथ पाठक - अस्मिता (प्र.सं. 2003) : पृ. 7

अज्ञेय की कविता 'कतकी पूनो' में भी कविता-भाषा का नया तेवर मिलता है।

"छिटक रही है चाँदनी
मदमाती, उन्मादिनी
कलगी और सजाव ले
कास हुए हैं बावले
पकी ज्वार से निकल शशों की जोड़ी गयी फलाँगती
सन्नाटे में बाँक नदी की जगी चमक कर झाँकती
कुहरा झीना और महीन
झर-झर पड़े आकासनीम
उजली-लालिम मालती
गन्ध के ड़ोरे डालती
मन में दुबकी है उलास ज्यों परछाई हो चोर की
तेरी बाट अगोरते ये आँखें हुई चकोर की।"[1]

अज्ञेय ने यहाँ प्रकृति का वर्णन अत्यंत बेजोड़ ढ़ंग से किया है। खेत, कुहरा, रात, चाँदनी का वर्णन अत्यंत ज़िन्दादिली से प्रस्तुत किया गया है। यह प्रकृति के सौंदर्य और समाज की आस्था को व्यापक बनाने का परिश्रम ही है। जिस प्रकार प्रकृति ताज़ी लगती है उसी प्रकार लोक में भी ताज़गी की उम्मीद कवि करता है। "लोक का बोलचाल की भाषा में अर्थ पृथ्वी, संसार, विश्व, मानव जाति आदि से लगाया जाता है। लोक शब्द का अर्थ जन-साधारण ही है। जो चाहे ग्रामीण हो या शहरी उसमें

---

1. अज्ञेय : पूर्वा (प्र.सं. 1965) : पृ. 223

विशेषता इतनी ही है कि वो शिक्षा-दीक्षा, आचार-विचार, रहन-सहन, संस्कार, व्यवहार में उस देश का प्रतिनिधित्व करता हो। लोक शब्द में मानव के संपूर्ण जीवन के आदर्श मूल्य समाहित है।"[1] अज्ञेय ने अपनी कविता में ऐसे आदर्श मूल्यों को पूरी तन्मयता के साथ अभिव्यक्त किया है। देशज और तद्भव शब्दों के प्रयोगों ने कविता की अनुभूति सूक्ष्मता को लोक जीवन के निकट लाकर खड़ा कर दिया है।

मुक्तिबोध की काव्य यात्रा चालाक और आततायी शासन व्यवस्था के खिलाफ खड़ी होने वाली है। अपनी संभावनाओं को नष्ट करके जीवन बिताते वाली पीड़ित जनता मुक्तिबोध की कविता में है। इस खोये हुए रूप को खोजते हुए 'अंधेरे में' नामक कविता प्रस्तुत होती है। अनेक मानव-चरित्रों की आत्मा के इतिहास का वास्तविक परिवेश इस कविता में संजोया है -

"अब अभिव्यक्ति के सारे खतरे
उठाने ही होंगे
तोड़ने होंगे ही मठ और गढ़ सब
पहुँचाना होगा दुर्गम पहाड़ों के उस पार
तब कहीं देखने मिलेंगी हम को नीली झील की
लहरीली थाहें
जिसमें कि प्रतिपल काँपता रहता
अरुण कमल एक।"[2]

---

1. मधुमति : स. अजित गुप्ता : (लोक का स्वर) (प्र.सं. 2003) : पृ. 38
2. सं. नेमिचन्द्र जैन : मुक्तिबोध रचनावली (प्र.सं. 1980) : पृ. 348

मुक्तिबोध ने जीवन की अभिव्यक्ति को भाषागत अभिव्यक्ति से अभिन्न रूप में जोड़कर प्रस्तुत किया है। अभिव्यक्ति के लिए कवि को संघर्ष करना होगा। इसके लिए उठाने वाले खतरों को भी उन्होंने स्पष्ट किया है - मठ और गढ़ को तोड़कर ही भाषा की अभिव्यक्ति होगी। उसी प्रकार दुर्गम पहाड़ को पार करके 'अरुण कमल' को पाना भी जोखिम का कार्य ही है। किसी भी हालत में मुक्तिबोध भाव की व्यंजना चाहते है। "कवि मुक्तिबोध - के लिए अस्मिता की खोज व्यक्ति की खोज नहीं बल्कि अभिव्यक्ति की खोज है। एक कवि के नाते उनके लिए परम अभिव्यक्ति ही अस्मिता है। भाषा स्वभावतः इस अभिव्यक्ति का आधार है।"[1] इस तरह कवि ने अस्तित्वहीन समाज को कविता के द्वारा नयी दिशा देने का प्रयास किया है। कविता में व्याप्त 'अंधेरे' वातावरण को उजियारा बनाने का श्रम कविता की वास्तविक कोशिश है। इस नये आलोक से मुक्तिबोध पूरे वातावरण को पारदर्शी बनाना चाहते हैं।

'चम्बल की घाटी में' नामक कविता इसी प्रकार उजड़े हुए गाँव की हालत ज़ाहिर करती है। चारों ओर डरावना सा माहौल व्याप्त है - मुक्तिबोध की 'चम्बल की घाटियाँ' नामक कविता की पंक्तियाँ -

"एक गाँव, धधक रहा
गरीबों का गाँव एक
बिना टाँव
खतरनाक लूट-पाट, आग, डकैतियां
चम्बल की घाटियाँ।"[1]

---

1. नामवरसिंह : कविता के नये प्रतिमान (प्र.सं. 1968) : पृ. 228
2. सं. नेमिचन्द्र जैन : मुक्तिबोध रचनावली-2 (प्र.सं. 1980) : पृ. 406

मुक्तिबोध ने यहाँ गरीबों के गाँव, जो शोषण की आग में भड़क रहा है, का वर्णन किया है। मनुष्य द्वारा मनुष्यों पर लूट-मार चल रही है। इस धधकने वाली आग को बुझाकर ही वहाँ व्यवस्थासंपन्न जीवन संभव हो सकता है। वहाँ आग लगने पर जनता चारों ओर भटक गयी है। यही भटकन मध्यवर्गीय जनता की कमज़ोरी बन गयी है। मुक्तिबोध की कविताओं में 'मैं' नायक बनकर आता है जो इन शोषित जनता का साथ देकर उनका प्रतिनिधित्व करता है - मुक्तिबोध की कविता 'जीवन यात्रा' की पंक्तियाँ -

"वहीं कहीं मैं भी
हाय-हाय करते हुए, भाग चले लोगों में भागता
गठरी है सिर पर
कन्धे पर बालक
फटे हुए अँगोछे से बँधी हुई
बच्ची है कसी हुई पीठ पर
बोझ है कई मन
यों मेरी कविता का बिना घर
बिना-छत गिरिस्तिन
जिसमें कि मेरा भाव
ज्वलन्त जागता
जिसे लिये हुये मैं
देख रहा ज़माने की गयी परिपाटियाँ।"[1]

---

1. सं. नेमिचन्द्र जैन : मुक्तिबोध रचनावली-2 (प्र.सं. 1980) : पृ. 407

मुक्तिबोध आत्मा की समीक्षा करते हुए नज़र आते हैं। आत्मचेतस् और विश्वचेतस् शब्द उनके अपने हैं। वर्तमान व्यवस्था से वे काफ़ी परेशान है और साथ ही गहरे अपराध बोध से त्रस्त हैं। मुक्तिबोध की कविता साधारण अर्थ में लोक कविता नहीं है। इसलिए उनकी कविता-भाषा भी लोकबद्ध नहीं है। लेकिन यदि उनकी कविता-भाषा का गहन अध्ययन करेंगे तो हमें मालूम होगा कि वे अपनी कविता-वस्तु को लोक से अलग नहीं मान रहे हैं। दरबारों तथा दरबारियों से युक्त होने के बावजूद उनकी 'भूल गलती' का जनाधार निर्विवाद है। उसी जनाधार संदर्भ में उनकी लोक भाषा झलकती है।

प्रकरतः ऊपरोक्त विश्लेषित मुक्तिबोध की कविताओं में लोक भाषा का कोई स्पष्ट विन्यास उपलब्ध नहीं है। लेकिन उनकी कविता के अंतरंग में कभी कोई गाँव, कभी कोई उजडी बस्ती कभी गरीब लोग कभी शोषित समाज और इन सबकी पीडाओं और वेदनाओं को वहन करने वाली बिंबात्मक, प्रतीकात्मक भाषाका प्रयोग मिलता है। वही उनकी लोक भाषा की भंगिमा प्राप्त होती है। लोक भाषा मुक्तिबोध के लिए अपरिचित नहीं है। पर उसमें ही वे प्रयोग नहीं कर रहे हैं। लेकिन उनमें लोक भाषा का विन्यास भी मिलता है जो व्यापक परिदृश्यों के विघटन के बीच यथार्थ को उसकी भयावहता के साथ प्रस्तुत करने के लिए है।

शमशेर की 'उषा' नामक कविता की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं -

"प्रात नभ था बहुत नीला शंख जैसे
भोर का नभ

राख से लीपा हुआ चौका
(अभी गीला पड़ा है)
बहुत काली सिल जरा से लाल केसर से
कि जैसे धुल गयी हो
स्लेट पर या लाल खड़िया चाक
मल दी हो किसी ने।"[1]

शमशेर ने इन पंक्तियों में 'सूर्योदय' का दृश्य अत्यंत सुखद ढ़ंग से वर्णित किया है। संवेदनशील कवि को ही इसकी शिनाख्त होती है। आकाश को 'शंख' की तरह पवित्र एवं सुन्दर माना है। सूर्य की पहली किरणों ने केसरिया रंग से काली रात को धो लिया है। प्रकृति का जादू यहाँ प्रस्तुत है। सूर्य का उदय सभी मानव को नयी प्रतीक्षा जगत् में ले चलता है। हर नयी सुबह मनुष्य में ताज़गी और नयी आकाँक्षायें भर देनेवाली होती है। "शमशेर के काव्य में भाव और बोध की गरिष्ठता तब और बढ़ जाती है जब वे भाषा की दिखाई पड़ने वाली सादगी में उसे मूर्त करते हुए भी अमूर्तन की ओर चले जाते हैं।"[2] शमशेर के काव्य की अन्दरुनी ताकत पाठक को अमूर्त जगत् की ओर ले चलती है। कवि के भाव बोध भाषा के तहत अपनी प्रबलता को दर्शाते हैं और पाठक में अपने अर्थ की अमिट छाप छोड़ देते हैं। इसी कारण उनकी भाषा सहज सरल होते हुये भी अमूर्त्त लोक की ओर उड़ चलती है।

---

1. शमशेर : टूटी हुई बिखरी हुई (प्र.सं. 1990) : पृ. 13
2. गोविन्द प्रसाद : कविता के सम्मुख (प्र.सं. 2002) : पृ. 54

अपने व्यक्तिगत दुख की गहराई को व्यक्त करने वाली एक कविता शमशेर ने लिखी है जिसका शीर्षक है 'एक पीली शाम'।

"एक पीली शाम।
पतक्षर का ज़रा अटका हुआ पत्ता
शान्त
मेरी भावनाओं में तुम्हारा मुखकमल
कुशम्लान हारा-सा।
(कि मैं हूं वह मौन दर्पण में तुम्हारे कहीं?)
शिथिल पल में
स्नेह काजल में
लिये अद्‌भुत रूप कोमलता
अब गिरा, अब गिरा वह अटका हुआ आँसू
सान्ध्य तारक-सा
अतल में।"[1]

घनीभूत वेदना को इस कविता में व्यक्त किया गया है। ध्यान देने की बात यह है कि इसके लिए उन्होंने प्रकृति परक प्रतीकों और बिम्बों का सहारा भी लिया है। यह उत्प्रेरणा लोक मानस से युक्त कवि के पास ही हो सकती है। पीली शाम की उदासी और अटके हुए पते की स्थिति को अपने व्यक्ति मन से जोड़ने के लिए लोक मानस जरूरी है। शमशेर की कविता-दृष्टि में उनकी यह लोक दृष्टि को अलग करके देखना कठिन है। लेकिन कई संदर्भों में वे लोक दृष्टि को प्रकट करते हैं। इसलिए उनकी

1. रघुवीर सहाय : आत्महत्या के विरुद्ध (प्र.सं. 1968) : पृ. 74

लोक दृष्टि अन्य कवियों की तुलना संश्लिष्ट है। उसके स्वरूप उनकी कविता भाषा भी संश्लिष्ट है।

रघुवीर सहाय की कविताओं में आरंभ से ही काव्य भाषा की शक्ति- संपन्नता नज़र आती है। नये क्षेत्र और नयी स्थितियाँ कवि के सम्मुख नये काव्यानुभव प्रदान करती हैं। अपने परिवेश को ठोस रूप में, बारीकी के साथ कवि प्रस्तुत करते हैं। रघुवीर की कविता 'फिल्म के बाद चीख' -

"न सही यह कविता
यह मेरे हाथ की छटपटाहट सही
यह कि मैं घोर उजाले में खोजता हूँ आग
जबकि हर अभिव्यक्ति
व्यक्ति नहीं
अभिव्यक्ति
जली हुई लकड़ी है न कोयला न राख।"[1]

रघुवीर सहाय की राय में कविता में व्यक्ति की नहीं समष्टि के जीवंत यथार्थ की अभिव्यक्ति होती है। संवेदना जागृत होने के कारण कवि अपनी बेचैनी को कविता-चित्र में आकार देता है। स्थूल जगत् में अजीब अस्त-व्यस्तता छायी रहती है। उच्चवर्ग के पैरों तले निम्नवर्ग दबा-कुचला रहता है। इस हालत से सर्वहारा वर्ग की मुक्ति कवि का लक्ष्य है। तानाशाही वर्ग के जिरह बोलने के लिए कवि 'आग' की खोज करता है।

---

1. रघुवीर सहाय : आत्महत्या के विरुद्ध (प्र.सं. 1968) : पृ. 9

यह 'आग' रचनाकार की भीतरी दुनिया है। भीतरी दुनिया की ताकत के बूते पर कवि सृजन करता है। पर यह आग कोई राख का ढ़ेर नहीं है। सशक्त अभिव्यक्ति किसी बाहरी ताकतों के आगे चूक नहीं सकती। भाषा की सर्जनात्मकता जीवन के साथ की भागीदारी के बगैर कविता में मुमकिन नहीं है। जीवन की रचनात्मक अंतर्क्रिया से उत्पन्न कविताएँ वास्तव में जीने के कर्म की समृद्ध परिभाषा है।

रघुवीर अपनी रचना में जीने के कर्म को परिभाषित करते हुए लोक को आत्मविश्वास के पथ पर लाने का यत्न करते हैं। 'आत्महत्या' के विरुद्ध की अधिकाँश कविताएँ लोक में व्याप्त मूल्यहीनता को संप्रेषित करती है। लोक यथार्थ के प्रति कवि का जो जुड़ाव है वह उसके सृजन क्षेत्र को व्यापक बना देता है। लोक की असुरक्षित हालत को शब्द द्वारा 'वे नेता क्षमा करेंगे' कविता में बयान करते हैं -

"मैं ने कोशिश की थी कि कुछ कहूँ उनसे
लेकिन जब कहा तुम को प्यार करता हूँ
मेरे शब्द एक लहरियाता दोगाना बन
उकडूँ बैठे लोगों पर भिन्न भिनाने लगे
फिर कुछ लोग उठे बोले कि आइए
तोड़े - पुरानी - फिलहाल मूर्तियाँ
साथ न दो हाथ ही दो सिर्फ उठा।"[1]

---

1. रघुवीर सहाय : आत्महत्या के विरुद्ध (प्र.सं. 1968) : पृ. 34

समाज में भाषा का अवमूल्यन इस कदर हो चुका है कि भाषा अपना असली अर्थ प्राप्त नहीं कर पा रही है। इसी कारण जनता कवि की बातों पर ध्यान नहीं दे रही है। 'मैं तुम्हें प्यार करता हूँ' जैसे महत्वपूर्ण कथन के अर्थ को तानाशाही नेतृत्व ने भ्रष्ट एवं मूल्यहीन बना दिया है। फिलहाल वर्तमान भाषा अवमूल्यन की शिकार बनी हुई है। इसको बचाने के लिए रघुवीर जनता से सार्थक रिश्ते की तलश करना चाहते हैं। अंतिम पंक्तियों द्वारा कवि की कोशिश यह रही है कि जनता से कवि के रिश्ते को ईमानदार और सर्जनात्मक आयाम देने की प्रक्रिया का बयान करते हैं। भाषा का निरर्थक साबित होना बहुत ही पीड़ा जनक है। वर्तमान का यथार्थ बहुत जटिल है। कविता का अप्रकट लोक ही इसे संप्रेषण-समर्थ करता है।

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की रचनायें लोक की परेशानियों को केन्द्र बनाकर लिखी गई हैं। समाज की पूँजीवादी व्यवस्था का वे प्रखर रूप में विरोध करते हैं। लोक जीवन के परिप्रेक्ष्य से अपने रचना कर्म को जोड़ने का प्रयास इनमें दृष्यव्य है। तानाशाही वर्ग के प्रतिरोध में उनका वक्तव्य बहुत ही तीखा महसूस होता है 'एक बस्ती जल रही है' नामक कविता की पंक्तियाँ - "शब्द यदि बुलेट होते। तो वे तानाशाहों की छाती पर बैठे होते।"[1] कवि के पास केवल शब्द ही है। ये शब्द जीवंत अर्थों को जन्म देते हैं। यहीं से उनकी भाषा का विस्तार होता है।

---

1. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : कुआनो नदी (प्र.सं. 1993) : पृ. 64

सर्वेश्वर लोक जीवन के परिप्रेक्ष्य में अपनी रचना का सृजन करते हैं। लोक से हटकर वे सृजन नहीं कर पाते। - 'यह खिड़की' नामक कविता की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं -

"किसी असमर्थ की प्रतीक्षा से
बन्द कमरे की घुटन बेहतर है
जिसने खुद अपनी ज़बान काट ली हो
उससे नहीं बोलूँगा
अब मैं यह खिड़की नहीं खोलूँगा
माना कि नीचे एक चलती सड़क है
और उस पर एक अर्थहीन शोर है।"[1]

विजयदेवनारायण साही अपने आन्तरिक एकालाप की भावना को लेकर सृजन क्षेत्र में लोक यथार्थ को व्यक्त करते हैं। वे अपनी रचनाधर्मिता को सहज रूप में प्रस्तुत करते हैं। लोक के पक्षधर बनकर के कबीरदास से संवेदनशीलता की माँग रखते हैं। कबीरदास की वाणी लोक भाषा की अमिट छाप को प्रस्तुत करती है। ऐसे लोक कवि को साही अपना परम गुरु मान लेते हैं। कबीर की रचनाओं में लोक पक्ष ही उभरकर आता है। सामान्य जनता के पक्ष में खड़े होकर कबीर ने अपनी सहानुभूति को व्यक्त किया है। उसी प्रकार साही ने भी अपनी संवेदना को लोक की चेतना से गहरे रूप में जोड दिया है -

"परम गुरु
दो तो ऐसी विनम्रता दो

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना : गर्महवाएं (प्र.सं. 1969) : पृ. 13

कि अन्तहीन सहानुभूति की वाणी बोल सकूँ
और यह अन्तहीन सहानुभति पाखण्ड न लगे
दे तो ऐसा कलेजा दो
कि अपमान, महत्वाकाँक्षा और भूख
की गाँठों में मरोड़े हुए
उन लोगों का माथा सहला सकूँ।"[1]

साही के मत में आज के विश्रृंखल परिवेश में कवि की एक बड़ी जिम्मेदारी यह है कि सामाजिक यथार्थ वस्तुस्थितियों के साथ रचनाओं में प्रस्तुत हो जाये। वस्तु जगत् की अभिव्यक्ति के लिए कवि को अन्तहीन सहानुभूति की ज़रूरत है। यह सहानुभूति पाखण्डमय नहीं होनी चाहिए। साही उस लोक का माथा सहलाना चाहते हैं जो अपमान, महात्वाकाँक्षा और भूख की गाँठों में तबाह होते रहे हैं। ऐसे आवेग को जताने के लिए कवि को सहृदयता की आवश्यकता होनी है। समाज में व्याप्त इस विषैले वातावरण में सब कहीं दहशत-आतंक मचा हुआ है। इसको ज़िन्दादिली से व्यक्त करने के लिए कवि को निरीहता चाहिए। निरीह कवि ही वास्तविक दुनिया की हालत को खुले रूप में प्रस्तुत कर सकता है। इस प्रकार कवि की सहानुभूतिपरक आवेग की अभिव्यक्ति ही लोक की भाषा बनती है। साही की लोक भाषा में अनुभव यथार्थ के साथ प्रतिरोध का स्वर भी मुखरित है।

"दो तो ऐसा कलेजा दो
कि अपमान, महत्वकांक्षा और भूख

---

1. विजयदेव नारायण साही : साखी (दू.सं. 1994) : पृ. 53

की गांठों में मरोड़े हुए
उन लोगों का माथा सहला सकूँ
और इसका डर न लगे
फिर कोई हाथ ही काट खाएगा
दो तो ऐसी निरीहता दो
कि इस दहाड़ते आतंक के बीच
फटकार कर सच बोल सकूँ
और इसकी चिंता न हो
कि इस बहुमुखी युद्ध में
मेरे सच का इस्तेमाल
कौन अपने पक्ष में करेगा।"[1]

साही की कविता की भाषा में लोक भीतरी जागृति के रूप में विन्यसित है। कबीर के साथ तादात्म्य के कारण ही उनमें यह सहजता आयी है। भाषा का बिना किसी लाग-लपेट के साथ प्रयोग कबीरी अन्दाज़ तो व्यक्त है तथा लोक बद्धता भी।

केदारनाथ सिंह निरन्तर अपनी रचना के भीतरी परिदृश्य में लोक की चुनौतियों को स्वीकार करते हैं। कई प्रकार की विड़म्बनाओं का सामना करते हुए उनकी कविताएँ आशावादी दृष्टिकोण को प्रबल बनाती है। उनके कविता में ग्राम्य जीवन और शहरी जीवन की विषमता और टकराहट वास्तव में संवेदना, अनुभूति और अभिव्यक्ति के स्तर पर उजागर होती है। "केदारनाथ सिंह के काव्य में जो लयात्मक ध्वनि और

---

1. विजयदेव नारायण साही : साखी (प्र.सं. 1994) : पृ. 32

प्रगीतात्मक संरचना पाई जाती है, वह लोक जीवन की जानी - पहचानी अनुगूँज है, जो अपने प्रतिबद्ध भावबोध से पारदर्शी बिम्ब की सर्जना अपनाती है। उनकी काव्य रचनाएँ गाँव - चौपाल, कस्बे - देहात के भूले - बिसरे चित्रों को संकेतधर्मी अर्थों में उकेरती है।"[1] केदार की रचनायें समग्रतः संवेदना की धरोहर की पूँजी है। केदारनाथ सिंह की 'कस्बे की धूल' नामक कविता पूरे देश को लोक में परिवर्तित किया है -

"दिन की आखिरी बस जा रही है
कस्बे में भर गयी है धूल
एक बेहद चिकनी और गाढ़ी धूल
जिसे मैं जानता हूँ
मैं जानता हूँ क्यों कि यह धूल
इस कस्बे की
और मेरे पूरे देश की
सब से ज़िन्दा और खूबसूरत चीज़ है
सबसे बेचैन
सब से सक्रिय
पृथ्वी की सब से ताज़ा
और प्राचीनतम धूल।"[2]

इन काव्यांशों में केदारनाथ सिंह 'कस्बे की धूल' के ज़रिए अपने गाँव की स्थानीयता को प्रकट करते हैं। इस धूल में लोक की ताकत है

---

1. सं. अनिल त्रिपाठी : मिट्टी की रोशनी (प्र.सं. 2007) : पृ. 58
2. केदारनाथ सिंह : अकाल में सारस (प्र.सं. 1988) : पृ. 32

और सौंदर्य भी है। 'धूल' सदा सक्रिय होती है। पूरे देश की अभिव्यक्ति यहाँ प्रस्तुत है। 'धूल' मानव की परम्परा को याद दिलाती है। इस प्रकार अपने गांव के प्रति गहरी संवेदना को ज़ाहिर करते हैं। जीवन का पारदर्शी रूप इनकी कविताओं में उभर आता है।

केदार लोकचेतना से सरोकार रखनेवाले कवि हैं। जीवन के कटु यथार्थ और उसकी विसंगतियों का बयान उनकी कविताओं की अंतर्वस्तु है। उपिवेशवादी ताकत ने भारतीय जनमानस को जाति-धर्म-भाषा और क्षेत्र के नाम पर विभक्त किया है। आत्म विवेचन की शैली में केदार इस प्रसंग को प्रस्तुत करते है। 'सन् 47 को याद करते हुए' नामक कविता की पंक्तियाँ -

"तुम्हें नूर मियाँ की याद है केदारनाथ सिंह
गेहँए नूर मियाँ
ठिगने नूर मियाँ
रामगढ़ बाज़ार से सुर्म बेचकर
सबसे अंत में लौटने वाले नूर मियाँ
.....
एक दिन अचानक तुम्हारी बस्ती को छोड़कर
क्यों चले गये थे नूर मियाँ।"[1]

इन पंक्तियों के द्वारा केदार पुरानी यादों को ताज़ा करने की कोशिश करते हैं। वैश्वीकरण के दौर में भटकनेवाली जनता को वे

---

1. केदारनाथ सिंह : अकाल में सारस (प्र.सं. 1988) : पृ. 35

अनदेखा नहीं कर पाते हैं। बहुत सचेत रूप में उन्होंने अपनी यादों की बारात सजायी है। 'नूर मियाँ' का चित्र पाठकों के सामने अत्यंत सजीव ढ़ंग से प्रस्तुत किया है। विघटित मानवीय संवेदनाओं से प्रतिशोध करने वाले प्रतिबद्ध कवि के रूप में वे उपस्थित हैं। भारतीय मन की बनावट और बुनावट के संसार को वे रचनाओं में संजोते हैं। रचनाकार का मन आस्था और प्रतिबद्धता के अभाव में बनजारा सरीखा बन जाता है। यहाँ उनकी भाषा सपाट है। उसकी सपाटता में कथा की प्रमुखता है। 'नरेटीव' मोड़ है। वह मोड कविता को इधर से उधर और उधर से इधर ले चलता है। कविता की भाषिक संरचना इतिहास में मानो गोता लगा रही है। उसी में भाषा की लोकचेतना भी स्पष्ट होती है।

केदारनाथ सिंह की रचनाओं में लोक यथार्थ की टकराहट से उपजी अनुगूँज दर्ज होती है। शब्दों के जादू से वे यथार्थ को मूर्त बनाते हैं। परिवेश में उपजनेवाली साँस्कृतिक-सामाजिक विकृतियों को वे प्रस्तुत करते हैं। युग के अन्तर्विरोधों को मानवीय संवेदना से शब्दचित्रों में उकेरता है। "रचनाकार भाषा की सिद्धि के द्वारा उस व्याकरण को हासिल करने का प्रत्यन करता है, जो सार्वभौमिक है।"[1] यह व्याकरण पूरे समाज का व्याकरण ही है। लोक के नब्ज़ को पहचानने की कोशिश केदार की कविता सिद्ध करती है। परिवेश में दृष्टिगत सभी वस्तुओं पर कवि की दृष्टि टिक जाती है। गहरे भावुकता के साथ वे रचना कर्म की ओर अग्रसर होते हैं -

---

1. सं. अनिल त्रिपाठी : मिट्टी की रोश्नी (प्र.सं. 2007) : पृ. 41

'कीड़े तो मरते रहते हैं
हर पल
हर क्षण
दुनिया को कुछ और साफ-सुन्दर करने को
मर जाते हैं कीड़े
मरना उनका
सुन्दरता के हित में है
फिर क्यों होती हैपीड़ा
जब कि सामने बिना चीख के
मरा पड़ा है कीड़ा।"[1]

केदार इस काव्याँश में कवि की भावुकता को प्रस्तुत करते हैं। केदार अपनी भावुकता को कीड़े की मौत के द्वारा व्यक्त करते हैं। जगत् भी सभी चल-अचल वस्तुओं पर कवि का ध्यान टिका है। प्रत्यक्ष जगत् की मन-मोहक वस्तुओं पर कवि का ध्यान आकर्षित होता है, उसी प्रकार असुन्दर वस्तुओं पर भी आकर्षित होता है। भावुक कवि के सामने दुनिया के सभी चीज़ों में सुन्दरता होती हैं। असुन्दर वस्तुओं को सुन्दर रूप में चित्रित करना कवि का धर्म है। सार्वभौमिक स्तर पर आनेवाली सभी चीज़ें कवि मन को संवेदनशील बना देते हैं। यह संवेदनशीलता कवि की भाषा को पुष्ट करती है। अपने परिवेश की किसी भी चीज़ को मृत-अचेत पाकर कवि मन तड़फड़ाता है। मोटे तौर पर उनकी भाषा का एक सहज पक्ष सामान्य जीवन मरते लोक जीवन और उसकी भाषा से ओतप्रोत है।

---

1. केदारनाथ सिंह : यहाँ से देखो (प्र.सं. 1983) : पृ. 36

'गंगा-जल' नामक कविता में कुंवरनारायण ने लोक हित की चर्चा की है। उनकी भाषा में लोक को आसरा देने की ताकत स्पष्ट है -

"गर्दन ऊँची करो, गंगा का दानी जल
लोक हित बहता है
वंशज भगीरथ के
उसका कल कल निनाद
जन वाणी कहता है; आओ, शक्ति बाँध
कमल वन के इसी क्रीड़ा जल में...
अछूती गहराइयों में उतरें....
अवगुंठित बल से इस धारा प्रवाह में
भय विहीन विहरें।"[1]

लोक का मानना है कि गंगा जल पापी को भी पुण्य प्रदान करता है। इस पुण्य से ताकत भी प्राप्त होती है। उसी प्रकार समाज के इस दूभर हालत से लोक का उन्नयन होना है। गंगा की संस्कृति लोक को आह्वान दे रही है। निड़र होकर, गर्दन ऊँचा करके, तनकर चलने की सलाह देती है। लोक का अतीत-वर्तमान सब समय पीड़ा ग्रस्त अनुभव का साक्षी बना है। पर भविष्य को उज्वल बनाना है। जीवन के दुःख को मिटाने के लिए संघर्षरत बनना है। गंगा की गतिशीलता के बहाने कुंवरनारायण लोक की गति की माँग प्रस्तुत करता है।

---

1. कुंवरनारायण : चक्रव्यूह (प्र.सं. 1976) : पृ. 102

आधुनिक हिन्दी कविता की लोकचेतना वादी दृष्टि को सामाजिक संपृक्ति देने का प्रयास हुआ है। कविता की सार्थकता जनोन्मुखी बनने से ही पूर्ण होगी। लोकचेतना कविता जगत् की विरासत है। उपर्योक्त सभी कवितायें इस प्रकृति को उद्भासित करती है। लोक भाषा का व्यापक परिवेश भी दृष्टिगत है। लोक भाषा सामान्य एवं असामान्य रूप में प्रकट हुई है। लोक का जगत् प्रत्यक्ष एवं पारदर्शी होता है। कवि के जीवन यथार्थ से इसका गहरा संबंध होता है। अपने भोगे हुये क्षणों को कवि वाणी देता है। पाठक गण को भी ये यथार्थ प्रभावित करता है। इसीको सहृदयता का भाव कहते हैं। यही भाव पाठक और सृजक के बीचे एक सेतु स्थापित करता है। इसी पुल से भावों का लेन-देन एवं संप्रेषण चलता है।

लोकभाषा का यथार्थ

आधुनिक कविता में लोक भाषा के तहत जीवन यथार्थ का चित्र खींचा गया है। लोक भाषा का हर एक शब्द मानव को सोचने के लिए बाध्य कर देता है। भाषा में शब्द और कवि कर्म निहित है। समाज में भाषा हीन और अर्थहीन बनानेवाली साजिशों के विरुद्ध कविता की भाषा नयी दिशा प्रदान करती है। लोक भाषा समाज में व्याप्त मानव जीवन के सन्नाटे को भंग करती है। कविता में शब्द द्वारा अर्थ का विस्तार होता है। लोक भाषा का यथार्थ समाज में व्याप्त छलनामय वातावरण को तहस-नहस कर देता। "कवि उस दुनिया का साक्षात्कार करता है जो पाठक या श्रोता के चारों ओर है पर उनकी दृष्टि से ओझल है। चीज़ें जो अर्थहीन है, निरर्थक लगती है, रचना में उजागर होकर एर नया अर्थ देने लगती

है। कवि अर्थहीन दुनिया को अर्थ देता है, शब्द हीन दुनिया को शब्द होता है, मौन को मुखर करता है। कविता शब्द और अर्थ की साधना है।"[1] लोक भाषा में परम्परा की उपस्थिति होती है। उसमें मानव के अनुभव भी बरकरार रहते हैं। इस मायने में रचनाकारों का दायित्व है कि उस भाषा को कालजयी बनाकर संजोकर बनाये रखें। भाषा के ज़रिए मूल्य भी सुरक्षित रख पायेंगे। मूल्य के साथ-साथ मनुष्यत्व की उच्च भावना भी उमर रह पायेगी। लोक में चेतना का कार्य भी लोक भाषा के अन्तर्गत पूर्ण होता है। अतः लोक भाषा में आकाँक्षाओं का उन्मेष भी जुड़ा रहता है। लोक कवि अपने चारों ओर की दुनिया में दमघुटकर जीने वाले अवाम को लेकर बेचैन होता है, यही सृजनकर की प्रतिबद्धता है। समग्र रूप में आम जनता की मुक्ति ही कविता की इच्छित दिशा होती है। वर्चस्ववादी समाज को नकारते हुए कविता की लोक भाषा अपना अहम दर्ज करती है। लोक भाषा का यथार्थ हाशिये पर जीने के लिए मजबूर मानव का खुला चित्र उपस्थित करता है। लोक भाषा का यथार्थ द्वारा ज़ाहिर होता है कि कविता हमेशा अवाम के साथ चलने वाली है। रचनाकार सामान्य मनुष्य को कविता के केन्द्र में स्थान देकर उनकी असुरक्षित अवस्थाओं के विरुद्ध अपनी दृष्टिसंपन्नता का उपयोग करता है। मानव मूल्यों पर आधारित संस्कृति की प्रतिष्ठा कविता द्वारा सृजनकार रचता है। उसके लिए उन्हें नवोन्मेष दायिनी भाषा की आवश्यकता है। लोक भाषा का सहारा वे इसलिए लेते हैं।

---

1. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी : कविता क्या है (प्र.सं. 1999) : पृ. 45

सामान्य जीवन की विसंगतियों को आकार देने के लिए सहज भाषा की ही ज़रूरत है। इस अर्थ में सहज ढ़ंग से लोक भाषा द्वारा अभिव्यक्ति पूर्ण होती है। लोकभाषा युक्त कवितायें पाठक के मन में अमिट छाप प्रदान करती हैं। पाठक को गहरे रूप में संवेद्य करने की कला लोकभाषा में निहित है। भाषा जीवन क्रियाओं उपजती है जिसमें मानवीय सभ्यता और संस्कृति भी निहित रहती है। लोक भाषा का स्रोत जीवन की राग-विरागमयी स्थितियों से उत्पन्न है। याने जीवन की समग्रता से।

इस प्रकरण में यह भी स्पष्ट करना आवस्यक है कि लोक गीतों या लोक काव्यों की भाषा की रीतियाँ आधुनिक कविता में ढूँढ़ना व्यर्थ है। आधुनिक कवि प्रथमतः और अंततः आधुनिक कविता है और उसकी विषयवस्तु आधुनिक जीवन के वैविध्यमय प्रसंग ही हो सकती है। उसकी भाषा पूर्णतः लोक भाषा नहीं हो सकती है। लेकिन आधुनिक कवि जब जीवन के महीन तंतुओं को पकडते हैं तो कविता में लोकजीवन का प्रसंग विवृत होता है जिसके लिए उसे लो भाषा का सहारा लेना पड़ता है। उसके दो रूप मिलते हैं। बहिरंग और अंतरंग। इतना अवश्य है कि आधुनिक कविता कहीं न कहीं आंशिक तौर पर या व्यापक तौर पर लोक भाषा का उपयोग करती है और काव्य भाषा को भी वह सृजनात्मक बनाती है और काव्यानुभवों को भी लोकभाषा की अभीष्ट स्थिति यही है।

❖❖❖

उपसंहार

उपसंहार

लोकचेतना रचनाकार की संश्लिष्ट अनुभूत्यात्मक स्थिति की सूक्ष्मतम अवधारणा है। साहित्य की सभी विधाओं में लोकचेतना का कोई न कोई अंश प्रकट होता है। कविता में लोकचेतना शब्द विन्यास से शुरू होकर, प्रकरण विन्यास से बढ़ती है और कभी-कभी वह पूरी रचना में व्याप्त मिलती है। उसके असंख्य रूप-रंग हैं, कई भंगिमाएँ है और कई परतें हैं। तुलसी या सूर की शास्त्रीय दृष्टि के बावजूद उनकी काव्य दृष्टि अधिकाधिक लोकबद्ध है। उनकी काव्यदृष्टि अधिकाधिक लोकबद्ध है। उनकी लोकचेतना की विभिन्न भंगिमाओं के कारण आज भी वह अधिक प्रासंगिक हैं। प्रेमचन्द की विषयवस्तु ग्रामीण होने से नहीं बल्कि लोकचेतना की बारीकियों को ग्रामीण संदर्भ में प्रस्तुत करने से उनका रचना संसार हमेशा लोक से लबालब भरा दीखता है। कहने का तात्पर्य यही है कि साहित्य, मोटे तौर पर, लोक की अभिव्यक्ति है। कविता लोक के बिना निसृत नहीं हो सकती।

प्रायः हिन्दी में नई कविता के नाम से अभिहित जो कविता है वही वैश्वविक संदर्भ में आधुनिक कविता हैं। उसके विकास में यूरोपियाई दृष्टि का काफी प्रभाव है। इसलिए इस प्रश्न का उठना संगत है कि यूरोपियन मोड़ेनिसम से प्रभावित आधुनिक हिन्दी कविता में लोकचेतना का क्या

मूल्य हो सकता है। यह तथ्य मान्य ही है कि आधुनिक कविता के अभ्युदय में यूरोपियन कविता का प्रभाव है। लेकिन आधुनिक हिन्दी कविता की आधारशिला इस मिट्टी पर टिकी हुई है। यहाँ की आबोहवा को पहचाने बगैर आधुनिक हिन्दी कविता क्या स्थान निर्धारित हो सकता है? अतः यह तथ्य आधुनिक हिन्दी कविता में स्पष्ट होता ही है, वह अपनी मिट्टी से भी विलगित कविता नहीं है। उसने जीवन की समग्रता को आत्मसात करने के दौरान लोक चेतना को आधुनिक कविता ने कसकर पकड़ा है और लोकचेतना से उद्भूत समग्र दृष्टि को अभिव्यक्ति दी है।

हिन्दी के प्रसिद्ध आलोचकों ने, यथा रामचन्द्रशुक्ल, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, नामवरसिंह ने लोकदृष्टि की विशद समीक्षा प्रस्तुत की है। जीवन यथार्थ की समग्रता के आकलन से रचना की जितनी समृद्ध होने के संभावना है उस पर उनका ध्यान गया है। तद्युगीन काव्य पद्धतियों से प्रभावित होने के बावजूद प्रत्येक श्रेष्ठ काव्य लोकबद्धता का निर्वाह भी करता आया है। इसी कारण से आज भी ये अतीत कालीन काव्य प्रासंगिक लगते हैं, क्योंकि इनमें जीवन की छोटी-बड़ी नानाविध स्थितियों और मनुष्येतर जीवन परिस्थितियों का आकलन भी हुआ है।

लोक जीवन, लोक विश्वास, लोक परम्परा, मिथक आदि तत्व कविता में निरंतर प्रकट नहीं हो सकते हैं। लेकिन इनका कहीं न कहीं स्पर्श रहता है। इन में से किसी एक तत्व के स्पर्श से भी कविता का एक नया लावण्य प्रस्फुटित होता है। लोक गीत या लोक गाथा का नया तेवर

आधुनिक कविता के कवि इसलिए अपनी कविता में प्रस्तुत करता है कि वह अपनी कविता को एक जीवंत परम्परा से जोड़ना चाहता है।

लोकचेतना मात्र आधुनिक कविता की ऐसी प्रवृत्ति नहीं है जिसका कोई पूर्वापर संबन्ध न हो। कविता की जीवंत परम्पराएँ निरंतर प्रवाहमान है। कविता की लोक चेतना की जीवंत परम्परा आज भी जीवंत है। विशेषकर आज के जटिल समय में इन जीवंत परम्पराओं की ओर कविता की उन्मुखता अपनी जीवंतता को पुनसृजित करने के लिए है। अतः कहा जा सकता है कि भले ही इस परम्परा को पहचानने की दृष्टि क्षीण पड़ गयी है, फिर भी कविता उसे सुरक्षित रखती है। लोकचेतना संबन्धी सारी चर्चाएँ इसी तथ्य की ओर हमें ले चलती हैं।

हिन्दी में आधुनिक कविता के लिए प्रचारित शब्द 'नई कविता' है। फिर भी उसकी अधिकाधिक व्याप्ति को सूचित करने के लिए आधुनिक कविता शब्द का प्रयोग किया गया है। सन् पचास से लेकर पैंसठ-सत्तर तक याने पूरी तरह से दो दशकों में व्याप्त तथा उसके पहले वाले और प्रगतिशील कवियों से युक्त बृहत्तर कविता समय आधुनिक कविता का है। इस काल की कविता में भारतीय जन जीवन का पूरा संक्रमण हम अनुभव कर पाते हैं। उसके कई रूप हैं। कविता ने जीवन के इस विस्तार को स्वीकार किया ही है।

आधुनिक कविता में यूरोपीय कविता का प्रकरण भी लक्षित होता है। लेकिन है वह हमारी मिट्टी की, अपनी धरती की। वह इस धरती से मुँह मोड़ नहीं सकती है। इसलिए कविता के भीतर से कविता का एक

अनन्य विकास देखने को मिलता है। वह है आधुनिक कविता की लोकोन्मुखता। आधुनिक कविता में लोकबद्ध दृष्टि के कई आयाम मिलते हैं। आधुनिक हिन्दी कविता ने कविता की लोक-परम्परा को जीवंत और सुरक्षित रखा है। याने कविता की विरासत को आधुनिक कविता में अनदेखा नहीं किया है।

कविता का लोक के साथ संबंध गहरा है। लोक का कोई न कोई रूप कविता से संपृक्त रहता है। प्राचीन काल से लेकर समकालीन कविता तक की कविता-यात्रा में इस के लिए अनेक उदाहरण मिलते हैं। यह एक बहुत बड़ा सच है कि कविता को अनिवार्यतः लोक से जुड़ना ही पड़ता है क्योंकि कविता के सामूहिक अवचेतन लोक से परिपूर्ण हैं। इसी से कविता में सहजता आती है। कविता की रचनात्मक संश्लिष्टता के बावजूद कविता इसी से अधिकाधिक संप्रेषणीय बन जाती है। निरंतर कविता से जुड़ने वाले लोक रुपों में लोक कथा का प्रमुख स्थान है।

कविता में पूर्ण रूप से या आँशिक रूप से कथाओं का संश्लेषण अपरिहार्य नहीं है। लेकिन कविताओं में यत्र-तत्र लोक कथायें संश्लेषित होती जाती हैं। इस प्रवृत्ति का संभावनापूर्ण रूप आधुनिक कथा-काव्यों में हम देख पाते हैं। कथा का संश्लेषण एक तरह से कविता की विषयवस्तु की माँग है, जिसके कारण कथा स्वयं सन्निविष्ट हो जाती है। कथा की मात्रा को लेकर कविता में कोई सुनिश्चित नियम तो नहीं है। अतः कुछ कवितायें पूर्ण रूप से कथावलंबी हैं तो कुछ कविताओं में कथा के आँशिक या अपूर्ण उल्लेख ही मिलते हैं।

कविता में कथा के इस संगुंफन को अन्तःसन्निवेश कहा जा सकता है। कविता के अन्तर्जगत को पूरी तरह से परिवर्तित करने में इन कथाओं का यदि योगदान है तो अन्तःसन्निवेश सफल हो जाता है या फिर वह असफल सिद्ध होता है। अतः अन्तसन्निवेशित कथा कविता में अलग इकाई नहीं बनती। वह कविता के आत्मजगत् का अभिन्न अंग बन जाती है और कविता की मूल उन्मुखताओं के साथ विकसित होती जाती है। इस तरह आधुनिक कविता में कथा का सन्निवेश एक याँत्रिक प्रक्रिया न होकर जैविक प्रक्रिया का रूप धारण करता है। वास्तव में इसी में कविता की उपलब्धि है।

लोक दरअसल कल्पनाधारित यथार्थ है। यथार्थ की कठोर भूमि में जाने वाले मनुष्य यथार्थ को कल्पना में तब्दिल करता है। तब उसकी आकांक्षाएँ, उसके स्वत्व, उसकी इच्छाएं पूर्ति की ओर अग्रसर होती प्रतीत होती है। लोक यथार्थ से भिडकर जीनेवालों का कलाबद्ध इच्छित यथार्थ है। इसलिए उसकी अभिव्यक्ति में - कविता में (अन्य कलाओं में) - लोक का स्वयमेव प्रवेश होता है - लोक कथा के रूप में या उनसे उत्पन्न होने वाले लोक मानस के रूप में। आधुनिक कविता ने इसका रचनात्मक प्रयोग किया है - प्रयोगपरकता के लिए नहीं बल्कि जीवन यथार्थ के उद्‌घाटन के लिए।

जब तक मनुष्य जिन्दा है तब तक वह अपने लोक से अलग नहीं हो सकता है। यह जीवन अनिवार्यता भी है। कविता की जडें, मनुष्य की ही तरह, लोक के भीतर तक जा चुकी होती है। इसलिए अनेक प्रकार

की लोक रीतियों के प्रसंग कविता में आते हैं। ये प्रसंग मात्र प्रसंग विशेष रूप में न रहकर व्यापक अनुभव के रूप में प्रस्तुत होते हैं। कविता के लिए यह आवश्यक है। कविता अनुभूतियों से ही सृजित हो, फिर भी यथार्थ का सन्निवेश उसमें होता है। लोक रीतियाँ उस यथार्थ को भी अनुभूत्यात्मक बना देती है। कविता का धरती से जोड़कर देखना विशाल अर्थ पारिस्थितिकी संवेदना का विस्तार है। ऐसी कविताएँ खूब लिखी गयी है। उन कविताओं में जो भू-संपृक्ति का तत्व है, जैसे मुक्तिबोध में मिलता है, उससे भिन्न तरह से अज्ञेय में मिलता है।

लोक दृश्य कविता में दृश्यता प्रदान करने के लिए नहीं है। वह कविता की स्थानीयता को बृहत्तर आयाम देने के लिए है। लोक में स्वत्व का महत्व है। वह हमें लघु संस्कृतियों पर विचार करने के लिए बाध्य करते हैं। वस्तुतः लोक लघु संस्कृति का संसार सृजित करता है। कविताओं में विन्यसित स्थानीयताओं से हम उसके इस बृहत्तर आयाम का अध्ययन भी कर पाते हैं। लोक यथार्थ और सामान्य यथार्थ में अंतर नहीं है। लेकिन कविता में लोक यथार्थ बहुआयामी सिद्ध होते हैं। कविता की सघनता के लिए यह आवश्यक है।

सौंदर्य का नया तेवर लोकबद्ध होने से आधुनिक कविता संभव बन सकी है। वह सामान्य बात नहीं है। अपनी पश्चिमोन्मुखता से आधुनिक कविता लोक सौंदर्य की खोज के माध्यम से बच सकी। पहली बात कविता धरती पर आ गई। आज आदमी कविता में जीवित नज़र आने लगे। लोक सिर्फ स्थानीय न होकर बृहत्तर अर्थ व्यंजना में सक्षम हो

गयी। सौंदर्य के इस नए तेवर ने भविष्य की कविता का रास्ता प्रशस्त किया है।

अन्य विधाओं की तुलना में कविता में भाषा की भूमिका अधिक महत्वपूर्ण है। कविता की भाषा सब से अधिक सघन होती है। इसलिए कविता-भाषा अधिकाधिक सूक्ष्मार्थी और बहु आयामी होती है। लोक भाषा का तात्पर्य लोक गीतों में प्रयुक्त होने वाली भाषा से नहीं है।

इस प्रकरण में यह भी स्पष्ट करना आवस्यक है कि लोक गीतों या लोक काव्यों की भाषा की रीतियाँ आधुनिक कविता में ढूँढ़ना व्यर्थ है। आधुनिक कवि प्रथमतः और अंततः आधुनिक कविता है और उसकी विषयवस्तु आधुनिक जीवन के वैविध्यमय प्रसंग ही हो सकती है। उसकी भाषा पूर्णतः लोक भाषा नहीं हो सकती है। लेकिन आधुनिक कवि जब जीवन के महीन तंतुओं को पकडते हैं तो कविता में लोकजीवन का प्रसंग विवृत होता है जिसके लिए उसे लोक भाषा का सहारा लेना पड़ता है। उसके दो रूप मिलते हैं। बहिरंग और अंतरंग। इतना अवश्य है कि आधुनिक कविता कहीं न कहीं आंशिक तौर पर या व्यापक तौर पर लोक भाषा का उपयोग करती है और काव्य भाषा को भी वह सृजनात्मक बनाती है और काव्यानुभवों की लोकभाषा की अभीष्ट स्थिति यही है।

इस अध्याय में आधुनिक कविता को संभव बनानेवाले कवियों की कविताओं का लोक भाषा के संदर्भ मं अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। प्रगतिशील कवियों की विषयवस्तु और भाषिक रीतियाँ शतशः लोक बानगी से युक्त है। इसलिए लोक भाषा का प्रकट रूप उनमें मिलते हैं।

आधुनिकता के बोध से परिचालित कविताओं में भाषा का विन्यास व्यापक पैमाने पर लोक रस से युक्त नहीं है, कुछ कविताएँ उन्होंने लोक कविताओं के आधार पर लिखी है। उनमें लोकभाषा की सहजता तो मिलती है। अन्य बहुसंख्यक कविताओं में, जिन्हें हम आधुनिक कविता कहते हैं, लोक भाषा का बहुत ही महीन पक्ष मिलते हैं। वह मुक्तिबोध से लेकर अज्ञेय तक में हैं। केदारनाथ सिंह और विजयदेव नारायण साही में भी है।

आधुनिक हिन्दी कविता में विषयवस्तु के स्तर पर शिल्प एवं भाषा के स्तर पर लोक चेतना उसकी अंतर्भुक्त काव्य चेतना है। कविता के आस्वादन के स्तर पर यह चेतना काफी सहायक सिद्ध होती है, क्योंकि कवि, कविता और पाठक के बीच में रचनात्मक और आस्वादनपरक स्थातत्य स्थापित करने में इसका महत्वपूर्ण योगदान है। लोक वस्तुतः परम्परा विमुख अन्तश्चेतना है। वही उसकी विरासत है। वही कविता की और कवि की जीवनी शक्ति है। सुखद तथ्य यह है तमाम वैश्विक जटिलताओं को आत्मसात करनेवाली आधुनिक कविता ने भी अपने अन्तरंग में परम्परा विमुख और भू-सापेक्ष लोक पक्ष को सुरक्षित रखा। यह तथ्य भी अमान्य नहीं हो सकती कि भविष्य की कविता को बनाने में इसका अधिक योगदान है।

❖❖❖

संदर्भ ग्रंथ सूची

कविता संग्रह

1. अकाल में सारस — केदारनाथ सिंह, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 1988

2. अनुक्षण — प्रभाकर माचवे, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी, प्र.सं. 1959

3. अरी ओ करुणा प्रभामय — अज्ञेय, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी, प्र.सं. 1959

4. अस्मिता — सं. जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव, जितेन्द्रनाथ पाठक, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, प्र.सं. 2003

5. आयाम — सं. विश्वनाथ गौड, ललित शुक्ल, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 1993

6.	आत्महत्या के विरुद्ध	रघुवीर सहाय राजकमल प्रकाशन, दिल्ली प्र.सं. 1968
7.	आंगन के पार द्वार	अज्ञेय भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन काशी प्र.सं. 1961
8.	उत्तर कबीर और अन्य कविताएँ	केदारनाथ सिंह राजकमल प्रकाशन, दिल्ली प्र.सं. 1995
9.	उस जनपद का कवि हूँ	त्रिलोचन राधाकृष्ण प्रकाशन दरियागंज, नई दिल्ली-02 प्र.सं. प्र.सं. 1981
10.	कहें केदार खरी खरी	केदारनाथ अग्रवाल परिमल प्रकाशन इलाहाबाद प्र.सं. 1983
11.	कुआनो नदी	सर्वेश्वरदयाल सक्सेना वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली प्र.सं. 2004
12.	कुछ कविताएँ कुछ और कविताएँ	शमशेर बहादूर सिंह राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली प्र.सं. 1984

13.	खूँटियों पर टंगे लोग	सर्वेश्वरदयाल सक्सेना वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली प्र.सं. 2004
14.	गीत फरोश	भवानी प्रसाद मिश्र सरला प्रकाशन, दिल्ली प्र.सं. 1953
15.	गर्म हवाएँ	सर्वेश्वर दयाल सक्सेना राधाकृष्ण प्रकाशन दरियागंज, दिल्ली-02 दूसरी आवृत्ति 1969
16.	चक्रव्यूह	कुँवरनारायण राजकमल प्रकाशन, दिल्ली प्र.सं. 1976
17.	जंगल का दर्द	सर्वेश्वर दयाल सक्सेना वाणी प्रकाशन, दिल्ली प्र.सं. 2004
18.	जो शिलाएँ तोडते हैं	केदारनाथ अग्रवाल परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद प्र.सं. 1986
19.	टूटी हुई बिखरी हुई	सं. अशोक वाजपेयी राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली प्र.सं. 1990
20.	ठंडा लोहा	धर्मवीर भारती भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन दिल्ली प्र.सं. 1969

21.	ताप के ताए हुए दिन	त्रिलोचन संभावना प्रकाशन, दापुड प्र.सं. 1983
22.	धरती	त्रिलोचन संभावना प्रकाशन, दापुड प्र.सं. 1943
23.	नागार्जुन की चुनी हुई रचनाएँ	सं. शोभाकान्त मिश्र वाणी प्रकाशन, दिल्ली प्र.सं. 1985
24.	परिवेश हम तुम	कुंवरनारायण राजकमल प्रकाशन, दिल्ली प्र.सं. 1961
25.	प्रतिनिधि कविताएँ	रघुवीर सहाय लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद
26.	पूर्वा	अज्ञेय जयपाल एण्ड सन्स प्रकाशन दिल्ली प्र.सं. 1965
27.	फूल नाम है एक	त्रिलोचन राजकमल प्रकाशन, दिल्ली प्र.सं. 1985
28.	बोले बोल अबोल	केदारनाथ अग्रवाल परिमल प्रकाशन इलाहाबाद

29.	मछली घर	विजयदेव नारायण साही भारती भंडार लीडर प्रेस इलाहाबाद प्र.सं. 1966
30.	मुक्तिबोध रचनावली	सं. नेमीचन्द्र जैन राजकमल दिल्ली प्र.सं. 1980
31.	मुक्तिबोध की कविताएँ	सं. त्रिलोचन शास्त्री साहित्य अकादमी प्र.स. 1991
32.	यहाँ से देखो	केदारनाथ सिंह राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली प्र.सं. 1983
33.	सब का अपना आकाश	त्रिलोचन राजकमल प्रकाशन, दिल्ली प्र.सं. 1987
34.	स्वप्न भंग	प्रभाकर माचवे साहित्य भवन प्र.लि. प्र.सं. 1957
35.	सतरंगे पंखोंवाली	नागार्जुन राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली प्र.सं. 1984
36.	हँसो हँसो जल्दी हँसो	रघुवीर सहाय नाशनल पब्लिशिंग हाऊस दिल्ली प्र.सं. 1975

37.	हिमविद्ध	जगदीश गुप्त भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन काशी प्र.सं. 1964
38.	श्रम का सूरज	केदारनाथ अग्रवाल परिमल प्रकाशन इलाहाबाद प्र.सं. 1986

आलोचनात्मक ग्रंथ

1.	अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या	रामस्वरूप चतुर्वेदी भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन दिल्ली प्र.सं. 1968
2.	अन्छुए बिंदु	विद्यानिवास मिश्र राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली प्र. सं. 2007
3.	आधुनिकता का साहित्य के संदर्भ में	गंगाप्रसाद विमल द माकमिलन कंपनी ओफ इंडिया लिमिटड, नई दिल्ली प्र.सं. 1978
4.	आधुनिक हिन्दी कविता सर्जनात्मक संदर्भ	रामदरश मिश्र इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन दिल्ली प्र.सं. 1986

5.	आधुनिक हिन्दी कविता में लोकतत्व	वीरेन्द्रनाथ द्विवेदी विद्या प्रकाशन दिल्ली प्र.सं. 1991
6.	आधुनिक हिन्दी कविता में विचार	बलदेव वंशी लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद प्र.सं. 2000
7.	आधुनिक कविता का पुनर्पाठ	करुणाशंकर उपाध्याय राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली प्र.सं. 2008
8.	आलोचना के प्रगतिशील आयाम	शिवकुमार मिश्र पंचशीलन प्रकाशन, जयपुर प्र.सं. 1981
9.	इतिहास और संस्कृति	वीरेन्द्र मोहन शिल्पायन, दिल्ली प्र.सं. 2004
10.	कबीर	हज़ारी प्रसाद द्विवेदी राजकमल प्रकाशन, दिल्ली प्र.सं. 1990
11.	कबीर और जायसी मानवमूल्य	वीरेन्द्र मोहन कोणार्क प्रकाशन नई दिल्ली प्र.सं. 1984
12.	कविता का स्वभाव	डॉ. रमाकान्त वर्मा पंचशील प्रकाशन, जयपुर प्र.सं. 2000

13.	कविता की लोकप्रकृति	जीवन सिंह अनामिका प्रकाशन, दिल्ली प्र.सं. 1990
14.	कवि केदारनाथ सिंह	सं. भारत यायावर, राजा खुगशल वाणी प्रकाशन, दिल्ली प्र.सं. 1983
15.	कविता सब से सुन्दर सपना है	डॉ. ए. अरविन्दाक्षन नाशनल पब्लिशिंग हाऊस दिल्ली प्र.सं. 2004
16.	कविता का थल और काल	डॉ. ए. अरविन्दाक्षन किताबघर प्रकाशन नई दिल्ली-110002 प्र.सं. 2001
17.	कविता का आत्मपक्ष	एकान्त श्रीवास्तव प्रकाशन संस्थान, दिल्ली प्र.सं. 2006
18.	कविता के सम्मुख	गोविन्द प्रसाद वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली प्र.सं. 2002
19.	कविता और कवि कर्म	डॉ. जीवन सिंह बोधी प्रकाशन, दिल्ली प्र.सं. 1999
20.	कविता और समय	अरुण कमल वाणी प्रकाशन, दिल्ली प्र.सं. 1999

21.	कविता की लोकप्रकृति	जीवन सिंह अनामिका प्रकाशन प्र.सं. 1990
22.	कविता क्या है?	विश्वनाथ प्रसाद तिवारी राजकमल प्रकाशन, दिल्ली प्र.सं. 1999
23.	कविता के नए प्रतिमान	नामवर सिंह राजकमल प्रकाशन, दिल्ली प्र.सं. 1968
24.	कविता की मुक्ति	नंदकिशोर नवल वाणी प्रकाशन, दिल्ली प्र.सं. 1996
25.	कठिन समय में शब्द	(सं) कृष्णचन्द लाल सारांश प्रकाशन प्र.सं. 2001
26.	कविता का दूसरा पाठ	भगवत रावत परिमल प्रकाशन प्र.सं. 1993
27.	कविता का यथार्थ	हिन्दी विभाग विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय केरल सं. डॉ. ए. अरविन्दाक्षन जवाहर पुस्तकालय, मथुरा प्र.सं. 2003
28.	काव्य भाषा पर तीन निबन्ध	रामस्वरूप चतुर्वेदी लोकभारती, इलाहाबाद प्र.सं. 1989

29.	कविता की संगत	विजयकुमार आधार पुस्तकालय पंचकूला पुनर्मुद्रित 1996
30.	कोठार से बीज	सोमदत्त मेधा बुक्स, दिल्ली प्र.सं. 2004
31.	गजानन माधव मुक्तिबोध - व्यक्तित्व एवं कृतित्व	जनकशर्मा पंचशील प्रकाशन प्र.सं. 1983
32.	चिन्तामणि	रामचन्द्र शुक्ल इंडियन प्रेस पब्लिकेशन्स प्रा. लि., इलाहाबाद प्र.सं. 1993
33.	त्रिलोचन के बारे में	गोविन्द प्रसाद राजकमल प्रकाशन, दिल्ली प्र.सं. 1981
34.	दूसरी परंपरा की खोज	नामवर सिंह राजकमल प्रकाशन प्र.सं. 1982
35.	नवजागरण और छायावाद	महेन्द्रनाथ राय विद्या प्रकाशन, दिल्ली प्र.सं. 1973
36.	नई कविता सैद्धान्तिक पक्ष (1)	सं. जगदीश गुप्त लोकभारती, इलाहाबाद प्र.सं. 2000

37.	प्रकृति, पर्यावरण और समकालीन कविता	मनीषा झा आनंद प्रकाशन, दिल्ली प्र.सं. 2004
38.	प्रगतिशील काव्यधारा और त्रिलोचन	हरिनिवास पाण्डे विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी प्र.सं. 2000
39.	भारत में लोक साहित्य	डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय भारती प्रकाशन, दिल्ली प्र.सं. 1984
40.	भक्ति आंदोलन और लोक संस्कृति	कुंवरपाल सिंह अनंग प्रकाशन, दिल्ली प्र.सं. 2002
41.	भारतेन्दु युगीन हिन्दी काव्य में लोक तत्व	विमलेश कान्ति राजकमल, इलाहाबाद प्र.सं. 1950
42.	मिथकीय कल्पना और आधुनिक काव्य	जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली प्र.सं. 1985
43.	मिथक और आधुनिक कविता	शंभूनाथ राजकमल प्रकाशन, दिल्ली प्र.सं. 1985
44.	मिट्टी की रोशनी	सं. अनिल त्रिपाठी शिल्पायन शाहदरा, दिल्ली प्र.सं. 2007

45.	मुक्तिबोध का रचना संसार	गंगाप्रसाद विमल सुषमा पुस्तकालय कृष्णा नगर, दिल्ली प्र.सं. 1969
46.	मुक्तिबोध की कविताई	अशोक चक्रधर राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली प्र.सं. 1998
47.	मुक्तिबोध के प्रतीक और बिंब	चंचल चौहान वाणी प्रकाशन, दिल्ली प्र.सं. 1997
48.	मुक्तिबोध विचारक, कवि और कथाकार	डॉ. सुरेन्द्र प्रताप राजकमल, दिल्ली प्र.सं. 1992
49.	मुक्तिबोध - ज्ञान और संवेदना	नंदकिशोर नवल राजकमल प्रकाशन प्र.सं. 1993
50.	मेरे समय के शब्द	केदारनाथ सिंह वाणी प्रकाशन, दिल्ली प्र.सं. 1993
51.	यथाप्रसंग	नन्दकिशोर नवल किताबघर प्रकाशन, दिल्ली प्र.सं. 1992
52.	रचना के विकल्प	डॉ. ए. अरविन्दाक्षन किताबघर प्रकाशन, दिल्ली प्र.सं. 2006

53.	लोक और लोक का स्वर	विद्यानिवास मिश्र प्रकाश प्रकाशन, दिल्ली प्र.सं. 2000
54.	लोकसाहित्य	विद्या चौहान राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली प्र.सं. 1991
55.	लोकगीतों का समाजशास्त्रीय अध्ययन	डॉ. छोटेलाल बहरदर भारतीय प्रकाशन, दिल्ली प्र.सं. 2000
56.	लोक	पीयूष दईया भारतीय लोक कलामण्डल उदयपुर प्र.सं. 2006
57.	लोकवादी तुलसीदास	विश्वनाथ त्रिपाठी राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली प्र.सं. 1974
58.	लोक संस्कृति	वसन्त निर्गुणे हिन्दी ग्रन्थ अकादमी मध्यप्रदेश प्र.सं. 1996
59.	शब्द और मनुष्य	परमानन्द श्रीवास्तव राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली प्र.सं. 1999
60.	शब्द और कर्म	मैनेजर पाण्डेय वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली प्र.सं. 1997

61.	शताब्दी की कविता	डॉ नंदकिशोर नवल प्रकाशन संस्थान प्र.सं. 2001
62.	शब्द और संस्कृति	जीवन सिंह पुनर्नवा प्रकाशन, अलवर प्र.सं. 2007
63.	सूर काव्य में लोकदृष्टि का विश्लेषण	मीरा गौतम निर्मल प्रकाशन, दिल्ली प्र.सं. 2000
64.	समकालीन साहित्य चिन्तन	रामदरश मिश्र, महीप सिंह राजकमल प्रकाशन, दिल्ली प्र.सं. 1995
65.	समकालीन हिन्दी कविता	डॉ. ए. अरविन्दाक्षन राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली प्र.सं. 1998
66.	समकालीन हिन्दी कविता	विश्वनाथ प्रसाद तिवारी राजकमल प्रकाशन, दिल्ली प्र.सं. 1982
67.	समकालीन लंबी कविता का पहचान	युद्धवीर धवन संजीव प्रकाशन, दिल्ली प्र.सं. 1987
68.	सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के काव्य में सामाजिक चेतना	इफ्फत असगर राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली प्र.सं. 2004

69.	सर्वेश्वर दयाल सक्सेना व्यक्ति और साहित्य	कल्पना अग्रवाल चंद्रलोक प्रकाशन, दिल्ली प्र.सं. 2002
70.	साहित्य और लोक साहित्य	श्रीनारायण पाण्डेय भारतीय ज्ञानपीठ, काशी प्र.सं. 1975
71.	हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली	सं. मुकुन्द द्विवेदी राजकमल प्रकाशन, दिल्ली प्र.सं. 1981
72.	हिन्दी साहित्य कोश	डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ज्ञानमण्डल लि. वाराणसी प्र.सं. 1963

73. Encyclopedia Britannica Vol.3

पत्रिकाएँ

1. वसुधा 1961 - अप्रैल-जून 2006
2. कृति ओर - अंक 36 - अप्रैल-जून 2005
3. आलोचना - जनवरी-मार्च 2003
4. वर्तमान साहित्य - जून 2006
5. कृति ओर - अंक-37 - अप्रैल-जून 2006
6. लेखन सूत्र - जनवरी-जुलाई 2006
7. कृति ओर - अक्तूबर-दिसंबर 2007
8. वर्तमान साहित्य अप्रैल-मई 1992
9. हँस - मई 2002

❖❖❖